1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-9, अंक-6, जून-जुलाई 2026, ₹100/-

पाठकों के विश्वास के 29 वर्ष पूर्ण ...
141 वाँ अंक...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

लोक नाट्य
विशेषांक

अतिथि संपादक : डॉ. पूरन सहगल

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय के 139 और 140 वें अंकों का लोकार्पण भोपाल की महापौर श्रीमती मालती राय जी द्वारा किया गया

भोपाल की महापौर श्रीमती मालती राय, समाजसेवी अजय श्रीवास्तव 'नीलू', लायन रामू श्रीवास एवं प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास सहित अन्य गणमान्य अतिथि।

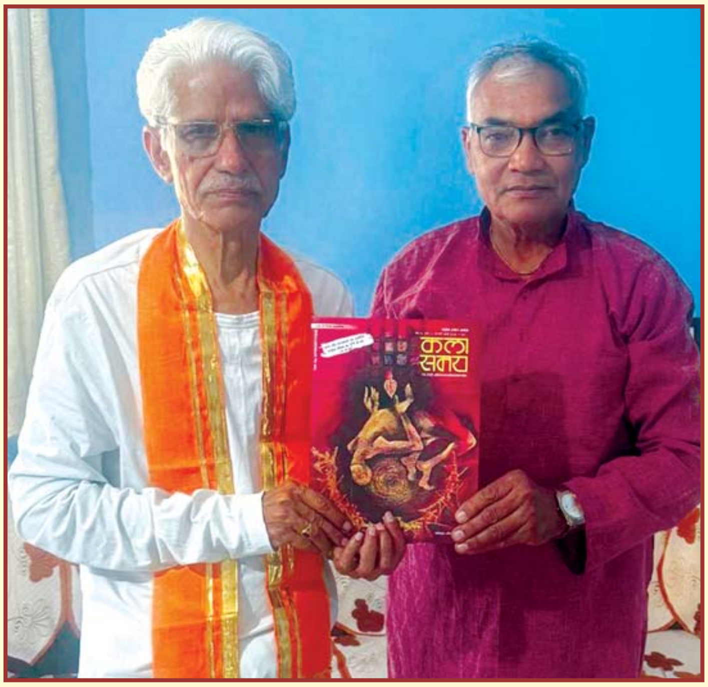

तुलसी मानस भारती पत्रिका के प्रधान संपादक श्री प्रभुदयाल मिश्र जी एवं प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास

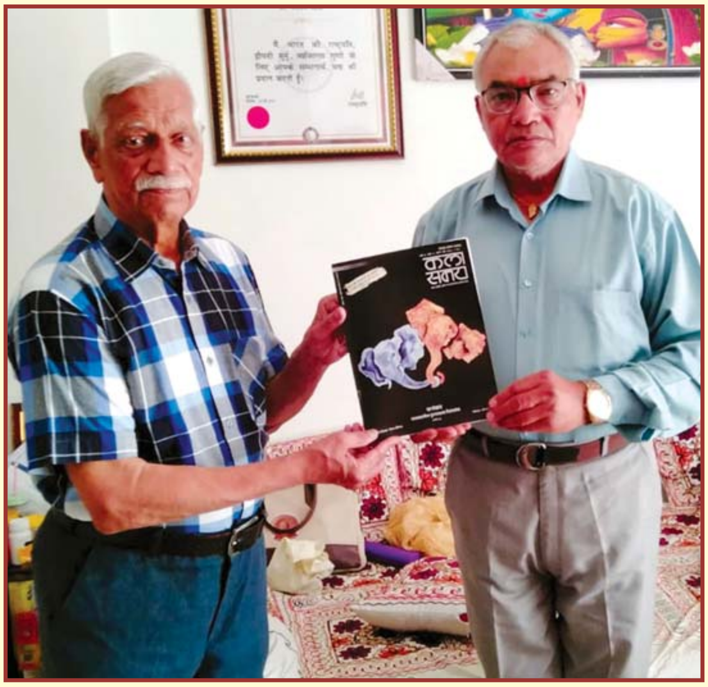

पद्म श्री सम्मान से विभूषित डॉ. नारायण व्यास जी एवं प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक पत्रिका

'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त'

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

https://www.kalasamaymagazine.com

https://www.notnul.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+09=29) पूर्णांक-141,

वर्ष-9, अंक-6, जून-जुलाई 2026, मूल्य : ₹100/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY

कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. नारायण व्यास
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव

लोगो
हरचंदन सिंह भट्टी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

रेखाचित्र: आस्था (हिमाचल प्रदेश)

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी

उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति

प्रबंध संपादक
नरिन्दर कौर

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य

समसामयिक
अरुण तिवारी

कला, संस्कृति
हरीश श्रीवास

सदस्यता सहयोग राशि:
(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त)

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत)	साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत)	साधारण डाक
आजीवन (10 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)	साधारण डाक

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

लोक नाट्य विशेषांक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

डॉ. मोहन यादव (मुख्यमंत्री)

डॉ. कपिल तिवारी (पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

राधावल्लभ त्रिपाठी

राजेंद्ररंजन चतुर्वेदी

श्यामसुंदर दुबे

डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू"

डॉ. सुमन चौरे

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

डॉ. रमेश दवे

कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

चन्द्र मोहन

डॉ. भगवानदास पटेल

डॉ. प्रेम भारती

शिव मृदुल

डॉ. पीसी लाल यादव

पुजा गुप्ता

डॉ. एम. भास्कर शर्मा

शिशिर उपाध्याय

संदीप सुमहेन्द्र

प्रो. संजय स्वर्णकार

दिनेश सहगल

जयश्री उपाध्याय

डॉ. पंकज भांबुरकर

इस प्रतिष्ठा विशेषांक के अतिथि संपादक

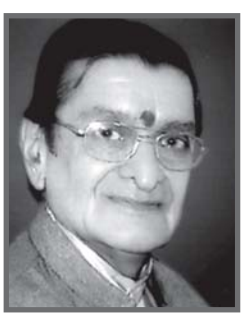

डॉ. पूरन सहगल

अतिथि संपादक

(लोक साहित्य अध्येता)

मो. 9424041310

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से...**
  लोक नाट्यों की लोक धर्मिता एवं प्रदर्शनकारी मनभावन छैल छबीली... 5
- **संपादकीय**
  अपने लोक के प्रति सजग है : लोक नाट्य 8
- **आलेख**
  ब्रज के लोकनाट्य / राजेंद्ररंजन चतुर्वेदी 11
- **समय की धरोहर**
  नरसिंह लीला, नृसिंह नृत्य : युग युगीन संदर्भ / डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू" 18
- **आलेख**
  लोक नाट्य, नाट्य शास्त्र का पूर्व एवं उत्तर रंग / श्यामसुंदर दुबे 20
- **पुनर्पाठ संस्कृति**
  लोक का नाटक अपने आसपास दृष्टि डालता है / डॉ. कपिल तिवारी 24
- **अद्वैत-विमर्श**
  कला में अद्वैतानुभूति / राधावल्लभ त्रिपाठी 28
- **आलेख**
  मालवांचल में लोकनाट्य माच के ठाठ /डॉ. पूरन सहगल 33
  भील आदिवासी लोकनाट्य / डॉ. भगवानदास पटेल 39
  जयपुर का लोकट्य - 'तमाशा' / प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग 44
  निमाड़ का लोक नाट्य 'रास मण्डल' / डॉ. सुमन चौरे 48
- **मंचित लोक नाट्य**
  भुवाई समाज द्वारा सृजित-मंचित लोक नाट्य.../ डॉ. पूरन सहगल 52
- **वाद्य वीथि**
  वाद्य यन्त्रों के रेखाचित्र / कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय 55
- **कला-चिंतन**
  विलुप्त होती विरासत: राजस्थानी कठपुतली / चन्द्र मोहन 59
- **आलेख**
  लोक आस्था की रामलीला 'प्रेम प्रचारणी राम मंडली' / दिनेश सहगल 60
  तुर्रा-कलगी लोकनाट्य में नृत्य परम्परा / शिव मृदुल 62
- **मंचित लोकनाट्य**
  ॥ मेवाड़धणी महराणा रो ख्याल ॥ / डॉ. पूरन सहगल 66
- **आलेख**
  छत्तीसगढ़ अंचल में लोक नाट्य की समृध्द ... / डॉ. पीसी लाल यादव 70
- **मंचित लोकनाट्य**
  नृत्य - अभिनय युक्त मालवी का श्रृंगारपरक ... / डॉ. पूरन सहगल 75
- **आलेख**
  गुस्साड़ी लोक नृत्य (तेलंगाना) / डॉ. एम. भास्कर शर्मा 80
  मालवा की लोक नाट्य कला ख्याल / डॉ. पूरन सहगल 82
  लोकनाट्य स्वाँग / शिशिर उपाध्याय 86
  महाराष्ट्र का लोक नाट्य तमाशा / प्रो. संजय स्वर्णकार 88
  "ओडिशा में कठपुतली कला : छाया और कहानियों ... / पूजा गुप्ता 92
  लोक नृत्य, लोकगीत और अभिनय की त्रिवेणी: गम्मत/ जयश्री उपाध्याय 94
- **साक्षात्कार**
  प्रकृति में पेड़-पौधे तो सभी देखते है, कला के अर्थों में चित्रकार ही ... 96
- **पुस्तक-समीक्षा**
  शोध से ही समझा जाएगा तुलसी का सच / डॉ. प्रेम भारती 101
  गोगाँवा गाँव का गरीब-आत्मकथा का कौतुक / डॉ. रमेश दवे 102
  चित्रसूत्र : डॉ. श्रीकृष्णकृत गंभीर टीका / डॉ. पंकज भांबुरकर 104
- **मुख्यमंत्री का ब्लॉग**
  प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व के 12 वर्ष / डॉ. मोहन यादव 106
- **समवेत** **108-113**

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण - कला समय / **रेखाचित्र**- आस्था / **वाद्य वीथि**- कैलाशचंद घनश्याम पाण्डेय
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास, अन्तरा, हरिन, सार्थक
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

लोक नाट्यों की लोक धर्मिता एवं प्रदर्शनकारी मनभावन छैल छबीली छवियाँ

> ‘यदि हम कहें तो कह सकते हैं कि, लोकनाट्य हमारी बहिरंग और अन्तरंग आवेगों की अभिव्यक्ति का सहज सफल एवं सुगम माध्यम ही तो है।लोकनाट्य के प्राण संगीत और नृत्य के संयोग से ही जीवित और जीवंत रह पाते हैं। ऐसा कोई भी लोकनाट्य नहीं है जिसके साथ संगीत और नृत्य का संयोग न रहता हो। लोकनाट्यों में प्रयुक्त गीतात्मक संवादों की अद्भुत छटा अत्यंत मनोहारी है।’

लोक, अगम, अनन्त और अक्षय है। ईश्वर भी तो ऐसा ही है। न तो ईश्वर को ठीक तरह से व्याख्यायित कर सकते हैं और न ही लोक को। वह अंग्रेजी के फोक से एकदम भिन्न है। लोक कभी अतीत नहीं होता। लोक की अन्तश्चेतना, अन्तःनुभूत और अन्तः आलोड़न की अभिव्यक्ति ही लोक नाट्य है। लोकजीवन की सांस्कृतिकता एवं सामाजिकता को मनोरंजनात्मक ढंग से हमारे लोक नाट्यकारों ने अत्यंत सरलता और सफलता के साथ व्याख्यायित किया है। ये लोक नाट्य अपने-अपने अंचलों में विविध रूपों में सदा-सदा से अभिनीत होते रहे हैं। सच कहूँ तो ये लोक नाट्य जनजीवन के प्राणतत्त्व एवं उसे ऊर्जा प्रदान करने वाले शिक्षक के समान हैं।हमने प्रकृति को नटी कहकर प्रतिष्ठित किया है। इसी प्रकार शिव को नटराज के विभूषण से विभूषित किया गया है। इस प्रकार सृष्टि की सारी लीला का अभिनय प्रकृति नटी और नटराज के युगल सात्विक संयोग और सहयोग से संचालित है। प्रकृति नटी अर्थात माता पार्वती एवं नटराज अर्थात शिव। इसी युगल को प्रकृति और पुरुष ही जाना-माना या कहूँ सृष्टि का आत्मिक लीला अभिनय संचरित होता चल रहा है।

जब मयूर अपनी मनोरम पंखावलियों को सजा कर और रूपहली छवि प्रकट कर अपनी मानवती प्रेमिका मयूरी को सृजन हेतु मनाने का मनोरम अभिनय करता हुआ नृत्यरत होता है तब बादल मृदंग बजाने लगते हैं। भंवरे गुनगुनाने लगते हैं। वृक्ष भी नृत्यरत होकर झूम-झूम कर वायु के साथ समवेत संगीतमय हो उठते हैं। धरा की सौंधी सुगंध महक उठती है तब वहाँ उस मुक्ताकाशी रंगमंच पर प्रकृति एवं संस्कृति का नृत्यमय अभिनय देख कर कौन मुग्ध नहीं हो उठेगा।मैंने यदि भरत मुनि के नाट्यशास्त्र पर स्वयं को केन्द्रित कर लिया तब शास्त्र के तले लोक नाट्य दबकर कुलबुला उठेगा। ऐसा तो मैं होने नहीं दे सकता। सत्य तो यह है कि, भरतमुनि स्वयं ही प्रकृति के लोकनाट्य से ही प्रभावित दिखते हैं। पार्वती के लास्य और नटराज शिव के ताण्डव से ही तो संगीत-नृत्य और नाट्य की उत्पत्ति हुई। क्या हम संगीत और नृत्य के बिना अभिनय की कल्पना कर सकते हैं?

जब आदिमानव अपने द्वारा शिकार करने की घटना का वर्णन करता हुआ अभिव्यक्त होता होगा तब वह संकेत अभिनय द्वारा ही तो अपनी शिकार सफलता का वर्णन करता होगा। उसने किस प्रकार एक झाड़ी में छिपे मृग को देखा? किस प्रकार वह मृग भागने लगा? किस प्रकार वह उसके पीछे भागा और अन्ततः अपने पाषाण भाले से किस प्रकार मृग पर प्रहार किया। किस प्रकार मृग घायल होकर छटपटाने लगा? किस प्रकार उसे कंधे पर लादकर ले आया। वह अपनी उस सफलता पर कितना और जिस प्रकार प्रसन्न हो रहा था। यह सारा वर्णन उसने मूक अभिनय द्वारा ही तो प्रकट किया होगा। उसके पास भाषा नहीं थी तब वह अपना कथन इसी प्रकार अभिनय द्वारा ही तो व्यक्त करता रहा होगा। इसे हम नाट्य कला का आदि स्वरूप मानें तो उचित ही है। कहना होगा कि, नाट्य हमारे सामान्य जीवन, हमारी प्रवृत्तियों, हमारी भावनाओं और हमारी अभिव्यक्तियों का ही तो संवेदनशील माध्यम है।

यदि हम कहें तो कह सकते हैं कि, लोकनाट्य हमारी बहिरंग और अन्तरंग आवेगों की अभिव्यक्ति का सहज सफल एवं सुगम माध्यम ही तो है।लोकनाट्य के प्राण संगीत और नृत्य के संयोग से ही जीवित और जीवंत रह पाते हैं। ऐसा कोई भी लोकनाट्य नहीं है जिसके साथ संगीत और नृत्य का संयोग न रहता हो। लोकनाट्यों में प्रयुक्त गीतात्मक संवादों की अद्भुत छटा अत्यंत मनोहारी है।

यदि हम भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के रस सिद्धांत वर्णन पर एक विहंगम दृष्टि डालें तब हमें ज्ञात होता है कि, उन्होंने

रस, भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का जो वस्तृत वर्णन किया है। यह सारा वर्णन उन्होंने नाट्य विधा के संदर्भ में ही किया है। लोकनाट्य वस्तुतः नाट्य संस्कृतियों, प्रवृतियों और अभिव्यक्तियों का प्रस्तुतीकरण है। लोक जीवन और लोकानुरंजन का पारम्परिक रूप से अपने-अपने अंचलों, बोली भाषाओं एवं संस्कृतियों, का जनसमुदाय को अपनी संस्कृति का बोध करवाने एवं नगरीय शिक्षित समाज से भिन्न होकर अपनी कला का अभिनयात्मक प्रदर्शन करता चला आ रहा है। लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह प्रस्तुतिकरण अपने-अपने स्तर पर परम्परा से अभिनीत होता रहा है। लोकनाट्य के लिए किसी विशेष मंच सज्जा का होना आवश्यक नहीं होता वह किसी चबूतरे मंदिर की पड़साल आदि में भी अभिनीत हो सकता है। कोई भी ऐसा लोकनाट्य नहीं जिसमें नृत्य और संगीत की अवहेलना कर अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया हो।

दिल्ली की रामलीला, बंगाल की जात्रा, उत्तर प्रदेश की रासलीला, मालवा राजस्थान का माच, गुजरात की भुवाई ढारा-ढारी गम्मत, दक्षिण का भरतनाट्यम, आंध्र प्रदेश की वीथी, राजस्थान की गवरी, पाबूजी की पड़, बुंदेलखण्ड की राई, छत्तीसगढ़ का नाचा, डिडंवा इसी प्रकार अलग-अलग प्रदेशों के कई प्रकार के लोकनाट्यों की छबीली छवियाँ लोकरंजन का ही नहीं पारंपरिक लोक संस्कृति का अभिनयपूर्ण प्रदर्शन कर लोक संस्कृति को लोकार्पित करते हुए तथा व्याख्यायित करते हुए अपनी पहचान बनाये हुए है।

कठपुतली प्रदर्शन भी तो नाट्य विधा का ही एक मनोरंजक एवं कलात्मक स्वरूप है। कठपुतलियों में भले ही प्राण न हों किन्तु उनके अभिनयपूर्ण प्रदर्शन में तो प्राणमयता बनी ही रहती है। रूठना, मनाना, नाचना, बजाना, युद्ध करना, प्यार करना तथा ऐसे ही अनेक अभिनय इन कठपुतलियों के माध्यम से सूत्रधार अपने हाथों की अंगुलियों में तागों की सांकेतिक कला धर्मिता से जिस प्रकार अभिनय करवाता है वह अद्भुत और गजब की कला प्रदर्शिता है। दर्शक मुग्ध हो उठते हैं और अनायास उनके मुँह से वाह !! निकल पड़ती है। भगवान भी तो हम सबको अपनी अंगुलियों की तारों से इसी प्रकार अभिनयुक्त बनाए रखता है। कठपुतलियों का अभिनय भी तो इसी प्रकार एक लीलाधारी कलाकार की अंगुलियों के संकेतों पर आधारित रहता है।

गीत-नृत्य, संगीत और अभिनय का एक साथ समवेत दृश्य देखना हो तो हम पाबूजी के पड़ प्रदर्शन में देख सकते हैं। बिहारी ने कहा है-

"कछु कही नैनन सों, कछु कही सैनन सो,
रही सही सोई कहिदीनी हिचकीनी सों"

जितने भी नृत्य प्रदर्शन हैं वे शास्त्रीय नृत्य हों अथवा लोकनृत्य सब बिहारी की इसी बात की पुष्टि करते हैं। हस्त अंगुलियों की मुद्राएँ, नयनों की नचावन, भ्रुवों की मटकावन, मुख की मोहकता ये सब नाट्य अभिनय ही तो है। पैरों के घुँघरुओं की छनक-छनक तक तथा कमर की लचक तक लय-लालित्य और लोच का सम्मिलित अभिनय ही तो है।

लोक प्रदर्शन पाबूजी की पड़ मुक्ताकाश का अद्भुत नृत्य, अभिनय, संगीत और गीत का प्रदर्शन है। चारों कलाओं का एक साथ प्रदर्शन दर्शकों को मुग्ध कर देता है। तारों की छत्रछाया में प्रारंभ होकर सूर्य की प्रथम किरण तक यह अभिनय नाट्य निरन्तर गतिमान बना रहता है।

पाबूजी के पुवाडे (परवाड़े) वैसे तो भोपों, नायकों, बारहटों और चारणों द्वारा गांवों की चौपालों, मंदिरों, देवालयों के चबूतरों पर जगरातों में गाये बजाये जाते हैं किन्तु गांवों की चौपालों पर खुले आकाश में एक चबूतरे पर जिस प्रकार भोपा भोपी द्वारा पड़ का अभिनययुक्त प्रदर्शन किया जाता है वह तो अद्भुत है। दृश्य-श्रव्य का ऐसा प्रदर्शन लोक कला का अन्यत्र देखने में नहीं आता। हाँ माच और गवरी का अभिनयुक्त प्रदर्शन में भी ऐसी ही छटा देखने में दृष्टिगत हो जाती है। गवरी का पात्रानुकूल मुखौटों की रूप छवियाँ तो और भी अजबी, गजबी होती हैं।

भोपा के हाथ में रणत्या, रणत्ये के गज में बंधे घुँघरु पिंडलियों तक की घाघरी, टुकियों वाली कंचुकी उस पर छटा बिखेरती लूगड़ी (ओढ़नी) दाहिने हाथ में भभका, (देसी दीपक) चारों और अमावस्या तिथि का अंधेरा। भोपा द्वारा गायी गई लीला का पुवाड़ा और गज से घुँघरुओं की झंकार की सुरीली रणत्ये वाली तान। दीवार पर उस लीला चित्रपट पर दीवार पर लीलाओं की चित्रावण वाले प्रसंग पर भभके से प्रकाश प्रदर्शन और भोपे द्वारा गाये गये पुवाड़े के दोहराव के साथ नृत्यमयता सारी प्रदर्शन अभिनयता एक साथ। ऐसा लगता है स्वयं प्रकृति और पुरुष। पार्वती और शिव भोपा भोपी का रूप धरे वहाँ पाबूजी की लीलाओं का गीत-संगीत, नृत्य और अभिनय का प्रदर्शन करने आ उपस्थित हुए हों। दर्शकों को केवल वही दृश्य भोपण प्रकट कर दर्शाती है जिसका भोपा अपने गायन में बखान करता है। नृत्य और संगीत की एक साथ युति गायन और अभिनय की जीवंत कर देती है।

यदि हम ध्यान से अध्ययन करें तो पायेंगे कि, "सिहांसन बत्तीसी" भी एक प्रकार का लोक नाट्य ही है। एक के बाद दूसरी और बत्तीसी पुतलियों का मंच पर प्रकट होकर महाराज विक्रम एवं भोज के माध्यम से राज्याधिकारियों को दिया गया सुशासन का संदेश ही तो है। वस्तुतः वह सुशासन की आचार संहिता ही है।

ऐसा ही लोकअभिनय है ख्याल का प्रदर्शन। तमासा, हट्या, पड़ प्रदर्शक, टूण्ट्या, गम्मत, स्वांग, नौटंकी, माच, रम्मत, रसधारी आदि लोकनाट्य जनजीवन के लोकरंजन के मनोहारी प्रदर्शन हैं। सभी ऐसी लोक

प्रदर्शनकारी ललित कलाएँ लोक में आदिकाल से विविध रूप धरे आज भी लोक में स्मृति पटल पर जीवित और जीवंत हैं। इन लोक नाट्यों की संगीत छवियों में रागनियों की विविधता कम रसीली नहीं होती।

टोडी, लावणी, कालंगड़ा, माढ़, चन्द्रयनी, कव्वाली, बहतरवील, झड़, तिझड़ी, देखता, घूमणी, वराड़, तिपदी, दुलाड़ी, तिलाड़ी, चौझड़ी, पहाड़, झेला, लंगड़ी, रासड़ा, आरसी, हिंडोली, रतवा, जानकी, बोझड़ी, खड़ी, पारकी, भैरवी, गजल, रासड़ा, आरसी, हिंडोली, रतवी, जानकी, पारकी, भैरवी, चलन, कहरवा, रसिया, कड़ी, घूमर, सोरठा, वियाग, आसावरी, सोहणी, ठुमरी, दादरा, द्रोण, दिलबहार, जिगरी, जुल्मार, दिलपसंद, घनाश्री, वशीकरण, कानड़ा, कड़ी मारू, जैजैवंती आदि कई रंगतें लोक नाट्यों को जीवंत करती दिखती हैं। साजों में हारमोनियम, बंशी, सारंगी, ढोलक, रणत्या, तबला, नगाड़ा आदि का उपयोग विशेष रूप से होता है।ये लोक नाट्य जहाँ हमें अपने गौरवशाली इतिहास का बोध करवाते हैं वहीं हमारे लोक नायकों और शौर्यवान दिव्य पुरुषों की त्याग, तपस्या, दानवीरता, वचननिष्ठा, धर्मनिष्ठा, गोरक्षा, लोक कल्याणी धर्मिता का स्मरण भी करवाते हैं। हमारी संस्कृति और लोककला की विरासत हैं ये लोकनाट्य।

इन लोकनाट्यों की प्रदर्शनकारी सहजता, सरलता, लय-लोच, लालित्य और लावण्यता तथा मनभावन कला निष्ठा के प्रति भी हमें आकर्षित करती हैं।

इस अंक में संकलित विद्वानों द्वारा अलग-अलग अंचलों के लोकनाट्यों पर लिखे आलेख भारतीय लोक संस्कृति के सेतुबंध की तरह पूरे भारत को जोड़ने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। वंदन ! अभिनन्दन !! ये केवल भाव परक ही नहीं अनुसंधापरक भी हैं। "कला समय" के इस अंक में संग्रहित लोक नाट्य तो वाग्देवी के अकूत भंडार से लिए गये अंजुली भर ही हैं। यदि शोधार्थी अपने-अपने अंचल के लोक नाट्यों का शोधपरक अध्ययन कर उनका संकलन करें तो एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तैयार हो सकेगा। कला समय का यह अंक प्रेरक प्रसंग सिद्ध होगा।

इन सभी आलेखों को पढ़कर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि, हमारी लोक संस्कृति एक ऐसे शतदल कमल के समान रूपायित है जिसकी पंखुड़ियाँ भले ही पृथक से अपना रंग रूप लिए मुस्करा रही हों किन्तु उनकी सुगंध एक ही नाल से जुड़ी होकर भारतीय लोक संस्कृति की कीर्ति का बखान करती नजर आ रही है। सभी आलेख शोधपरक हैं और भविष्य में इस विषय पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे। वस्तुतः लोक कला का यह "लोक नाट्य अंक" पूर्व अंकों की भाँति ही विशेष रूप से स्वागतेय होगा।

मैं सभी विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ कि, उन्होंने अपने व्यस्ततम समय में से अपना अमूल्य समय निकालकर इस अंक के लिए अपने शोधपरक आलेख लिखकर इस अंक को धन्यता प्रदान कर साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न किया है। पुनः आभार ! "कला समय" विश्वास रख सकता है कि, भविष्य में भी आप सबका सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा।

"कला समय" के सम्पादक श्री भंवरलाल जी श्रीवास ने मुझे इस महत्त्वपूर्ण अंक के अतिथि सम्पादक की जिम्मेदारी सौंपकर जो विश्वास जताया है उसके लिए मुझे धन्यवाद हेतु शब्द तलाशना कठिन लग रहा है। शब्दशक्तियाँ मौन हैं। तथापि मैं उनके प्रति हृदय से वंदित हूँ। और विश्वास दिलाता हूँ कि, मैं अपनी सहज साहित्यिक सामर्थ्य के रहते यथासंभव सदा-सदा समर्पित भाव से कला समय के साथ संलग्न बना रहूँगा। पुनः आभार! धन्यवाद !!

- डॉ. पूरन सहगल

निदेशक- मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान

"कृष्णायन" उषागंज मनासा पिन. 458110 जि. नीमच (म.प्र)

मो. 9424041310

कला समय पत्रिका इन वेबसाइट पर उपलब्ध

https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

अपने लोक के प्रति सजग है : लोक नाट्य

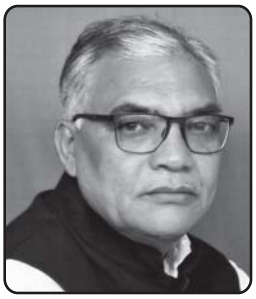

> नाटक के जरिए एक इंसान एक ही जीवन कई जीवन जी सकता है। जब कोई व्यक्ति किसी पात्र का अभिनय करता है तो वह परकाया गमन करता है। इसमें व्यक्ति खुद को भूल कर पात्र के जीवन को जीने लगता है। गाँव का व्यक्ति खुले मंच के लोक नाट्य और लोक कथाओं से इतनी समझ और क्षमता विकसित करता है, जीवन में आन्नद तथा व्यापकता ही अनुभूति रंगमंच के साथ जुड़ने से ही होती है। इस रंगमंच पर बिना किसी प्रयास, प्रदर्शन और कलात्मक प्रभाव के जीवन की स्वाभाविक उमंग को अभिव्यक्त किया जा सकता है।

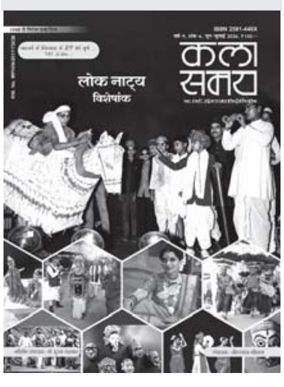

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत् नाट्योऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

नाट्यशास्त्र 1.116

अर्थात : भरतमुनि का तो मन्तव्य यह रहा है कि संसार की कोई ऐसी कला, ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग और कर्म नहीं, जो नाट्य में अंग न बन सके।

नाट्यशास्त्र : अनुवादक राधावल्लभ त्रिपाठी

समूचे विश्व का अपना लोक है। लोक तो प्राकृतिक परम्परा की देन है और उस परम्परा की ही यथार्थ कल्पित सृष्टि है। लोक धातु का अर्थ होता है देखना या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना। चमकना या जानना भी उसका अर्थ होता है। अवलोक, आलोक आदि भी वही अर्थ देते हैं। इस लोक धातु में घञ् प्रत्यय लगने पर संस्कृत का लोक : शब्द बनता है। जिसका अर्थ होता है संसार या विश्व का एक भाग। **चतुर्वर्णा श्रमों लोक:।** चारों वर्ण में समूच समाज और चारों आश्रम में पूरी आयु का समावेश हो जाता है। अत: लोक से तात्पर्य है – सभी आयु वर्ग का समस्त समाज और उनका आचरण। हम जो यह मानते है कि परम्परा लोक में मौजूद है और शास्त्र में मौजूद है। यह भूल जाते हैं कि लोक एक तरह से जितना परम्परा में संचालित होता है, गतिशील होता है, उतनी मात्रा में शास्त्र नहीं होता। उसका एक कारण है लोक में ज्ञान के अनुभव का संक्रमण निरन्तर होता रहता है। अविराम होता रहता है क्योंकि उसमें परस्पर संवाद होता रहता है। वाचिक रूप में होता है उसकी निरन्तरता इसीलिए बनी रहती है। केवल वाचिक अभिनय के द्वारा भी समग्र नाट्य प्रयोग संभव है: प्राचीन वाङ्मय के साक्ष्यों से लगता है कि वाचिक-प्रधान नाट्य प्रयोग ही हमारी नाट्य परम्परा का मूल है। भरतमुनि भी कहते हैं कि वाक् समस्त साहित्य का तथा समस्त जीवन – व्यवहार का मूल है सभी कार्यों एवं विचारों के मूल में मनुष्य ही प्रतिष्ठित है। इसी मनुष्य से लोक-संस्कृति का निर्माण हुआ इसका सजीव रूप गाँवों में देखा जा सकता है। गाँव का मनुष्य निरक्षर होकर भी सुसंस्कृत ही रहता है। क्योंकि वह विश्वास के सामने बिकता है, धर्म के सामने झुकता, सब कुछ सहने पर शिकायत नहीं करता थक कर नहीं बैठता, त्याग से प्राप्त करता तथा परिश्रम से आनंद लेता आया है। नाटक के जरिए एक इंसान एक ही जीवन कई जीवन जी सकता है। जब कोई व्यक्ति किसी पात्र का अभिनय करता है तो वह परकाया गमन करता है। इसमें व्यक्ति खुद को भूल कर पात्र के जीवन को जीने लगता है। गाँव का व्यक्ति खुले मंच के लोक नाट्य और लोक कथाओं से इतनी समझ और क्षमता विकसित करता है, जीवन में आन्नद तथा व्यापकता ही अनुभूति रंगमंच के साथ जुड़ने से ही होती है। इस रंगमंच पर बिना किसी प्रयास, प्रदर्शन और कलात्मक प्रभाव के जीवन की स्वाभाविक उमंग को अभिव्यक्त किया जा सकता है। लोक रंगमंच इसका मुख्य स्वांग, ख्याल, नौटंकी, तमाशा कुटियट्टम, यक्षगान, भागवत मेला और कुचिपुड़ि, छऊ, भवाई, कठपुतली नाट्य लोकप्रिय नाट्य रूप यात्रा (जात्रा) आदि अत्यंत सीमित साधनों के द्वारा लोक रंगमच पर प्रदर्शित होने वाले प्रमुख लोक नाट्य हैं। लोकनाट्य जहाँ जीवन में सरसता ला देते हैं, वहीं सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था, अंधविश्वास पर सहज एवं मनोरंजक ढंग से व्यंग्य भी कर देते हैं। नाट्य या नाटक की विद्या मनुष्य के साथ तभी से रही है जब से उसने धरती पर पाँव रखे। विदूषक यानी भाण यानी जोकर यानी हँसाने वाला यानी मजाक करने वाला यानी तनाव के क्षण में सीन में हंसी पैदा करने वाला। विदूषक के बारे में कवि पद्माकर जी ने कहा है कि –**'स्वांग ठान ठानें जु कछु, हांसी बचन विनोद।'** यानी विदूषक कुछ ऐसा स्वांग भरता है कि और कुछ ऐसी वचन वक्रता करता है कि दूसरों को हंसी आ जाए। मगर जैसे – जैसे जमाना बदला विदूषक

की जगह सिकुड़ती गई। शेक्सपियर कहते हैं –'संसार एक रंगमंच है और हम सब अभिनेता तो उसका एक आशय यह भी है कि सांसारिक शक्तियों में अभिनेता के सहज गुण एवं प्रतिभा विद्यमान होती है।' ब.व. कारंत कहते हैं कि रंगमंच के लिए सिर्फ अभिनेता आवश्यक है... रंगमंच नहीं, रंगकर्म अभिनेता का माध्यम है। अभिनेता इस कर्म का माध्यम है। इस कर्म की सम्यक अभिव्यक्ति सम्प्रेषण का सम्यक् माध्यम है। अन्यत्र वे कहते हैं –'रंगमंच के लिए कुछ नहीं चाहिए, सिर्फ अभिनेता, अभिनेता रंगमंच की केन्द्रीय शक्ति, प्राण और आत्मा है। वह शरीर भी है, शरीर में बहता खून भी, उसकी गति और आवाज भी। लोक नाट्यों में अभिनेता की समूची रंगभाषा और रंग सर्जना का आधार भूत तत्त्व है। लोक रंगमंच पर अभिनेता गीत-संगीत-नृत्य-अभिनय की मिली-जुली बहुरंगी रंग भाषा की रचना करता है। लोक मंच का अभिनेता वाला संगीत भी उसके अपने लोक जीवन से लिया गया होता है, इसीलिए जब वह अपनी पूरी आवाज, पूरी फेंक, ऊर्जा और तन्मयता के साथ गाता है, सामने बैठा दर्शक वाह-वाह कर उठता है, हजारों हजार दर्शकों को बिना किसी यंत्र की सहायता से अपनी आवाज की बुलंदी और शारीरिक क्षमता से संबोधित करता यह लोक अभिनेता अपनी ऊर्जा और अथक कलात्मक शक्ति से मंच पर एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जो दर्शकों को आनंद की उच्चतम अवस्था तक ले जाता है। लोक नाटकों की अभिनय पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता होती है उसकी निजता, लगाव, अपनापन और रागात्मकता। नाटक, अभिनेता और दर्शक यहाँ एकाकार हो जाते हैं। यह अपनापन शास्त्रीय और अभिजात रंगमंच के लिए सहज संभव नहीं है। इसी तरह चित्र अथवा मुखौटों की रंग योजना उस चरित्र के मनोभावों और स्वभाव को प्रकट करती है चित्र अथवा मुखौटे के रंग मूल चेहरे से कुछ हटकर , मूल रूप में नहीं लगाए जा सकते हैं, वे ही रंग मुखौटे के माध्यम से सम्प्रेषित होते हैं, मुखौटे के रंग चटकीले – भड़कीले और संतुलित होते हैं, यह चरित्र के व्यक्तित्व को नया आयाम प्रदत्त करते हैं, रंगों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, इसमें वर्णित मूल रंगों का अस्तित्व आज भी है-

मूलरड्गा: स्मृता पञ्च श्वेत: पीतो विलोमत:।
कृष्णों नीलश्च राजेन्द्र शतशोऽन्तरत स्मृता:।।

जैसे :- **लालरंग:** हृदय में शक्ति पैदा करता है, इससे हृदय में एक धड़कन पैदा होती है।

पीलारंग: भारतीय रस शास्त्र की दृष्टि से पीला रंग अद्भुत रस का प्रतीक है। ब्रह्मा इसके देवता माने गए हैं। पीला रंग ज्योति का प्रतीक है इसे देखने से मन में ज्ञान और प्रकाश का अहसास होता है।

नीलारंग : रस परम्परा में नीला रंग वीभत्स रस का प्रतीक माना गया है और इसके देवता महाकाल माने गए है। ग्रहों में नीला रंग शनि के रंग की पहिचान करता है और वह सूर्य तथा छाया के पुत्र हैं।

कालारंग : प्रकाश वस्तुओं के रंग की पहिचान करता है, और अंधकार प्रकाश का विलोम है – अर्थात प्रकाश के अभाव में रंग देखे नहीं जा सकते। अंधेरे का रंग काला है।

हरारंग : हरा रंग भारतीय रंग नहीं माना जाता है। चित्र सूत्रम में हरे रंग की प्रक्रिया का वर्णन नहीं है, उसमें हरियाली का आभाव है।

सफेदरंग : इसे सित रंग भी कहा जाता है। यह रंग आकाश का माना गया है। जो चित्रकला की दृष्टि से सफेद और काला रंग को रंग हीन माना जाता है।

इन मूल रंगों के अतिरिक्त रूप सज्जा अथवा मुखौटों के लिए रंगों का मिश्रण किया जाता है। उदाहरणार्थ सिंदूरी रंग सौभाग्य एवम् मंगल का प्रतीक है अन्य दृष्टि से और भैरव, हनुमान का रंग उनके विघ्नकर्ता अथवा रौद्र रूपक का घोतक है। नाट्य जगत सर्वाधिक मूर्त अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि सभ्यताओं के विकास की गतियों और प्रगतियों के बावजूद माँड़ने, चौक, भिति-चित्र, झाँकिया, स्वांग नाचा, माच, नौटंकी, ढोलामारू, आल्हा-ऊदल, हीर-रांझा सबके सब आज तक हैं जो दृश्य – श्रव्य, नृत्य भी है नाट्य भी और लोक रंजन के साथ लोक शिक्षण की अत्यंत प्रभावी शैली या शिक्षण – पद्धति भी। देवीलाल सामर ने राजस्थान की इस अद्भुत लोक कला के जो शैक्षणिक – प्रयोग किए उनसे यह सिद्ध किया कि कठपुतली एक स्वतंत्र कलात्मक अस्मिता और उपस्थिति है। यहाँ पर भवानी प्रसाद मिश्र जी की कठपुतली कविता का जिक्र करना भी आवश्यक समझता हूँ –

कठपुतली
गुस्से से उबली
बोली – ये धागे
क्यों हैं मेरे पीछे – आगे?
इन्हें तोड़ दो;
मुझे मेरे पाँवों पर छोड़ दो।
सुनकर बोली और – और
कठपुतलियाँ
कि हाँ
बहुत दिन हुए
हमें अपने मन के छंद हुए।
मगर...
पहली कठपुतली सोचने लगी-
ये कैसी इच्छा
मेरे मन में जगी?

- भवानीप्रसाद मिश्र

रेखाचित्र: आस्था (हिमाचल प्रदेश)

कठपुतली : न वह नाटक का अनुकरण न नृत्य का अनुगमन, न संगीत का अनुवाद, न मुखौटों का स्वांग और न सर्कस का प्रदर्शन और न ही पारसी रंगमंच शैली का अनुराग। इन लोक नाट्यों में सूत्रधार नाट्य प्रस्तुतियों में निरत्तर हस्तक्षेप करता हुआ दर्शकों को संबोधित करता चलता है संवादों के साथ कथागायन बराबर चलता है यह शैली आख्यान की शैली रही है। यक्षगान अंकिया नाट आदि शैलियों में क्षेत्रीय भाषाओं या बोलियों के गीत जोड़कर अन्य नाटक लिखे गए हैं। छत्तीसगढ़ का नाचा, मालवा का माच आदि लोक नाट्यों में भी आख्यान की यह शैली झलकती है। कुटियाट्टम सबसे प्राचीन है। लोक नाटकों की नवीन शैली का प्रारम्भ दक्षिण से ही हुआ कई शैलियों को मिलाकर कुटियाट्टम शैली चलाई थी। अंकिया नाट प्रथमबार संत शंकर देव ने इस लीला नाटक को असमी, बंगाली, मैथिली, भोजपुरी आदि के शब्दों को ग्रहण कर उसे ब्रज भाषा में कालिययमन यात्रा नाटक की रचना की। रासलीला यहाँ प्रचलित श्री कृष्णलीला की परम्परा को रासलीला के रूप में पुनर्जीवित किया महाप्रभु वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास जी, महाप्रभु हरिवंश नारायण भट्ट, गोस्वामी हरिराम व्यास जैसे भक्तार्चायों के साथ-साथ जयपुर घराने के वल्लभ का भी इस मंच की स्थापना में पूर्ण सहयोग था। मधुर मनमोहक सम्वाद व सूरदास और अष्टछाप के अमर कवियों और भक्तों की रसभरी रची गयी।

रामलीला की परम्परा हमारे देश में बड़ी प्राचीन है। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा वाराणसी के असीघाट पर रामलीला प्रदर्शन की जो परम्परा स्थापित की गई उसका प्रारम्भ सोहलवीं शताब्दी में ही हुआ। जो पूरे उत्तर भारत में फैल गई। रामायण, महाभारत के कथानकों पर आधारित जात्रा ही उड़िया में भी जात्रा नाटक बहुत लोकप्रिय है। इन सभी नाट्य शैलियों में सूत्रधार का तथा मुखौटों के बिना कोई लीला – नाटक नहीं किया जा सकता। माच मालवा की ही देन है गुरु गोपाल जी ने ही यह चमत्कार किया वे राजस्थान से आकर उज्जैन में बस गए। माच का उद्भव मानने के बाद इसके अंकुरण में लावणी, ख्याल, नौटंकी अलग है और माच अलग है। माच में सिद्धेश्वर सेन जी के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। माच मालवे का राजा है इसमें वाद्य ढोलक और सारंगी प्रमुख है। वर्तमान युग में लोकनाट्य में नई-नई रचनाएँ भी हुई तथा नई विषय वस्तु के समावेश के परिणाम स्वरूप लोकनाट्य शैली अधिक व्यापक एवं प्रभावशील बन पड़ी है। इस युग की सामाजिक चेतना को लोक मंच ने आत्मसात किया है जो बहुत ही सूक्ष्म स्वर पर हुआ हैं, आरोपण के स्तर पर नहीं। जमीदारों और सत्ताधारियों के अत्याचार से प्रताड़ित जनता की भावनाओं को राजस्थान के ख्याल, मालवा के माच और गुजरात की भवई में मार्मिक कथा प्रसंगों द्वारा प्रतिबिंबित किया जाने लगा। बिहार की बिदेसिया हिमाचल की करियाला तथा छत्तीसगढ़ के नाचा आदि लोक नाट्यों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध भी विषय वस्तु की प्रस्तुतियाँ की गई। राजस्थान में ख्याल के माध्यम से दहेज प्रथा तथा बाल विवाह आदि पर कटाक्ष किए गए। लोक नाट्य हमारे देश की सांस्कृतिक सहिष्णुता की उपज है इसके कारण उनमें धर्म निरपेक्षता का तत्व भी प्रबल है तथा ये नाट्य सामुदायिक भावना के जबर्दस्त उदाहरण है। वर्तमान युग में शिक्षित वर्ग का संबंध हमारी परम्पराओं से बहुत अधिक कटगया है। आज देश के शिक्षित वर्ग जिसके हाथों में सांस्कृतिक चेतना का नेतृत्व है, वह पश्चिमोन्मुख हो गया है तथा अपनी कला परम्परा की उपेक्षा कर उनसे कहता जा रहा है कि लोकमंच की उपेक्षा कर हमने आधुनिकता के नाम पर जिस पाश्चात्य शैली को अपना लिया है वह नागर शैली एक छोटे से प्रबुद्ध वर्ग की शैली बनकर रह गई है जिसका दर्शक वर्ग लगभग नहीं के बराबर है। दर्शक वर्ग को तो हम लोक नाट्यों की दुनिया में पीछे छोड़ आए है। और उधार की नाट्य शैली को हमारे परंपराशील दर्शक ने लगभग अस्वीकार सूत्र हमारी परम्परागत लोक नाट्य परंपरा में आज भी यत्र-पत्र सुरक्षित है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम उन्हें पहचान कर उन्हें अंगीकार करें। उधार का रंगमंच नागर जनों के अहम् की तुष्टि तो कर सकता है किन्तु व्यापक जनाधार नहीं बना सकता और न ही ऊपर से जड़ों तक उतर सकता है। देश का व्यापक वर्ग और दर्शक इस उधार की संस्कृति को कभी भी अंगीकार नहीं करेंगा हमें अपनी जड़ों की ओर वापस लौटना ही होगा।

कला समय के इस प्रतिष्ठा विशेषांक के अतिथि सम्पादक लोक अध्येता वरिष्ठ साहित्यकार श्रद्धैय डॉ. पूरन सहगल जी के हम हृदय से आभारी हैं जिन्होंने अपना बहुमुल्य समय देकर यह लोक नाट्य विशेषांक को सार्थक किया। डॉ. सहगल जी ने व्यक्तिगत प्रयासों से लोकनाट्य की महत्वपूर्ण सामग्री, आलेख, छायाचित्रों को इकट्ठा कर यह गुलदस्ता लोक नाट्य के रूप में तैयार करने में विशेष सहयोग किया हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। और उनके प्रति हृदय से आभारी है। साथ ही उन सभी विद्वान लेखकों के प्रति भी आभारी हैं जिन्होंने विषय केन्द्रित आलेख समय सीमा में भेजकर अंक को संग्रहणीय बनाने में हमारी मदद की। पत्रिका की अपनी एक सीमा है पृष्ठों की कुछ और महत्वपूर्ण आलेख चाह कर भी हम सम्मिलित नहीं कर पा रहे है इसका हमें खेद है। उन लेखकों से हम क्षमा चाहते हैं। हम सभी सुधी पाठकों से भी विनम्र आग्रह करते हैं कि इस विशेषांक पर अपने विचार, प्रतिक्रिया और सुझाव से अवश्य अवगत कराएं।

विश्व पर्यावरण दिवस, विश्व योग दिवस सहित गुरु पूर्णिमा पर्व की हार्दिक शुभकामनाएं।

।।शुभमस्तु।।

- भँवरलाल श्रीवास

आलेख

ब्रज के लोकनाट्य

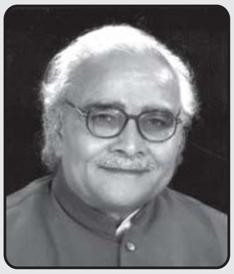

राजेंद्ररंजन चतुर्वेदी

व्यक्ति और समाज के सामंजस्य से समाज बनता है और सामंजस्य के लिए यह अनिवार्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने धर्म अथवा कर्तव्य का बोध हो। समष्टि-जीवन के लिए व्यक्ति-मन में स्थायी-भावों का जागरण और समाज में जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा आवश्यक है और यह कार्य संवाद के द्वारा ही हो सकता है।संवाद समष्टि-जीवन का पथ प्रशस्त करता है। लोकगीत, लोकोक्ति और लोककथाओं की भाँति लोकगाथा भी समष्टि का संवाद है। लोकजीवन ने व्यक्ति को सामाजिक बनाने के लिए लोकगाथा के रूप में संवाद की एक प्रभावशाली- प्रणाली का विकास किया था।ये एक प्रकार से समष्टि-गायन अथवा समष्टि-मंचन की प्राचीन परंपरा है , जो समाज में समय के अनुसार उन घटनाओं , कथाओं और आदर्शों को प्रतिष्ठित करने का कार्य करती रही है।लोकगाथा प्राचीन कथानक, वृत्तान्त या आख्यान का ही एक रूप है। उनमें मानवीय-व्यवहार और सम्बन्धों का विस्तार है।लोकगाथा सत् की विजय और असत् की पराजय का उद्घोष है। इस उद्घोष को कभी हम पर्व-त्यौहार के रूप में सुनते हैं तो कभी लोकमंच पर अभिनय के रूप में देखते हैं। जिस प्रकार से व्यक्ति का मन होता है - व्यष्टिमानस, उसी प्रकार से समष्टि-मानस भी होता है, जिसे मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक-मानस "कलेक्टिव माइंड" कहा है। समाज समष्टि के भाव से भौतिक प्रक्रिया भी करता है और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी करता है क्योंकि मनुष्य का जीवन भौतिक-प्रक्रिया भी है और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है ,तो सामूहिक मन अपने जीवन के लिए संसाधनों की खोज करता है ,संसाधनों की योजना बनाता है क्योंकि वह समाज व्यक्ति का परिवेश है और परिवेश के बिना जीवन संभव नहीं है। हम सब जी रहे हैं और सभी के जीवन का ताना-बाना एक दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है। उस सामूहिक ताने-बाने के बिना जीवन संभव नहीं , तो जितना प्रयत्न हम अपने व्यक्ति-जीवन में करते हैं, उतना ही प्रयत्न हम जाने और अनजाने में सामूहिक-जीवन में भी करते हैं। वह सामूहिक-भावना के साथ संपन्न होता है , सामूहिक-चेतना से संपन्न होता है,उस सामूहिक-जीवन के लिए सामूहिक मन व्यक्ति के मन में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है ,आदर्श की प्रतिष्ठा करता है,न्याय की प्रतिष्ठा के लिए उत्साह आदि भावों को प्रतिष्ठित करता है ,परोपकार और समानता के भाव की प्रतिष्ठा करता है। अपने पूर्वजजीवन की यादों को पुनर्जीवन प्रदान करता है और इस सबके लिए वह नाना प्रकार के प्रयास करता है लोककहानी, लोकगीत इस सामूहिक प्रक्रिया के अंग हैं। इन सभी अंगों में एक अंग लोकमंच भी है , लोकनाट्य भी जिसे हम कह सकते हैं। लोक कलाएं भी हैं यह सामूहिक-जीवन की प्रक्रिया है ,सामूहिक जीवन का अंग है और सामाजिकजीवन के लिए यह अनिवार्य है क्योंकि सब हैं तो हम हैं। हम सबके साथ जी रहे हैं , इसलिए उस " सब " की अपेक्षा नहीं की जा सकती है व्यक्ति और समाज एक दूसरे से विधायक हैं, एक दूसरे में ओतप्रोत हैं और लोकमंच तथा लोकनाट्य समष्टि के लिए ,समष्टि द्वारा ,समष्टि का आयोजन है। यही बात भरतमुनि ने और अधिक विस्तार के साथ नाट्यशास्त्र का प्रयोजन बतलाते हुए कही थी - **दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्!विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्!** अर्थात् जो दुख से व्याकुल हैं, जो अत्यन्त परिश्रम के कारण थक गये हैं, जो शोकसंतप्त हैं और जो कठिन तप कर रहे हैं ,उनको कुछ विश्रान्ति मिल सके , मेरा प्रयास तो उन्हीं के लिए है !

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्!
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति !

समाज में धर्म की व्याख्या कर सके; यश, आयुष्य, विशाल हित की व्याख्या कर सके, सामाजिक-विवेक की प्रतिष्ठा कर सके, लोकशिक्षण कर सके, मेरा प्रयास तो इसी के लिए है! वास्तविक बात यह है कि नाट्यशास्त्र के प्रयोजन के व्याज से भरतमुनि ने लोकधर्मिता का प्रतिपादन किया है। लोकजीवन की असंख्य गतिविधियाँ हैं, विभिन्न जनपदों और सांस्कृतिक-समूहों में इन गतिविधियों के विभिन्न रूप हैं, उनमें एक रूप लोकनाट्य भी है और भरतमुनि ने जनपदीय-जीवन का व्यापक और गहरा अध्ययन करके लोकनाट्यरूपों का वर्गीकरण किया था। जनपदीय-जीवन में लोकनाट्य के विभिन्न रूप हैं। सामान्य रूप में हम लोकमंच और लोकनाट्य को जोड़ देते हैं और लोकमंच के नाट्यरूप का विवेचन कर देते हैं। नट शब्द व्यापक अर्थों वाला है, संगीत- नृत्य- संवाद- काव्य- कथा- अभिनय- बाज़ीगरी और कलाबाज़ी आदि गतिविधियाँ नट और नाट्य शब्द में सम्मिलित हैं- जीवन का पुन:सृजन। सृष्टि-रचना के प्रसंग में भागवतकार ने कठपुतली-कला का बिंब दिया है। नट एक सांस्कृतिक-समुदाय है , जो नाट्य के विविध रूपों की प्रस्तुति करता है। भगवान शिव को नटराज कहा गया है और श्रीकृष्ण को नटवर। संगीत-नृत्य- संवाद -काव्य-कथा-अभिनय-बाज़ीगरी और कलाबाज़ी नाट्यमंच पर सजीव हो जाती हैं और सामाजिक-जीवन की

प्रक्रिया में भी निरन्तर चलती रहती हैं।

अब तो वह परंपरा समाप्त हो गयी है किन्तु मेरे बचपन में माथुर-समुदाय में विवाह होते थे, तब स्त्रियाँ बूमना बनती थीं, विभिन्न वेशभूषा धारण कर लेती थीं, अभिनय भी होता था और नृत्य भी होता था। असल में "बू-बना " एक प्रेमगाथा है, बूमना का संबंध उस गाथा से है, स्पष्ट है यह लोकनाट्य का ही एक रूप था, जो विवाह का अंग बन गया। इसी प्रकार से एक रीत है जिसमें मुगल पसारे जाते हैं, आटे की लोई के बने हुए मुगल पैरों से मीड़ दिये जाते हैं, वास्तव में यह मथुरा की किसी ऐतिहासिक-घटना का पुन:सृजन है। यह एक अभिनय है। दूल्हा घोड़े पर बैठ कर राजा बन कर आता है, तोरण को तलवार से काट देता है, यह अभिनय ही तो है। विवाह संपन्न हो जाने के बाद माँय-विसर्जन होता है और उस अवसर पर वर-वधू बाकछरी खेलते हैं।इसी प्रकार उपनयन के अवसर पर वटुक काशी पढ़ने जाता है, यह अभिनय ही तो है, जिसमें उसका वेश ब्रह्मचारी-साधु जैसा बनाया जाता है, पीछे-पीछे समवयस्क बालक उपहास करते हुए गाते हैं - बाबाजी भभूतिया, बाबाजी भभूतिया। शिवरात्रि के भोर में बंभोले को जिमाया जाता है , उसे घर में बंद करके बाहर से बच्चे उससे संवाद करते हैं - अपने गुरु का नाम बतलाओ। कभी-कभी यह संवाद दस-दस मिनिट तक चलता रहता है। मथुरा के राजाधिराज मन्दिर में ढाँड़ा-ढाँड़ी का नृत्य होता है। सूरदास ने ढाँड़ा-ढाँड़ी का पद लिखा था। यह भी नट जैसी ही जाति थी। दोनों ओर दो बांस गाढे और रस्सी तान दी।नटिनी ढोलक पर ताल बजाने लगी और उसकी बेटी रस्सी पर नृत्य करती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर चलने लगी। बीच में कुछ विचलन सा देखा तो नट ने स्वर उठाया -बहुत गई थोरी रही, सो ऊ बीती जाय।

तालभंग मत हूजियो, नहिं कुलहि दाग लग जाय।राजस्थान और ब्रजमंडल में कठपुतली का खेल भी बहुत प्रचलित है। सूत्रधार हाथ की उँगलियों के सहारे कठपुतलियों को नचाता है और उसकी 'जीवन-संगिनी' ढोलक बजा कर कथा का गायन करती है।रामलीला, रासलीला और कठपुतली के अतिरिक्त नरसिंह लीला, भाँडभगतिया, बहुरूपिया और नट के तमाशे ब्रजमंडल के लोक-नाट्य के ही अलग-अलग रूप हैं।

मेरे पड़ौस में एक अभिनेता रहते थे, एक दिन बच्चे को डराने के लिए वे हौआ बन कर आ गये। विवाह आदि अवसरों पर बहुरूपिये आते हैं और अपनी कला से अचंभे में डाल देते हैं। ये लोकनाट्य-रूपों के कुछ उदाहरण हैं, जिन पर भरतमुनि की दृष्टि से ही विचार, पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। दुख से व्याकुल, अत्यन्त थके हुए, शोकसंतप्त को कुछ विश्रान्ति देने के लिए, समाज में धर्म की व्याख्या करने के लिए, समष्टिहित और सामाजिक-विवेक की प्रतिष्ठा करने के लिए और लोकशिक्षण के लिए " लोक" विभिन्न आयोजन करता है, उन में एक आयोजन लोकनाट्य भी है। लोकनाट्य में दृश्य भी लोक है और दर्शक भी लोक है, अभिनेता भी लोक है, अभिनय भी लोक है और उसका भावन करने वाला भी लोक है। मुझे आज जैसी याद है कि मंडी रामदास में रहने वाला एक व्यक्ति जटा लगा कर, हाथों में सारंगी जैसा कोई टूटा सा वाद्ययंत्र लेकर चारों बाजारों में डोलता था, और बीच-बीच में खड़ा होकर बतलाता था कि आज रामलीला में ताड़कावध होगा या आकाशवाणी होगी या वनोवास होगा। लोकनाट्य लोकजीवन की प्रक्रिया है, यह भी संवाद का एक रूप और प्रकार है। यदि हम लोकनाट्य की दृष्टि से ब्रज के लोकजीवन को देखें, तो कितने ही रूप हमारी आँखों के आगे सजीव हो जाते हैं, उस सब के विस्तार के लिए व्यापक शोध की आवश्यकता है। इस लेख में उदाहरण के तौर पर संक्षेप में दो-चार प्रमुख बिन्दुओं को प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है।

स्वांग ब्रज के जनपदीय-जीवन का उल्लास है। यों हाथरस के स्वांग और आगरा, मथुरा, वृदावन के भगत एक ही नाट्य-परम्परा के रूप हैं, परन्तु भगत-परम्परा अव्यावसायिक तथा स्वांग व्यावसायिक होते हैं। 1971-72 में जब सासनी में कृष्णाकुमारी की नौटंकी का आयोजन हुआ था, तब जनपदीय-जन पर नौटंकी के जादू का असर देखने को मिला था। "अमरसिह राठौर उर्फ आगरे की लड़ाई" का खेल था। अमर सिंह की मृत्यु के बाद जब हाड़ी रानी की भूमिका में चूड़ी फोड़ते हुए कृष्णा कुमारी ने करुण स्वर उठाया था- "पिया तू कहाँ, पिया तू कहाँ" तो हजारों-हजारों दर्शकों से भरे उस विशाल पंडाल में सन्नाटा खिंच गया था।स्वांग या भगत के दर्शकों, आयोजकों और कलाकारों में किसान,मजदूर, हलवाई, परचूनियाँ, हिन्दू, मुसलमान, गाँव और शहर की धोबी, तेली , नाई,बनियाँ, बामन और ठाकुर समस्त जाति-बिरादरियाँ बिना भेदभाव के सम्मिलित हैं।पौराणिक कथाओं से लेकर वर्तमान -युग की देश-विदेश की घटनाओं तक में स्वांग की कथावस्तु का ताना-बाना बुना है। सती साविती, द्रौपदी, अनसूया, दमयन्ती, शकुन्तला, ध्रुव, प्रहलाद, सत्यहरिश्चन्द्र से लेकर महाराणा प्रताप, शिवाजी, हकीकत राय, सुभाषचंद्र बोस और राजा बच्चूसिंह तक और गुरु गोरखनाथ, गोपीचन्द्र, भरथरी, पूरनमल, हरदौल, निहालदे, हीररांझा और गुरुगुग्गा से लेकर लैला-मजनू, गुलबदन, शीरी-फरहाद, स्याहपोश, जान-आलम, अंजुमन-आरा तक की कथाओं को लेकर स्वाँग रचे और खेले गये हैं। स्वांगों के अध्ययन के बिना ब्रज के जनपदीय जीवन का साक्षात्कार संभव नहीं है। आपने बस में यात्रा करते हुए देखा होगा कि कोई किसान का लड़का छबीली-भटियारी पड़ रहा है और कोई संत-वसंत पढ़ रहा है। वास्तव में ये पुस्तकें ब्रज के लोक-जीवन का मानसिक-परिवेश तैयार करती है। इसलिये इनके अध्ययन की आवश्यकता है।मेरे कहने पर गाँव के एक छात्र ने वह पंक्ति सुना दी जो कोई भी पिता अपने पुत्र से और कोई भी अध्यापक अपने विद्यार्थी से नहीं सुनना चाहेगा। पर यह सब स्वांग में होने लगा है। अमरसिंह राठौर खेल में कुछ नंगे संवादों के साथ एक-दो पात्रों की कामुक चेष्टायें देख कर मेरे भीतर का अध्यापक किस प्रकार सिकुड़ गया था, यह मुझे आज भी याद है। श्री रामनारायण अग्रवाल इसे सांगीत का बाजारूपन कहते थे क्योंकि इसी चटक- मटक और ठुमके पर स्वांग-मंडली को इनाम मिलता है। इसे हम स्वांग

की कुरुचि या कुरूपता कहना चाहेंगे किन्तु स्वांग हों या सिनेमा अथवा फिल्मी -पत्रिकाओं और अपराध कथाओं के नाम से धड़ाधड़ बिकने वाला घासलेटी- साहित्य हो, अश्लीलता का प्रश्न एक ही है। और यह प्रश्न सौन्दर्यबोध जगाने का प्रश्न है। पान बेचने वाले, तांगे हाँकने वाले औरसाधारण श्रमिक तक के पहनाव, उड़ाव, खानपान और बोलचाल में सुरुचि का विकास सच-मुच एक बड़ा प्रश्न है। पं. कृष्ण गोपाल वर्तमान युग के उन भगतकारों में से थे, जिन्होंने इस मंच को साहित्यिक -गरिमा से मंडित करने का प्रयत्न किया था। शिशुपाल वध सांगीत में शरद-ऋतु का वर्णन देखिये-

है मग्न खद्योगतन गगन में मगन में आनंद में मेदिनी है।
बिखेर दी चन्द ने है चहूँ दिस चमन में चांदी सी चांदनी है ।।
अमोल मृदुबोल गोल गुल से कपोल पर सरजी तिल रही है।
शरद चन्द्रमा की चांदनी में जरद चमेली सी खिल रही है ।।

स्वांगों की भाषा में हिन्दी, उर्दू और ब्रजभाषा तथा अन्य जनपदीय-बोलियाँ घुलमिल कर एकरस हो गयी है। वह अनगढ़ अपरिष्कृत हो तो हो, परन्तु भावों का उसमें जबर्दस्त प्रवाह है। अमरसिंह राठौर सांगीत में बादशाह दरबार से भाग कर महलों में पहुँचता है-

तू तो अदना बतायें है जिसके तई उसके जौहर की तुझको खबर ही नहीं।
उसकी सानी बहादुर लड़ाका जबां कोई दुनिया में आता नजर हीं नहीं।
अब सलाबत को कर कल्ल मुझ पै झुका यह जचा मुझको अब मेरा सर ही नहीं।
तू शुकर कर खुदा का में जीता बचा आज मरने में थी कुछ कसर ही नहीं।।

सासनी के सुखराम हलवाई से मैंने पुराने स्वांगों की चर्चा प्रारम्भ की तो वे दूकानदारी छोड़ कर मेरे पास आ बैठे, बोले-तब सासनी में इन्दरमन और मुरलीधर के दो अखाड़े थे। एक अखाड़े के स्वांग में रानी (स्त्री पात्र) को यदि पचास हजार का जेवर पहनाया गया है, तो दूसरे अखाड़े के स्वांग में प्रयास किया जाता था कि कम से कम एक लाख के आभूषण पहनाये जायें। इन्दरमन के अखाड़े में कन्हैयालाल, भूदेव प्रसाद, राधा बल्लभ, घनश्याम चौबे और कन्हैया लाल चौबे थे तया मुरलीधर अखाड़े में गोकुला जैसा प्रवीण गायक था। सुखराम कहते हैं कि सारी बस्ती स्वांगों के आयोजन में इस प्रकार लग जाती थी जैसे घर का ही कामकाज हो। गहरी साँस लेकर वे बोले- "कहाँ रही अब यह बात !! सस्ता जमाना था. थोड़े में गुजर-बसर हो जाती थी, लोगों के पास फुर्सत भी प्यार-प्रीत के रिश्ते थे। रईस लोग हजारों रुपये के गहने भरोसे पर यों ही दे-देते थे।"सच तो यह है कि तब गरीबी थी परन्तु गरीबी के द्वारा दी गयी रिक्तता को भरने की कला लोक ने विकसित कर ली थी। तब सामूहिक जीवन से जिन्दगी का रस ग्रहण करने का माद्दा था । आज गरीबी तो है ही राजनीति भी आ गयी। गाँव-गाँव गुटबंदी में बिखर गये। गाँव में स्वांग हो रहा है और सौ कदम आगे गोली की आवाज गूंजती है।लोकनाट्य की मौलिकता इस बात में नहीं है कि किसी पात्र का अभिनय कितना कलात्मक है या कि उसके मंच की सज्जा कितनी भव्य है? लोकनाट्य मंच की सबसे बड़ी मौलिकता उसके मूल में निहित सामूहिक जीवन पद्धति है। लोकनाट्य में कलाकार और दर्शक सहभोक्ता होते हैं।

नथाराम शर्मा गौड़ (1874-1943) ब्रज की स्वाँग-परंपरा के शिखर पर माने जाते थे, उनका ब्रज की लोकनाट्य-परंपरा में वही स्थान है, जो भोजपुरी लोकनाट्य-परंपरा में भिखारी ठाकुर का और हरियाणवी की साँग-परंपरा में लखमीचन्द का है । नथाराम शर्मा गौड़ दरियापुर गाँव के थे, कुछ लोग तो बतलाते हैं कि बहुत छोटी अवस्था में ही वे जीविका की खोज में हाथरस आये थे और मोहल्लों में गाते हुए डोलते थे , यहाँ चिरंजीलालजी ने उनके स्वर के माधुर्य को पहचान लिया और उन्होंने नथाराम जी को संगीत की शिक्षा दी । आगे चल कर सांगीत का जो मंच नथाराम शर्मा गौड़ ने विकसित किया, उसका जादू यह था कि दस-दस हजार दर्शक उनके स्वाँग को देखने के लिए चले आते थे, मन्त्रमुग्ध होकर बैठे रहते, जब रात्रि के अन्तिम प्रहर में नथाराम भैरवी और आसावरी में करुण-भाव की टीप भरते तब लोगों के नेत्रों से अश्रुवर्षा होने लगती थी । नथाराम ने देश में ही नहीं, विदेश में भी नाम कमाया था । नथारामजी ने बहुत से स्वाँग लिखे थे । कवि काका हाथरसी ने नथारामजी के संबंध में कहा था कि -" उन्हीं दिनों हाथरस देवछठ के मेले पर सांगीताचार्य नथाराम शर्मा का स्वाँग हुआ करता था। बड़ी धूम थी नत्था के स्वांग की। हजारों श्रोता रात-रात भर स्वाँग का आनन्द लेते थे। बिना किसी पुलिस प्रबन्ध के भीड़ नियंत्रित रहती थी। माइक और लाउडस्पीकर भी उन दिनों नहीं थे। पंडित नथाराम की आवाज इतनी पैनी और दमदार थी कि रात के सन्नाटे में एक मील तक उनका स्वर पूरे शहर में गूँजता था। नथाराम की विशेषता यह थी कि जब उनका स्वाँग क्लाइमैक्स पर पहुँचकर श्रोताओं को वाह, आह या हाय की ध्वनियाँ निकलवा देता तो स्वांग की कथा समाप्त हुए बिना ही मंच पर खड़े डोकर नथाराम दोनों हाथ ऊपर उठाकर घोषणा कर देते थे 'बोलो अटलछत्र की जय' इस जयकारे का अर्थ है खेल समाप्त।

काका- हाथरसी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि " रस के प्यासे श्रोता और दर्शक खेल समाप्त होने पर नथाराम को खुलेआम गालियाँ देते थे- "अरे नत्था तैने गजब कर दियौ सारे, कैसौ मजा आइ रहौ हतौ स्वाँग में, तैने बीच में ही समाप्त करि दियौ।" श्रोताओं की गाली सुनकर प्रसन्नता से भरे स्वरों में नथारांम कहते थे-"गाली दे रहे हैं सारे, जेई तौ मेरे खेल की सफलता कौ सूचक है।""डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है कि - " आज यह कहना उचित होगा कि पंडित नथाराम जैसा विराट व्यक्तित्व यदि लोकनाट्य स्वाँग (नौटंकी) क्षेत्र में पदार्पण न करता तो इस कला का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता।"नथाराम इन्दरमन अखाड़े के थे, यह तुर्रा की परंपरा में था । पंडित नथाराम ने अपने और अपनी मंडळी का परिचय अपने सांगीत में ही लिख दिया था-सम्बत शशि ग्रह तत्व ऋषि नृपति विक्रमाजीत। शुक्ल भाद्रपद पंचमी, पूर्ण भयौ सांगीत।।

पूर्ण भयौ सांगीत, मग्न मन मिटी उदासी।
दास चिरंजीलाल, नगर हाथरस निवासी ।।
तिनकी कृपा कटाक्ष, विप्र नथ मल सुखरासी।
गौड़ वंश अवतंश, काव्य स्वच्छन्द प्रकाशी ॥
सो सब सज्जन पढ़ि कृपा कर सफल परिश्रम कीजिए।
भूल चूक अपराध शिशु जान क्षमा कर दीजिए ॥
इन्द्र अखाड़ा शहर हाथरस अब कुछ उसका करूं बयान।
इन्द्र व तोताराम, गणेशीलाल किया बैकुण्ठ पयान।
हैं कायम गोविंद चिरंजीलाल नामजद हुए महान।
जिनका लेखराज, परशादी और नरायन रखते मान।
मदन, जानकी, हीरा, लच्छा नाम जगत में पाये हैं।
विप्र कन्हैयालाल व चौबेजी घनश्याम व टीकाराम।
उस्तादों का नगर सासनी में कर रक्खा भारी नाम।
मिट्ठन जाहर सुरपुर पहुंचे, रहा गणेश हसायन ग्राम।
राजी-खुशी हमेश रात दिन ताको रखें नन्द कौ श्याम ॥
होती और हुलासी गंगा से वादी चकड़ाये हैं।
भोला, रोशन, मम्मद आशक अल्लाही हरवाते हैं।
बनारसी व बिहारी, चनुआं, चन्दा, अन्ता गाते हैं।
चौबे छज्जूलाल कंठ खुलने की दवा पिलाते हैं।
करै खलीफा नत्था खातिर सबकी जो कोई आते हैं।
ग्रंथ बढ़े सब नाम कहूं इससे संक्षेप सुनाये हैं।
कार्तिक बदी दौज गुरु वासर उनईस सौ-सरसठ की साल।
जगदम्बा की कृपा दृष्टि से किया बनाकर पूरा ख्याल ॥
भूल-चूक जहां कहीं रही हो, सब सज्जन लीजियौ संभाल।
होय हाथरस बीच स्वांग जब, देंगे इजाजत मोहनलाल।
"नथाराम द्विज गौड़" सदा श्री श्याम-चरण शिर नांये हैं।

उनके लोकप्रिय नाटकों में राजा हरिश्चंद्र जैसे चरित्र को दर्शाया जाता था, जिन्होंने अपने वचन का पालन करने के लिए धन, राज्य, पत्नी और संतान का त्याग कर दिया था। सांगीत- सम्राट नथाराम गौड़ के संबंध में एक शोध-प्रबंध भी लिखा जा चुका है। पं. नथाराम गौड़ ने हाथरस जिले के नाम को विश्व स्तर पर स्थापित किया था। नथाराम ने उत्तरी अमेरिका, इंडोनेशिया, मॉरीशस और म्यांमार में अपने नाटक प्रस्तुत किए। रंगून में कई लोगों ने नथाराम के नाटकों को समझने के लिए ही हिंदी सीखी। सन् 1890 के आसपास उन्होंने स्वतंत्र अखाड़ा स्थापित करके इस विधा को व्यावसायिक रूप दे दिया। उनके लिखे लगभग 200 स्वांग आज भी पण्डित नथाराम गौड़ लोकसाहित्य शोध-संस्थान के पुस्तकालय में आज भी मौजूद हैं। हाथरस नगरपालिका ने अलीगढ़ रोड़ का नाम बदलकर "पं. नथारामगौड़ -मार्ग" कर दिया है।

ब्रज में जगह जगह लोकनाट्य स्वाँग के अखाड़े थे। हाथरस में चार अखाड़े थे। मथुरा में तीन अखाड़े थे। आगरे की भगत गायकी का आगरे की ख्यालगोई से गहरा सम्बन्ध है।प्रसिद्ध ख्यालगो रिसाल गिरि से दीक्षा लेकर ख्यालगोई के चार अखाड़े, ताजगंज (गुरु नन्दराम महरी) बाजार चौक घमन (गुरुः वृन्दावन बिहारी लाल) कचहरी घाट (गुरुः रूपराम) एवं नाई की मंडी (गुरुः खैराती लाल) स्थापित हुए। ख्यालगोई के ये अखाड़े भगत के भी मैदान में उतर आये। सम्वत् १८८४ में मोतीकटरा के 'राय जोहरी लाल' अमरोहा से विशन विरह्मन द्वारा लिखित 'रूप बसन्त' स्वाँग का प्रदर्शन किया एवं ताथेई गाया।इन अखाड़ों की पहचान तुर्रा और कलँगी से जुड़ी हुई है। तुर्रा की परंपरा का सूत्र दशनामी संन्यासी तुखनगिरि से जुड़ता है और कलंगी की परंपरा का सूत्र सूफी फकीर शाह अली से जुड़ता है। ये साधु और फकीर हाथ में चंग वाद्य लेकर बजाते थे और जनता को ज्ञान प्रदान करते थे। अखाड़ों के बीच प्रतियोगिता भी होती थी। बतलाया जाता है कि ये साधु और फकीर बादशाह औरंगजेब के जमाने में थे।

डॉ. दशरथ ओझा ने इन लोकनाट्यों को हिन्दी-नाटक का स्रोत बतलाया है -"हिन्दी नाटक की परम्परा का मूल स्रोत यह जन-नाटक ही हैं, जो स्वाँग आदि नाम से अपने प्राचीन रूप में अब तक विद्यमान है। क्रमशः इन जन-नाटकों की एक शाखा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण किया।" (हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास पृ.42)। डॉ. गिरीश रस्तोगी ने लिखा था कि ए-"परन्तु यह धारा हिन्दी की ओर मुड़ गई। यद्यपि ये लोकनाटक ब्रजभाषा में ही खेले जाते थे और आज भी लोकभाषा में ही प्रचलित हैं। " (हिन्दी नाटकः सिद्धान्त और विवेचन)।

यों रामलीला देश में सैकड़ों ही जगह होती है परन्तु अभिनय का जो खुलापन, ब्रजभाषा की जो मधुरता और गायन-शैली की जो अदा ब्रज की रामलीला में है, उसके कारण ब्रज के लोकनाट्य ने रामचरित में घुलमिल कर एक खूबी पैदा कर दी है।ब्रज की रामलीला की पात्र-योजना, लीलाक्रम तथा अभिनय-पद्धति मौलिक है और प्रभाव-शालिनी है। रामचरितमानस के आधार पर तथा "क्वचिदन्यतोपि" की उक्ति के अनुसार कुछ अन्य रामचरित-काव्यों के सहारे, यहां जिस रामलीला -पद्धति का विकास हुआ है, उसमें स्व. श्री गोविन्द नायक के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। स्वर्गीय नायक जी रामलीला-नाट्य के कुशल अभिनेता, निर्देशक, संचालक तथा हनुमान-भक्त थे। ताम्र जैसा तपा हुआ वर्ण, मल्लोचित पुष्ट-बलिष्ठ शरीर, ओजस्वी मुखमंडल तथा उन्नत -ललाट पर रामानुजी- तिलक वाले नायक जी जब मथुरा की रामलीला में वाल्मीकि, परशुराम, केवट तथा हनुमान बनते थे, तो लोग उनकी आकृति-चेष्टा, संवाद तथा अभिनय पर मुग्ध हो जाते थे। वास्तविकता तो यह थी कि नायक जी के लिये 'रामलीला-अभिनय' व्यवसाय न होकर जीवन का उद्देश्य था। वे हृदय से रामभक्त, बुद्धि से रामभक्ति प्रचारक तथा शरीर से अभिनेता तथा निर्देशक थे। वे रामचरित में तन्मय थे। अध्यात्म -रामायण, आनन्द- रामायण, वाल्मीकि-रामायण, सूर रामचरितावली तथा रसिकबिहारी- रामायण आदि अनेक ग्रंथों का

आलोड़न करके उन्होंने अनेक लीलाओं को यथा-प्रसंग अपनी अभिनय विधि में समन्वित कर लिया था, जैसे-नारान्तक लीला, जालंधर-लीला, राम- राज्याभिषेक के समय जानकीजी की मान-लीला, बाल्यकाल में बंदरे-लीला, चूड़ाकरन कीन्ह गुरु आई तथा तुलसी -वृंदा चरित्र आदि। नायकजी की पात्र-योजना आकर्षक थी। धनुषभंग-प्रसंग में एक मोटा दुष्ट राजा, वन की लीला में मक्खीचूस, राम जन्म-प्रसंग में राम-रास भाण आदि उनकी पात्र-योजना के विशिष्ट अंग थे, जो अभिनय में हास्य का प्रवर्तन करने वाले पात्र थे।रामचरित के एक-एक दृश्य को मंचायित करने के लिए वे घंटों सोचते थे। एक बार बुन्दावन में किसी संत के आश्रम में लीला हो रही थी, मेघनाद- वध का प्रसंग था। मेघनाद की मृत्यु के बाद उसके मुख से संवाद कहलवाना था (उसकी एक भुजा तथा मुख वाले प्रसंग का स्मरण करें)। तब तक मैंने इस दृश्य के लिये एक मुखौटे को राम को शरण में लाया जाता हुआ देखा था तथा नेपथ्य से संवाद सुना था परन्तु उस दिन जब पर्दा उठा तो मेरे बाल- मन के आश्चर्य का ठिकाना नहीं; मंच पर केवल मुख था, धड़ दीख ही नहीं रहा था। यह दृश्य इतना सजीव था कि प्रत्येक दर्शक के नेत्रों में प्रसन्नता की चमक थी। श्री गोविन्दनायकजी ने संवादों को सरल बनाने का कार्य बड़ी रुचि से किया। यद्यपि संवाद के स्वरों का उतार-चढ़ाव पुरानी परम्परागत मंच -पद्धति से प्रभावित था, परन्तु उनकी भाषा साधारण से साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति झौर बालकों के मस्तिष्क के साथ एकाकार हो जाने में सक्षम थी। प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के हृदयों का साधारणीकरण उनके संवादों की भाषा की सिद्धि थी। संवादों के साथ अन्य कवियों की कविता तो रहती ही थीं, कुछ रचना वे स्वयं भी कर लेते थे। केवट प्रसंग का निम्नलिखित गीत बहुत लोक प्रिय है-

सुनों नैया के खेवन हार, हमें जाना है परली-पार।
हमें देख कर ले गये, क्यों नैया लौटाय।
भैया मेरी बात को,सुनों पास में आय।
करो इसका भी अधिक विचार।

इन रचनाओं की सरलता से भी अधिक प्रभावशालिनी इनकी मनोरम -धुन हुआ करती थी। धनुषभंग -प्रसंग में सीता की सहेलियों का जब यह गीत हुआ करता तो दर्शक सिहर उठते-

"सुकुमारि सिया -प्यारी,धीरे चलो सुकुमारि।
सुकुमारि सिया प्यारी,धीरे चलो सुकुमारि।
देस-देस के राजा आये, कर-कर के अपनों सिगार।

"पार्वती मंगल' को भी उन्होंने दोहा-चौपाइयों में रूपायित किया था।यही सब कारण थे कि मथुरा-वृन्दावन के अतिरिक्त उन्हें कोटा, बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, नागपुर, जयपुर, अलवर, जोधपुर, नाथद्वारा, उज्जैन, इन्दौर, बीना, झज्जर (पंजाब) चित्रकूट, नवलगढ़, मुकुन्दगढ़, ग्वालियर, अयोध्या आदि अनेक स्थानों पर रामलीला के लिए आमंत्रित किया गया तथा अनेक संत-महंत, विद्वानों ने प्रशंसा-पत्र तथा शील्डें प्रदान कर उनको सम्मानित किया। ग्वालियर के महाराज जीवाजी राव, नवाब -रामपुर, बाबूजगजीवनराम से उन्हें सम्मान पत्र प्राप्त हुए। साधारण जनता से लेकर विद्वानों तक के लिये उनके पास पर्याप्त सामग्री थी।

आपका जन्म सम्बत् १९६१ में मथुरा में हुआ। बाल्यावस्था में ही माता-पिता का देहावसान हो जाने के कारण दादी सरस्वती तथा पिताजी के मामा श्री पम्पोजी, नारायणजी और अपने मामा विशनलाल के संरक्षण में पालनपोषण हुआ और शिक्षा -दीक्षा प्राप्त की। ग्वारिया बाबा आपके संगीत गुरु तथा नवनीत जी काव्य गुरु थे। उस्ताद लखपत राय जी से पटाबनैटी की शिक्षा ग्रहण की। नायक की उपाधि आपको गंगे बालचर शान्त कुटीर से प्राप्त हुई जो आगे चलकर आपका उपनाम ही बन गई। देवास जूनियर, देवास सीनियर तथा धार रियासतों के आप तीर्थ -पुरोहित थे। तीनों नरेशों पर आपके चरित्र तथा त्याग की गहरी छाप थी, उनके साथ आपने अनेक तीथों का भ्रमण किया।

मथुरा में सन् १९३२ में राम लीला का सूत्रपात स्व. गिरिराज दत्त जी उपनाम "खपाटा" जी ने किया आप तभी से उनके संरक्षण में रहे। श्री खपाटा जी से आपने रामचरितमानस का अध्ययन किया। खपाटा जी के साथ उस समय श्री कैयट जी, ढोटा जी, गोविन्द नायक की जो त्रिमूर्ति थी वह आज भी मथुरा के वृद्ध-मुखों से प्रशंसा की अधिकारिणी है। सन् १९४९ में आपने एक मण्डली बनाई और अभिनय प्रशिक्षण किया तथा रामचरित को जन-जन तक पहुंचाने का संकल्प लिया और यह संकल्प वे जीवन के अन्त तक निभाते रहे। सम्वत् २०२७ में आपका देहावसान हुआ परन्तु आपका संकल्प आज भी फल-फूल रहा है और आज अनेक मण्डलियां उनको अपने गुरु रूप में स्मरण करती है।

रासलीला और रासमंच को लेकर डॉ. वसन्त यामदग्नि, रामनारायन अग्रवाल, प्रभुदयाल मित्तल के अनुसंधान प्रकाशित हो चुके हैं, स्वामी मेघश्याम पर पुस्तक प्रकाशित हुई है। भागवत रासपंचाध्यायी में रासलीला अनुकरण का प्रसंग है। शरद-रात्रि में महारास करते-करते जब श्री कृष्ण अंतर्धान हो गए तब उनके विरह में व्यथित ब्रजांगनाओं ने कृष्णलीलाओं का अनुकरण किया था। गिरिराज धारण का दृश्य गोपिकाओं ने अपनी ओढ़नी द्वारा बनाया था। पूर्वांचल उड़ीसा के संत महात्मा शंकर देव ने अंकियानाट नाम से एक मंच स्थापित किया था और उनका पहला नाटक "कालियमर्दन" था,जो ब्रजबुलि में था। भक्तिकाल में भक्ताचार्यो ने ब्रज के वर्तमान रास-मंच को गठित किया था ।वल्लभाचार्य, महान संगीतज्ञ स्वामी हरिदासजी, महाप्रभु हित हरिवंशजी हरिराम व्यास और नारायण भट्ट गोस्वामी के नाम उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि रास का पहला मंचन मथुरा के विश्राम घाट पर हुआ था,उसमें वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास जी का भी योगदान था। वल्लभाचार्य जी ने स्वामी घमंड देव, जो करहला के थे, को रास- मंडली बनाने का काम सोंपा था। स्वामी हित हरिवंश जी ने भी रासमंच के विकास में अपना योगदान किया था और वृंदावन में रासमंडल बनवाया गया था, भक्तकवि हरिराम व्यास जी उनके सहयोगी थे।

ब्रज की रासलीला ने देश के कोने-कोने में अपनी आकर्षक मुद्रा अंकित की है। विदेशों के भी जो लोग वृन्दावन आते हैं, रासलीला के नृत्य-संगीत-अभिनय की भंगिमा और भावों के वैभव की आँखों में भरने को उतावले हो जाते हैं। रास ने दो शताब्दियों तक भक्ति-आन्दोलन के संदेश को जन-जन तक पहुँचाया था। रास के कीर्तनीय रूप में राधा कृष्ण के रूप सजाए जाते हैं और भक्तिभाव के पद गाये जाते हैं और रास का दूसरा रूप है - लीला का ,जिसमें मनोरंजन शैली में लोकनाट्य और अभिनय किया जाता है। रासलीला के प्रारंभ में नित्यरास होता है , जो नृत्य के द्वारा होता है।

करहला ब्रज के रासधारियों का पुराना गढ़ है। वहीं के उदयकरण, खेमकरण, विक्रम, रामराय, कल्याणराय आदि रासधारी बड़े प्रसिद्ध थे। रामराय और कल्याणराय के सहयोग से ही नारायणभट्टजी ने रास का व्यापक प्रचार किया। नारायण भट्टजी स्वयं बड़े मधुर गायक और कवि थे।परवर्ती युग में करहला के राधाकृष्ण रासधारी बड़े प्रसिद्ध हुए।उन्होंने 'रास-सर्वस्व' नामक ग्रंथ की भी रचना की थी। इनके बाद करहला के चोथा स्वामी और लाड़िलीशरण रासधारी बहुत प्रसिद्ध हुए। महाप्रभु हित हरिवंशजी ने वृंदावन में चैन घाट पर स्वयं सर्वप्रथम एक रासमंडल बनवाया। स्वामी हरिदासजी और हरिवंशजी स्वयं रासलीला में समाजी के रूप में गायन करते थे। इस तथ्य को व्यासवाणी में स्वयं व्यासजी ने स्वीकार किया है। वह लिखते हैं "हरिदासी हरिवंशी गामें ,व्यास चिराग दिखामें "चन्द्रसखीजी ने रास के लिए विपुल साहित्य लिखा था वे अपनी रासमंडली के साथ देशाटन भी करते थे। चाचा हित वृन्दावनदासजी ने राधा की महत्ता प्रतिपादन के लिए अनेक नवीन लीलाओं की रचना की, जैसे 'बनजारी लीला', 'दुलरीलीला', 'गुड़ियालीला', आदि। छद्मलीलाओं के तो चाचाजी सम्राट थे। ब्यालीस छद्मलीलाएं लिखीं।इस प्रकार महाकवि जयदेव, सूर तथा अष्टछाप के कवियों की वाणी, रसिक-भक्तों की पदावली, निंबार्क संप्रदाय के श्री हरिव्यासदेवजी की अष्टयाम की पदावली और परवर्ती सभी कवियों का साहित्य रास-मंच का अभिन्न अंग है। रासधारियों ने स्वयं भी विपुल मात्रा में रास-साहित्य की रचना करके समय-समय पर इस मंच की अभिवृद्धि की है।स्वर्गीय मेघश्याम वर्तमान युग के लोकप्रिय रास-साहित्य रचयिता थे। उन्होंने प्राचीन महात्माओं की पदावली को रसियों में ढाल कर रास के संगीत का सरलीकरण किया।स्वामी किशनलालजी, स्वामी कुंवरपालजी, स्वामी हरिगोविदजी, स्वामी रामस्वरूपजी, स्वामी वेदरामजी, स्वामी देवकी-नंदनजी, स्वामी बीरामजी, फतेहरामजी, स्वामी फतेहकृष्णजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसमें दो मत नहीं हैं कि रासलीला ने ब्रज के लोक-जीवन को मुखरित किया है। रासलीला के नायक कृष्ण कन्हैया का चरित्र ही ऐसा है कि वह लोकमानस में रसा-बसा है। यह लोक के बीच ही खेला है और लोक के बीच ही बड़ा हुआ है।

नरसिंह-लीला की परंपरा इनी-गिनी जगहों पर ही है। मथुरा की रामलीला के संबंध में सुना जाता है कि इसकी परंपरा मुल्तान (अब पाकिस्तान) में पनपी थी और वहाँ यह विशिष्ट युद्ध-नृत्य मथुरा के एक व्यक्ति श्री खड्गराम पाठकने देखा था। उन्होंने मथुरा लौट कर नृसिंह-नाट्य की परंपरा का सूत्रपात किया था।बाद में यह लोकनाट्य जन-मानस में बसा और विकसित हुआ। नृसिंह भगवान के भव्य मुखौटे उस समय मुलतान से ही लाये गये थे, अब ये यहां भी बनाये जाते हैं।स्व. कविवर बालमुकुन्द चतुर्वेदी का विचार था कि नरसिंहलीला के युद्ध-नृत्य की परंपरा शूरसेनी-योद्धाओं में प्रचलित थी। मथुरा में आदिवाराह तथा श्वेतवाराह के ऐतिहासिक प्राचीन-मन्दिर तथा उस मंदिर के आसपास के क्षेत्र में इस लोकनाट्य का आयोजन युद्धनृत्य की इस परंपरा को और अधिक प्राचीन होने की संभावना प्रकट करता है।पुराणों में वर्णित विष्णु-भगवान के वाराह और नृसिंह आदि अवतारों की कथाएं भारत के जन-मानस में आसुरी-प्रवृत्तियों पर मानवीय मूल्यों की विजय गाथा हैं। यह उस अटल विश्वास की कहानी है कि ईश्वर सर्व-नियन्ता और सर्वव्यापक है। वह छोटा-सा बालक प्रह्लाद सत्य के अविचल- सिद्धान्त का प्रतीक है, जिसने पिता के पूछने पर निर्भय होकर कह दिया था कि 'राम तुममें, मुझमें, खड्ग में और इस खंभ में भी विराजमान है' और यह सुन कर हिरण्यकशिपु ने जैसे ही खंभ पर प्रहार किया, वैसे ही उसका आसुरी अहंकार खंड-खंड हो गया। सात्विक -गुणों की यह विजयगाथा वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (नृसिंह-चतुर्दशी) के दिन ब्रज-केन्द्र मथुरा में 'झें-पतिंग, -झें-पतिंग, झें झें झें झें पतिग की ताल पर थिरकने लगती है और "महिषासुर देवी तुही- तुही, नरसिंहा नाचे गली-गली" की लोकोक्ति के साथ उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले में घूमती है तथा घर-घर में समा जाती है।

इस आयोजन का श्री-गणेण नृसिंह-चतुर्दशी को सायंकाल होता है. जब मथुरा में विभिन्न स्थानों पर चेहरों-मोहरों का प्रदर्शन होता है। आयोजक-गण दस-दस दिन पूर्व इन मुखौटों को चटकीली पन्नियों से सजाते हैं और अपनी सज्जा-कला का सर्वोत्कृष्ट संभव- रूप इन मुखौटों में प्रस्तुत करते हैं। इसी संध्या को भारत-विख्यात द्वारकाधीश-मंदिर में बड़े-उल्लास के साथ सहस्रों दर्शकों की भीड़ के बीच "उच्छव" के रूप में नृसिंह -नाट्य का प्रदर्शन होता है। पुनः अर्द्धरात्रि से मथुरा के कुआगली, मानिक चौक, सतघड़ा, चौबच्चा आदि मुहल्लों में सबसे पहले महिषासुर का दानव-नृत्य होता है। काठ का महिष -आकृति मुखौटा गोट से सजे काले वस्त्र, घुटनों तक का जांघिया, कमरबंद और हाथों में खाँडा। तब रक्तवसना दुर्गा खड्ग-खप्पर लेकर प्रकट होती है. और पैंतरा बदलती हुई महिष का वध कर देती है। तदुपरांत अधकट्या (अहिरावण) प्रकट हो जाता है, जिस का मुख आधा पीला और आधा काला होता है। ऊँची कुदान, लंबी झपट और तिरछी गतियों के साथ वह मायायुद्ध का अभिनय करता है, तभी उससे द्वन्द-युद्ध करने के लिये हनुमान प्रकट होते हैं। हनुमान की गदा घूमती है और अधकट्या का वध हो जाता है। उसके बाद साज-सज्जा से युक्त और चंवरों से विभूषित मुखौटा धारण किये हुए वाराह-भगवान प्रकट होते है। वे हाथ-पैरों से भूमि-

विदारण की मुद्रा प्रस्तुत करते हुए नृत्य करते हैं। हिरण्याक्ष-वध के पश्चात् भू-देवी (वसुंधरा) वाराह प्रभु की आरती करती है।दूसरे दिन प्रातः काल पाँच बजे से ही लोग खुले हुए रंगमंच [जो बड़े-बड़े चार-पांच तखत और चौकियों से सीढ़ियों के आकार का बना हुआ होता है] के क्षेत्र में जमा हो जाते हैं। सर्व-प्रथम गणेश का मांगलिक-नृत्य होता है-बड़ा पेट, सूँड़युक्त मुखौटा, हाथ में अंकुश। तदुपरान्त हंस के खोल को वाहन बनाकर चतुर्मुख ब्रह्मा का आगमन होता है। हिरण्यकशिप उनके चरण छूता है और ब्रह्मा अभय मुद्रा प्रदर्शित करके चले जाते हैं।तभी रुद्र- धूर्जटी के वेष में महादेव आते हैं- मदमस्त नेत्र, जटाजूट, चंद्रभाल और वृष का खोल वाहन के रूप में। इसी बीच वाद्यों की ताल बदल जाती है " झिं, झिं झिझारका, आई देवी ताड़का"। भयानक राक्षसी-मुद्रा के मुखौटे को धारण करके, जटा और लटों से युक्त ताड़का का प्राकट्य होता है जो प्रारंभ में खड्ग के साथ नृत्य करती है और थोड़ी देर बाद आयुध त्याग कर उत्पीड़क मुद्राओं के साथ माया-नृत्य करती है। पं. बालमुकुद चतुर्वेदी कहा करते थे कि यह स्वांग वास्तव में ताड़कासुर का है, जिसे परवर्ती लोकमानस ने रामकालीन ताड़का राक्षसी में अंतर्भुक्त कर दिया। ताड़का के बाद नृसिंह-प्राकट्य के बाजे बजने लगते हैं। खुले मंच पर कागज का खंभा रखा होता है। हिरण्यकशिपु जब इस खंभ पर तलवार उठाता है तभी नरसिंह भगवान् का प्राकट्य होता है तथा दर्शक गण 'बलिहारम बलिहार' तथा 'जय जयकार' की ध्वनि करते हैं । विशाल और घूर्णित नेत्र, बड़ी-बड़ी मूछें, विस्फारित मुख, आरक्त जिह्वा , व्याघ्रचर्म जैसे वस्त्र, सिर पर श्वेत चंवर -जटा तथा नखों से विदीर्ण करने वाली विविध मुद्रा । यह नृसिंह नृत्य ऊँचे मंच पर वीर रस में प्रकट होता है और रौद्र रस में उभरते उभरते अन्त में वात्सल्य में समा जाता है। दस-पाँच किलो वजन वाले भव्य सिंहाकृति मुखौटे को धारण करके नृत्य करने वाले व्यक्ति को तीन-तीन व्यक्ति साधते हैं और दो आदमी पंखा झलते हैं। दस-दस, बीस-बीस गज के आसपास झांझ, भर्रा, घड़ियाल, वेला, मृदंग, शंख, झालर आदि वाद्यों द्वारा ताल देने वाले व्यक्ति नृसिंह का अनुसरण करते हैं "झें-पतिंग, झें-पतिंग, झैं-झैं-झैं, झेंऽ। इस ताल को मारू -बाजा कहते हैं।

संपर्क : 1828, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, सेक्टर 13-17 हुडा, पानीपत
(हरियाणा) 132103
मोबा. 9996007186

गौरवशाली सांस्कृतिक यात्रा के
30वें वर्ष का प्रवेशांक... 142 वाँ अंक...

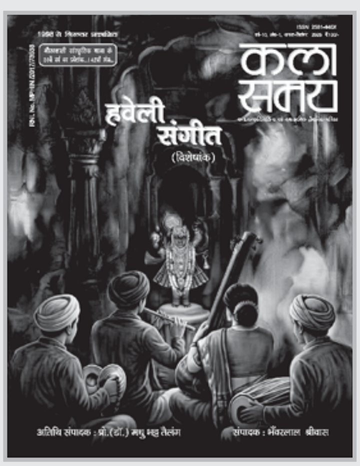

कला समय

आगामी अंक
अगस्त-सितम्बर 2026

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग
अतिथि संपादिका
मो. 9928277833

हवेली संगीत विशेषांक

अतिथि संपादिकाः प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग
(वरिष्ठ ध्रुवपद गायिका, पूर्व अधिष्ठता, ललित कला संकाय
पूर्व अध्यक्ष, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राज.)

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतुः 'हवेली संगीत' विषय पर आपके आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, संस्मरण सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 अगस्त 2026 है।

- संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.- 94256 78058

समय की धरोहर

नरसिंह लीला, नृसिंह नृत्य : युग युगीन संदर्भ

डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू"

गवरी राजस्थान के मेवाड़ ही नहीं, संसार के प्राचीन जनजातीय प्रदर्शनकारी कलाओं में पहचान रखती है। उसके खेल आज भी सामूहिक शिकार, वृक्ष और देव - दानव - मानव के संबंधों पर आधारित है। यही उसकी प्राचीनता का सबसे बड़ा प्रमाण है। अरावली की घाटियां भादौ में गवरी से गमक उठती है।

गवरी में नाहर के खेल गांव और बस्ती में अभय के संचार और आधि व्याधि के निवारण के लिए आयोजित होता है। यह लोक विश्वास बहुत बड़ा है कि नाहर के स्वांग के दर्शन से गांव की हर पीड़ा का शमन होगा और पाशविक प्रवृत्तियों का उन्मूलन। गवरी नृत्य चूंकि आखेट कालीन खेलों और प्राकृतिक गतिविधियों को समेटे होता है, ऐसे में नरसिंह - लीला का पूर्व रूप धारण किए ज्ञात होता है। यह नर भी है लेकिन सिंह के भेष में होता है।

असमान्य ख्याल : विश्वास का आधार :

गवरी का यह खेल सामान्य नाहर नहीं, बल्कि सींग वाले सिंह का होता है। शेर के सींग कहां होते हैं लेकिन सींगों का महत्व उसके आयुध के रूप में होता है जो कि स्वांग की एक अतिविशेषता भी है और इस प्राणी को आंखों देखी मान्यताओं से अलग करती हैं। यह गवरी की महापात्र देवी का वाहन है और उसके साथ एवं अलग से भी आता है।

रचनात्मक रूप से गवरी का नाहर सिर से पांव तक केसरिया - पीली आभादायक रंग को पोते होता है और बीच - बीच में काली पट्टिकाओ की रचनाकर सिंह के शरीर को झलकाया जाता है। दो हाथ और दो ही पांव कुछ ऐसे रंगे जाते हैं कि रंग छटा अन्य पात्रों के बनाव से अलग लगती है। इसी प्रकार पेट और पीठ को भी रंगा जाता है। सिर पर आड़ी उभी केसरिया वस्त्र पट्टिकाओं का प्रयोग होता है और उसी में सींग लगाए जाते हैं। लोक में ये सींग नहीं बल्कि सिंह के खण - खंभ कहे जाते हैं और इसका आशय है : विशेष लक्षण।

वाद्य वादन और नर्तन :

थाली मांदल के वादन के बीच किसी वस्त्र से ढंका नाहर जोर से हाक लगाता हुआ गवरी मंडल में प्रवेश करता है और फिर गोलाकार बैठे दर्शकों पर बारी बारी नजर डालता है। कभी कांपता है तो कभी दर्शकों को कंपित करता है। माताएं अपने नवजात बच्चों को शेर के मार्ग में डाल देती हैं। नाहर उनको रौंदता हुआ, हारी - बीमारी, झगड़ने की प्रवृत्ति, हठ आदि को हरता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

जब तक नाहर का खेल चलता है, वाद्यों का वादन बंद नहीं होता और नाहर कूद कूदकर अपनी मनोदशा और स्वाभाविक प्रकृति का परिचय देता है लेकिन दर्शक स्त्री पुरुष उससे अभय की याचना करते हैं। जयकारा लगाते हैं। कहना न होगा कि जनजातीय स्मृतियों में हमारे शास्त्रीय प्रमाण रचे बसे मिलते हैं।

हर युग में नरसिंह :

भक्त प्रह्लाद और भगवान् नरसिंह की लीला प्रसंग का गुणगान तथा मंचन की लंबी परम्परा रही है। यह भारत में सबसे ज्यादा प्रभावी अवतार प्रसंगों में मान्य रहा। भक्त, भक्ति और भगवान् की बुनियाद में यह प्रसंग पुराणों में लिखा गया, भक्त मालाओं का आधार बना। इस पर सबसे ज्यादा मूर्तियां और चित्र बने। देवता मूर्ति प्रकरण, मानसोल्लास, वास्तु मंजरी आदि ग्रंथों में इस अवतार के रूप अंकन का एक समान रूप से विवरण मिलता है। राम - कृष्ण लीला के साथ नृसिंह लीला बहुत ही लोकप्रिय थी। गांव वाले मिलकर भी यह लीला करते थे और लोगों का नरसी, नृसिंह, नरसिंह, नरसा नाम भी बहुत रखा जाता था। अशोक के स्तंभों पर भी सिंहमुखों की स्थापना मिलती है।

ताज्जुब का विषय है कि इस नरसिंह रूप की मान्यता एशिया और यूरोप तक मिलती है। इसके अपने कारण हैं और सबके अपने अपने विवेचन और तर्क भी। भारतीय मन तो इसे भगवान् की लीला ही मानकर ध्यान कर लेगा लेकिन ये कितनी बड़ी बात है कि भारत में दक्षिण में सबसे अधिक पाषाण और धातु मूर्तियां मिली है। हम्पी की प्रतिमा योग में मानक है। वहां

नरसिंह नाच : भीलवाड़ा जिले के मांडल गांव में नरसिंह नर्तन का एक दृश्य।

एकाधिक रूप में भी नरसिंह विराजित हैं और अनेक क्रियाओं के संपादन सहित दिखाया गया है।

नागदा के सास - बहू मंदिर में जो बड़ा और मूर्तियों से मंडित देवालय है, उसमें प्रदक्षिण पथ में असुरराज से बाहु युद्ध करते नरसिंह को दिखाया गया है और यह स्वरूप दक्षिण तक मिलता है। चित्तौड़गढ़ के अद्भुतजी मंदिर के उत्तर में एक ऐसा पश्चिमाभिख वैष्णव मंदिर है जिसके जंघाभाग के उत्तरी प्रकोष्ठ में असुर को अपनी जंघाओं पर पटककर उदर विदीर्ण करते नरसिंह की मूर्ति बहुत प्रभावी है। वहीं चारभुजानाथ के मोकलकालीन मंदिर में भी नरसिंहदेव की प्रतिमा है।

सल्तनत काल में बने नर्सिंग द्वारे :

यह आश्चर्य होगा कि सल्तनत, मुगल और कम्पनी काल में अधिक नृसिंह स्थान बनें, मान्यताओं का विस्तार हुआ! नारसिंही शक्ति कुल और वंश की आराध्या बनीं। क्यों? इसी दौरान नरसिंग कवच, नरसिंह मंत्र शाबर और संस्कृत दोनों रूपों में सामने आए! ये कितना बड़ा सच है कि इन्हीं कालों में असाध्य व्याधियां और महामारी भी आई और फैली। पारायण करने वालों ने नरसिंह शरण होकर कितनी बार " रक्षा कुरु कुरु... फट् फट् स्वाहा " का पाठ कर अपने को निर्भय बनाया! पाठ में संदर्भ खोजकर देखिए!

शासकों और उनके मार्गदर्शकों ने इस लीला की उपलब्धि पर बड़ा ध्यान दिया : प्रजा भक्तमना हो जाए, संसार को मोह माया का घर, बेकार समझे, दुश्मन आ जाए तो भगवान् पर भरोसा कर शासक को उसका उदर फाड़ने वाला जाने...। 1838 ई. तक तो अनेक नगरों और गांवों में अखाड़ा मन्दिरों को नृसिंहद्वारा के नाम से स्थापित किया गया। वहां पूजा राम दरबार की होती और करवाते नृसिंह लीला।

नरसिंह नर्तन : रुई और सींगों का कौतुक :

भीलवाड़ा जिले के मांडल जैसे गांव में लोग रुई के फोहे बदन पर चिपकाते व नरसी बनकर लीला को दिखाते। रास्ता मिलने पर कहावत कही जाती : खंभ फाड़ नरसी आयो...। रामजी की ओर ध्यान लगा तो यह सब कम से कम होता गया।

दो सदी पहले ऐसे नरसिंह लीला दलों की बहुत जानकारी मिलती है जो गांव गांव " खंभ फाड़ प्रह्लाद लीला" का मंचन करते थे। ये लीलादल पचास साल पहले तक सक्रिय थे। शिलालेखों से भी ज्ञात होता है कि बच्चे नरसिंह, गणेश आदि के मुखौटे धारण कर रंजन करते थे। ब्रज में यह परम्परा अभी भी बची हुई है। मेवाड़ में कोई बड़ा काम होता तो आज के दिन शुरू करने की मान्यता भी रही। "वीर विनोद" जैसा विशाल और महत्वपूर्ण ग्रंथ नृसिंह जयंती को ही छपने के लिए दिया गया।

संपर्क : 40 राजश्री कॉलोनी,
विनायक नगर, उदयपुर 313001(राजस्थान)
मोबाइल : 9672872766

कला समय: बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

– **प्रबंध संपादक**

कला समय के इस रचनात्मक अनुष्ठान में आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए जीवनदायी संजीवनी होगी।

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि 'कला समय' के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा पुस्तक सहित अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

–सम्पादक

आलेख

लोक नाट्य
नाट्य शास्त्र का पूर्व एवं उत्तर रंग

श्यामसुंदर दुबे

वे गुंचाई थे। इसी नाम से जाने जाते थे। बुंदेलखंड के एक छोटे से गाँव में रहते थे। खेती किसानी करते थे। लोक गीतों के गायन का चस्का लगा तो संगीत मंडलियों के साथ इलाके भर में घूमने लगे। संगीत भर से मन नहीं भरा। शरीर शब्दों में रूपांतरित होने उद्वेलित होने लगा। गायन के साथ शरीर से - शारीरिक क्रियाओं से उनका गायन रूपायित होने लगा। वे आंगिक चेष्टाओं से भावों की अभिव्यक्ति करने लगे। अब वे सोलो नाट्य के प्रथम पुरूष जैसे इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गए। लोग कहते गुंचाई की आँखें बोलती हैं। कान हंसते हैं। हाथ दृश्य रचते हैं। पाँव नाचते हैं और समूचा बुंदेलखंड जैसे गुंचाई के इस एकल अभिनय में उतर आता था। बुंदेलखंड की लोक कथायें उनके माध्यम से, मंच पर साकार होती। आल्हा की लड़ाईयाँ वे अकेले – अकेले इस तरह प्रस्तुत करते कि प्रत्यक्षत : तलवारें भाँजते लोग फीके पड़ जाते। गुंचाई का यह नाट्य प्रदर्शन सीमित क्षेत्र में ही अपनी जगह बना पाया। फिर भी लोक नाट्य की परंपरा में एक प्रयोग की तरह उनकी उपस्थिति दर्ज की गयी।

मैं छतीसगढ़ में अपने चढ़ते यौवन काल में अनेक वर्षो तक रहा। वहाँ तीजन बाई उस समय उभर रही थी। वे एक विशेष गायन शैली जिसे पंडवानी कहा जाता है की गायिका के रूप में अपनी क्षेत्रीय पहचान बना रही थीं। वे महाभारत की कथा की संगीतक नाट्य प्रस्तुति करती थीं। तंबूरा की लय और धुन के साथ वे अपने सहायक संगीतकारों के गायन में ताल मेल बैठाती बहुपात्रीय एकल प्रस्तुति की विश्रुत अभिनयकर्मी के रूप में देश – विदेश में पंडवानी की ध्वजवाहिकी रहीं और उनकी प्रेरणा से छत्तीसगढ़ में पंडवानी गायकों की परंपरा आज भी अविच्छिन्न रूप से चल रही है। यह मात्र गायन शैली ही नहीं है। यह नाट्याभिनय की रंगतों का मिलाजुला एकल प्रदर्शन भी है।

बस्तर एक धुर आदिवासी क्षेत्र है। यहाँ रहने वाली आदिम जनजातियों में प्रचलित एक प्रदर्शन जब मैंने देखा तो मुझे अनुभव हुआ कि ये जो मेरे सामने गीत नृत्य और नाटक का आयोजन चल रहा है यह मनुष्य की आदिम अवस्था की अवशिष्ट कला रचना है जो हजारों वर्ष बाद भी इस क्षेत्र की एकांतिकता में आज भी जीवित है। इसे माओ पाटो नाम दिया गया है। किसी पशु के शिकार के बाद शिकारी उस मृत पशु के चारों ओर चक्कर लगाते हुए नाचते और गाते हैं। वे अपनी शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से शिकार करने के उद्यम को अपनी विभिन्न चेष्टाओं से स्पष्ट करते हैं। यह जैसे विजयपरक उनका उल्लासी नाटक ही होता है इस नाट्य की यह विशेषता है कि यह सामूहिक रूप में संपन्न होता है। इसमें मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। पत्तों फूलों से शरीर को सजाया जाता है। हथियार हाथ में होते हैं। एक तरह से नाटक के सज्जापरक विन्यास का यह प्रारंभिक प्रतिदर्श जैसा है आदिम लोक नाट्य की पहचान देता हुआ।

इन प्रसंगो को यहाँ इसलिए स्मरण किया गया कि लोक नाट्य के आधार भूत सिद्धांत इनमें अंतर्भूत हैं। लोक, सीधे– सीधे वह सबकुछ है जिसे हम देख-सुन रहे और अनुभव कर रहे हैं। हमारे आस पास जो घटित हो रहा है- वह लोक का ही प्रसरण-शील स्वभाव है। लोक स्थिर नहीं है। इस विवर्तमान संसार में जो पीछे छूट रहा है वह भी हमारे साथ हमारी स्मृतियों में जाने-अनजाने में जज़्व हो गया है। यह स्मृति आख्यान हमारे प्राक् मस्तिष्क के हिस्से में पीढ़ी-दर-पीढ़ी से विद्यमान है और हमारे वर्तमान के विनियोजन में सैव सक्रिय भी रहता है। यही वजह है कि लोक का समय उसके विभिन्न आयोजनों मे केवल वर्तमान कालिक नहीं है-वह सतत है। मनुष्य ने सृष्टि के आरंभ में जब आँखे खोली तो उसे प्रकृति का एक भरापूरा संसार दिया पशु-पक्षी पेड़-पौधे छाया – प्रकाश, हवा-पानी आदि इन सबकी हलचल से वह अभिभूत हुआ। उसकी दैहिक और मानसिक संरचना अन्य सभी से कुछ-कुछ भिन्न थी और वह अपने सोच विचार में भी अन्यतम था। उसने अपने आसपास का अनुकरण भी किया और जीवन – यापन के विकसित सोपानों की रचना करता हुआ विकसित सभ्यता के इस प्लेटफार्म तक आया।

मनुष्य के मेघा विकास के साथ उसका भाव-संसार भी विकसित हुआ। इन दोनों आयामों ने उसे अनुकरणक्षम बनाया। वह प्रयोगधर्मी बना और अपने बहुआयामी संसार की वह नकल करने लगा। नाटक इसी नकल के आनंद का परिणाम है। यह मनुष्य की सिसृक्षा है कि वह अपने शाश्वत समय में फैले संसार की गतिविधियों को एक ऐसे सीमित देश में साक्षात करना चाहता है-जो अत्यंत व्यापक और हमारे आसपास होते हुए भी हमसे छूटता जा रहा है। वह इसकी प्रतिकृति रचने के संभ्रय में यथार्थ के अनुभव को पाने की बार-बार इस तरह कला – रूपों में सक्रिय होता है। नाटक के मूल में नृत, धातु है। इससे नृत्य बना और फिर नृत्य से नाटक हुआ। यह एक तरह से देह भाषा का आरोही क्रम है। मनुष्य की एक आदिम अवस्था ऐसी थी कि उसके पास ध्वानि-यंत्र की आंगिक अनुकंपा से ध्वनि थी, किंतु वह भाषा नहीं बन पायी थी। फिर भी यह ध्वनि अपने कुछ भावपूर्ण शेड्स निर्मित कर चुकी होगी। शारीरिक श्रम, शारीरिक लोच-लचक और गति की व्युत्क्रमित लय के प्रभावों से मुख-निस्रत ध्वनियों में भावावतरण की गुंजायश निर्मित हुई होगी हर्ष – विषाद की अनुभूतियों से भी शरीर और वाणी की स्थितियों में आँगिक चेष्टाओं और वाक्

चेष्टाओं के कुछ बिम्ब बनना प्रारंभ हुए होंगे। ये बिम्ब आसपास की मनुष्येतर जैव – अजैव हलचलों के अनुकरण जैसे रहे होंगे। जैसे उड़ते पक्षी के डैने जैसे हाथों का प्रसार। हाथी मृग जैसी पग गति। फूल के विस्तार सी हँसी की प्रसन्न मुद्रा। प्रभंजन जैसा क्रोधावेश!

आदिम मनुष्य भावावेश में शारीरिक प्रतिक्रियाओं के स्तर पर दृश्यमानता प्रकट करता रहा होगा। यह देहभाषा चक्षुग्राहय थी। उल्लास में उसके पाँव थिरके होंगे। उन्मुक्तता में फिरकी लगाकर हाथ हवा में लहराएं होगें। उतावलेपन में पाँवों में गति की लय लायी होगी। मनुष्य ने इसी तरह नाचना शुरू किया होगा। इन क्रियाओं के साथ वह अर्थ रहित ध्वनियाँ गुनगुनाया होगा इन्हीं ध्वनि गुच्छों में कुछ बिम्ब उभरे। यह संगीत का उत्सवन था। ये सभी क्रियायें मिलकर जब एक दृश्य-कथा के रूप में परिणत होकर घटित होने लगे – तब माओं पाटों जैसा एक नाट्य कोलॉज निर्मित हुआ होगा। यहाँ तक आते – आते हजारों वर्ष का समय जैसे नाट्यानुसंधान की प्रक्रिया में बीते होंगे। अनुकरण में भावानु प्रवेश के क्षण अपर सृष्टि की तरह उपस्थित हुए होंगे। इस तरह संभ्रम के साधते – साधते नाटक जीवन का प्रतिरूप बना होगा। नाटक के संदर्भ में इन्हें गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद भरत मुनि ने एक निषकर्ष दिया – नाट्यं भिन्न रूप लोकोपजीवनम् नाटय लोक जीवन की प्रतिकृति है। भरत ने यहाँ जीवन की प्रतिकृति न कहकर लोक जीवन की प्रतिकृति कहा। जीवन की उस समग्रता का यह बोधहै, जो वैश्विक आसपास को अभिव्यक्त करता और मनुष्य जीवन उसके केन्द्र में होता है।

सभ्यता - विकास के क्रम में नैसर्गिक जीवन से पृथक्कृत होने की प्रक्रिया में जो एक वर्ग निर्मित हुआ उसका जीवन स्तर मेघा निर्मित कृत्रिम संसाधनों और अर्थ केन्द्रित उपार्जनपरक स्थितियों से उच्च सुविधाओं से संपन्न हुआ और वह नागरिक बना इस वर्ग से कमतर और परंपरागत संसाधनों पर निर्भर और प्रकृति-आश्रयी जीवन-यापन करने वाला लोक के अंतर्गत अपनी पहचान वाला बना। यह वर्ग विस्तृत था। फिर नागरिक वर्ग भी अपनी उन्नत स्थितियों में भी अपने संस्कारों की जड़ों में लोक की ऊष्मा से अनुप्राणित था-अत : लोक आदिम मानस के अवशिष्ट अंश से परिचालित गतिविधियों में जीवन के प्रत्येक स्तर पर झलकने लगता है। इस सामाजिक परिदृश्य में लोक नाट्य की भूमिका व्यापक है वहलोक-जन और नागरिक जन को समान रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखता है। डॉ. श्याम परमार का कथन कि लोक नाट्य लोक रंजन का आडंवरहीन साधन है जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हर्षोल्लास से संबंधित है। ग्रामीण जनता में इसकी परंपरा युगों से चली आ रही है। चूँकि लोक में ग्रामीण एवं नागरिक सम्मिलित हैं अत : लोक नाट्य एक मिलेजुले जन-समाज का मंच है। परिष्कृत रूचि के लोक के लिए जिन नाटकों का विधान है-उसकी आधार भूमि लोक-नाट्य है। स्पष्ट है कि लोक नाट्य ही नाटक के उद्भव का स्रोत है। लोक नाट्य, आदिम मनुष्य की सहज स्फुरित चेष्टाओं और गति-विधियों का अनुरंजन-परक विधान जैसा है। सर्व प्रथम यह व्यक्ति-केन्द्रित क्रीड़ा-विन्यास था फिर समूह में इसकी आयोजना संभव हुई। आज भी नाटक को खेलना कहा जाता है। अँग्रेजी में इसका एक नाम प्ले है। लोक नाट्य की सहज प्रस्तुति का विकास ही नाटक की परंपरा के पद-चिंह हैं। भरत मुनि ने इसी परंपरा के सूत्रों को शास्त्रीय स्तर पर गुंफित किया और नाटक का एक मुकम्मल प्रस्थान ग्रंथ निर्मित किया।

सरगुजा की रामगढ़ पहाड़ी पर स्थित नाट्य मंच विश्व का प्राचीनतम रंग-मंच है। यह एक पहाड़ी को क्षितिजाकार गुफानुमा काट कर बनाया गया है। इस गुफा के अंतरग में नेपथ्य निर्मित किया गया है। यह नेपथ्य गुफा के भीतर दोनों ओर भुजाएं निकाल कर बनाया गया है। रंगमंच के मुख के दोनों ओर दो छेद स्तंभ आरोपित करने निर्मित हैं। ये यवनिका के संधारण हेतु स्थापित हैं। इस पहाड़ी के सामने ही एक और पहाड़ी है। इन दोनों पहाड़ियों के बीज एक खाई जैसी है। सामने वाली पहाड़ी पर नीचे से ऊपर तक सीढ़िया हैं। ये दर्शक दीर्घा है। एकदम नैसर्गिक रंगमंच की यह कल्पना पाँच हजार वर्ष पूर्व की है। सधन जंगल के बीज कभी आदिम मनुष्य का यहा रहवास रहा होगा, फिर सभ्यता-विकास के किसी चरण में उसने रंगमंच की यह प्रविधि तलाशी होगी। रंगमंच की प्राचीनता का प्रमाण रंगमंच की पार्श्व चट्टान पर उत्कीर्णित शिलालेख प्रस्तुत करता है। यह ब्राह्मी लिपि में है। एकदम संक्षिप्त और सारगर्भित है किसी वियोगिनी का उद्गार इसमें उजागर हुआ है। लिखा है -'उस रूप दक्ष की याद में संतापित हूँ। पता नहीं वह कहाँ गया।' रूप दक्ष को लुपद करने शब्द से संकेतित किया गया है। नाटक में मेकअप मेन रहा होगा कोई। इस रूपदक्ष से नायिका का अभिनय करने वाली किसी स्त्री का प्रेम हो गया होगा और वह रूपदक्ष उसे छोड़कर चला गया। इसी प्रसंग की याद में यह शिलालेख है। इसी के आसपास एक और शिलालेख है जिसमें अंकित है कि यहाँ कवि गोष्ठी में कविगण अपने वक्ष पर धारण की गयी मालाओ को अपनी प्रेमिकाओं की तरह मसल रहे हैं। इन लिखित प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रंगमच ही था जिस पर नाटक और कवि गोष्ठियों का आयोजन होता रहता था।

यह थियेटर लोक रंगमंच की अवधारणा को प्रकट करता है। इसके आकल्पन के पूर्व भी अनेक स्थापत्यों की स्थापना हुई होगी किंतु वे इतिहास के अंधेरे में लुप्त हो गए। भरत मुनि इस तरह के गुफा मंच से परिचित थे। अपने नाट्य शास्त्र के अध्याय दो नाट्य मंडप वर्णन में वे लिखते हैं कि नाट्य मंडप पहाड़ी गुफा की तरह हो और इसमें दो मंजिल दो अलग-अलग स्तरों पर और छोटी खिड़कियाँ हो। हवा से मुक्त और ध्वनि की गुणक्ता अच्छी हो। दीवार पर सफेदी करके लताऐं पुरुष महिलाओं के चित्र हों। भरत मुनि का यह मंच आकल्पन, लोक रंगमंच के स्थापत्य का सुगठित सुशोभित स्वरूप प्रस्तुत करता है।

यहाँ मेरा उद्देश्य उन तथ्यों की ओर संकेत करना है जिनके आधार बनाकर भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र के लिए सूत्रों का चयन किया होगा। नाट्य संबंधी कथाओं और मिथकों का पुनर्कल्पीकरण किया होगा। यह प्रक्रिया लोक नाट्य की विभिन्न धारणाओं को संहिताबद्ध करने को प्रत्यक्ष करने का उपक्रम है। भरत मुनि के समक्ष लोक नाट्य के अलावा उस समय प्रचलित वे लोक नाट्य शैलियाँ थीं जो परंपरित रूप से विकसित होकर नाटक के संपूर्ण व्यक्तित्व को एक नागर रूप दे रही थी किंतु ये अपने – अपने क्षेत्र में विकसित प्रणालियों में से प्राणोद लेकर भी बिखरी – बिखरी थीं। इसका एक कारण यह था कि उस समय अंतर्क्षेत्रीयता का समन्नवय संभव नहीं था। संचार

साधनों का अभाव था। आदान-प्रदान की गुंजायश कम थी। अपने-अपने क्षेत्र की स्थानिक तासीर थी प्रकृतिगत और स्वाभावगत भिन्नता थी यही वजह थी कि लोक नाट्य प्रविधियों में कुछ – कुछ भिन्नताऐं थी। इसके बावजूद नाटक मंडलियों की संचरण शीलता क्वचित अवसर एक दूसरे की प्रविधियों की विशेषताओं को जानने समझने का अवसर सुलभ करा रही थीं। इसी आधार पर लोक नाट्य शैलियों का एक समाहारी संसार अभिव्यक्त होने ही छटपटाहट पाल रहा था भरत मुनि ने इस छटपटाहट को भांप लिया था। उनके समक्ष लोक नाट्य का अंतर्क्षेत्रीय परिदृश्य था। वे इसे समाहारी बना रहे थे।

भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र के अध्याय चौदह में इन क्षेत्रीय नाट्य शैलियों की चर्चा की है। उनके अनुसार दाक्षिणात्य आवंति ओड्रू – मागधी और पांचाली प्रदेशों में प्रचलित शैलियों का जो वर्गीकृत स्वरूप है, वह इन्हीं क्षेत्र विषेशों में पनपने वाली और विकसित होने वाली शैलियाँ है। दाक्षिणात्य की कैशकी, आवंती क्षेत्र की सत्वती और मनोहर कैशिकी ओड्रू – मागधी की मौखिक (भारती) तथा पांचाली की पंचाली (पंचल मध्यमा) शैलियाँ है। भरत मुनि ने इनकी भूमौतिकी का भी निर्देश किया है। इन क्षेत्रों का संगीत नृत्य गीत और वाद्यों की चर्चा करते हुए इन क्षेत्रों की नाट्य में सहयोगी कलाओं की ओर उनका ध्यान था। कलायें अपने संस्कारों में क्षेत्र विशेष की स्थिति और परिस्थिति के अनुरूप ही अपने सौन्दर्य को विकसित करती है। यही वजह है कि प्रत्येक अंचल की बोली बानी उसकी कला उत्तेजनाएं और कला संरचनाऐं अपनी देशज संस्कृति से प्रभावित रहती हैं। ये देशज संस्कृति ही लोक कलाओं का स्वरूप निर्धारित करती है। इस तरह विचार करने पर भरत पूर्व के लोक नाट्य के कतिपय स्वरूपों को पहिचान प्राप्त होती है। स्पष्ट ही है कि नाट्य शास्त्र की रचना के लिए ये लोक नाट्य उपजीव्य जैसे रहे है। डॉ. महेन्द्र भानावत लिखते हैं भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से यह तो सुविदित ही है कि हमारे देश की नाट्य परंपरा का इतिहास इससे भी बहुत पहले का है। विविध उत्सवों अनुष्ठानों मेलो ढेलो, वार त्यौहारों तथा धार्मिक संस्कारों पर लोक जीवन अपने बहुरंगे उल्लास में उमड़ पड़ता और नाटक की अदायगियों एवं संगीत की स्वर लहरियों में भाव विहल हो स्वयं को अपने समग्र जीवन की सुखांत शाश्वतता को साकार हुआ देखता है। धीरे-धीरे ज्यौ-ज्यौ सभ्यता का विकास हुआ और मनोविनोद के ये साधन स्थायित्व ग्रहण करने लगे तो विविध भाव भंगिमाओं ने इन्हें एक नयी भूमिका दी।

नाटय में शब्द का महत्व मार्मिक है। यदि शब्द के साथ उपयुक्त चेष्टाओं का संयोजन हो जाए तो शब्द की बिम्बात्मक शक्तियों का प्रभाव बढ़ जाता है। शब्द एक भाषिक इकाई है। भाषा की ध्वनियों और उसकी विभिन्न संरचनाओं पर स्थानीय तत्वों का प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। क्षेत्र भिन्नता ने बोली भिन्नता की नीव डाली बोली बारह कोस पर बदलने लगी। इस रूप में बोली में क्षेत्रीय संस्कृति का व्यक्तित्व प्रतिध्वनित होता है। भाषा के विकास के मूल में क्षेत्रीय भिन्नता के कारण बोली ही सक्रिय हुई होगी। अत: कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा के पूर्व जो बोलियाँ रही होगी वे अब अज्ञात हैं। इन्हीं के मिले जुले आचरण को संस्कारित कर संस्कृत अस्तित्व में आई। संस्कृत के साथ प्राकृत भाषायें भी प्रचलन में थी इनका नामकरण भी क्षेत्र के आधार पर हुआ है। पांचाली, गौड़ी शौरसेनी, मागधी आदि प्राकृतें भाषा विकास के संदर्भ में जानी जाती है। इन्हीं प्राकृतों से हमारी समसामयिक बोलियों का उद्भवन हुआ है। इन बोलियों का उद्भवन काल दसवीं से लेकर बारहवीं शताब्दी के बीच का माना जाता है। प्राकृत के साथ अपभ्रंशों की भी चर्चा होती है। संस्कृत आ जाने के बाद भी प्राकृतों का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ था। वे व्यापक लोक की अभिव्यक्ति के माध्यम की तरह कायम रहीं। संस्कृत नाटकों में संवादों के लिए लोक जीवन के चरित्रों की भाषा प्राकृतें ही रही है। इसका अर्थ यही है कि प्राकृतों में भी लोक नाट्यों को खेला जाता रहा होगा। इस आधार पर यदि नाटक में भाषागत संवेदना की पहचान भरत मुनि ने अपने शैली विवरण में व्यक्त की हो तो यह कयास लगाया ही जा सकता है कि भरत मुनि द्वारा प्रयुक्त शैलियों क्षेत्रीय अभिधान में भाषिक चेतना भी सक्रिय रही होगी। नाटक भाषा में ही खुलता है चाहे वह देह की भाषा हो या ध्वन्यात्मक भाषा हो या फिर परिवेश की अनुगूँज की भाषा हो।

लोक नाट्य के प्राक् प्रारूप के रूप में जिस नाटक की चर्चा मैंने माओ पाटो के नाम से की थी उसमें नाटक शिकार के इर्दगिर्द चलता है। शिकार में मृत-पशु ही जैसे नाटक का उत्प्रेरक है। बाद में चलकर यह एक अनुष्ठानिक अभिचार सा बन गया। अग्नि के चारों ओर घूमते हुए उसके प्रकाश में नाट्य आयोजन करना किसी पवित्र स्तंभ के परिगत घूमते हुए भी नाट्क की प्रस्तुति होती रही है। आज भी कुछ इलाकों में लोक नाट्यों के आयोजन के पूर्व इस प्रकार के कर्मकांड का समावेशन है। मालवा के लोक नाट्य माच में इस तरह का आयोजन माच प्रदर्शन के पंद्रह दिन पहले संपन्न किया जाता है। माच मंडली का मुखिया प्रदर्शन स्थल पर एक खंभ गाड़ता है और इसकी पूजा करता है। इस अवसर पर ढ़ोल बजाया जाता है। लाला वस्त्र, हरा धनिया, गुड़ और आम्रपल्लव आदि सामग्री पूजन में प्रयुक्त सामग्री है। किसी क्षेत्र में नाटक के पूर्व कुछ टोने-टोटके किए जाते है। कहीं मंच बनाते समय उसके नीचे हरी दूब, हल्दी चाँवल छिपाकर रखे जाते हैं। आयोजन निर्विन्ध संपन्न हो इसी कामना से ये अभिचार किया जाता है।

इस विन्धविनाशक पवित्र उपोद्धात को भरत मुनि से एक दिव्य कथानक के रूप में अवतरित किया है। ब्रह्मा ने भरत मुनि की रूचि जानकर उन्हें इंद्रोध्वजोत्सव जैसी नाट्य प्रस्तुति के लिए कहा जो नाट्य शास्त्र के नियमों के अनुसरण में संपन्न हो। समुद्रमंथन की प्रस्तुति की योजना बनायी जाती है। इस प्रदर्शन से देवता प्रसन्न होते हैं। भरत मुनि को वे उपहार देते हैं। दानव, नाटक के यथार्थ को भूल गए कि यह एतिहासिक घटित का नाट्य रूप है। वे क्रोधित हो उठते है। इंद्र ने उन पर अपना ध्वज दंड चला दिया। राक्षसों को ध्वजदंड ने मर्दित कर दिया। इसी दंड को जर्जरी कहा जाता है। इस जर्जरी की नाट्य प्रारंभ होने के पूर्व पूजा की जाती है रंग-बिरंगे कपड़े, जिनका रूद्र, विष्णु तथा स्कंद से संबंध है जर्जरी में यथा निर्दिष्ठ भाग में नाँधा जाता है। फिर माला, धूपदीय से पूजन किया जाता है।

लोक नाट्य की प्रस्तुतियों का कोई शास्त्रीय विधान नहीं रहा। यह एक स्वभाविक सहज परिवर्तनीय प्रयोगशील नाटयकर्म रहा है। खुला रंगमंच, स्थानीय, संसाधनों से बनाए गए साज-सज्जा के उपकरण और लचीली

स्क्रिप्ट, जिसका लिखित रूप भी व्यवस्थित न हो, रंगमंच पर आवागमन की छूट और कभी-कभी दर्शकों का भी नाटक में सम्मिलित हो जाना ये इस तथ्य की ओर संकेत करने वाले कारक हैं कि नाटक से दर्शक अलग इस रूप में नहीं हैं कि केवल दर्शक हैं वे नाटक में भागीदार जैसे भी अपने को अनुभव करने लगते हैं। यह साधारणीकरण केवल भाव के स्तर पर नहीं होता है, बल्कि प्रत्यक्षानुभूति की तरह ठीक उसी रूप में होता है जैसा पात्र का अपने चरित्र के प्रतिरूपण में अपने स्व के विसर्जन और चरित्र के आवेशीकरण में प्रकट होता है। लोक नाट्य अपनी प्रस्तुति में शिथिल एवं अव्यवस्थित होते हैं, किंतु इस अव्यवस्था, का भी अपना सौन्दर्य है। कभी कोई पात्र अपनी संवाद अदायगी में भ्रमित हो जाए तो सूत्रकार मंच पर स्थित संगीतकार या कोई दर्शक उसे सुधार देता है। प्राय: संवाद काव्यमय और संगीत प्रधान होते है-इसलिए भी संवादों की धुरी खिसकती रहती है। पात्रों की व्युत्पभयति यहाँ प्रकट हो जाती है अपने अनुकूल और परिस्थिति अनुसार वह अपनी संवाद संभावना तलाश लेता है। नाट्य शास्त्र में आहार्य, सात्विक, आंगिक तथा वाचिक ये चार प्रकार के अभिनय है, किंतु लोक नाट्य में आंगिक एवं वाचिक अभिनय ही प्रस्तुत होते हैं। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि लोक में अभिनय की ट्रेनिंग का प्रावधान नहीं है। पात्र नैसर्गिक प्रतिभा के बल पर ही मंच पर उतरते है और अपने सहज स्वभावी रूप में चरित्र की नकल करते है। इसका सुखद परिणाम यह होता है कि अभिनय की कृत्रिमता का अवबोधन दर्शक समूह नहीं कर पाता, क्योंकि जो पात्र उनके समक्ष प्रस्तुत हो रहा है वह उनकी बोली-बानी उनकी चाल –ढाल और उनके जीवन व्यवहार में रचा बसा है। संगीत भी लोक धुनों पर आधारित रहता है। इन सब कारणों के चलते नाटक से तादात्म्य करने में दर्शक का देशज बोध परितृप्त होता है और वह स्मृति के पुनर्सृजन के कलात्मक आनंद में डूब जाता है। यही लोक नाट्य की रसानुभूति का प्रमुख आधार है।

लोक नाट्य यथार्थ के अर्थ में अपनी संरचना की तलाश में रत विधा है। लोक-जीवन के संघर्ष, गैर बराबरी की सामाजिक परिस्थितियाँ और जीवन की अपनी कुछ पावंदियों के बीच मुखर और बेलौस अभिव्यक्ति यथार्थ की प्रस्तावना के प्रसंग हैं। स्वांग जैसी नाट्य रचनाओं में इन प्रवृत्तियों को अनुभव किया जा सकता है। बिदेसिया और नौटंकी में ये विषयगत प्रवृत्तियाँ झलकती हैं। लोक में हास्य व्यंग्य के लिए प्रचुर अवसर रहते हैं। कुछ संबंध ऐसे हैं, जो अपनी बुनावट में हास्य की अवधारणा के पोषक हैं। इस तरह में कथानक जो ऐसे संबंधों को सजीव करते हैं उनमें हास्य की प्रमुख भूमिका रहती है। यौन प्रसंगों का खुला चित्रण भी कभी-कभी इस तरह के वातावरण की निर्मिति में सहयोग करता है। यहाँ यह ध्यान में रखना जरूरी है कि लोक में अश्लीलता की सीमायें कठोर वर्जना प्रधान नहीं हैं, बल्कि इसका प्रस्तुतिकरण अशोमन को भी शोमन बनाता है। समाज के मनोरंजनपरक उद्देश्य से प्रेरित ये नाटक यद्यपि पुरुष प्रधान है, किंतु स्वाँग जैसे नाटकों में स्त्री पात्र भी उपस्थित होते हैं। विदूषक की भूमिका का महत्व इनमें स्थापित रहा।

जीवन में मूल्य स्थापना हेतु भी नाटक ने लोक की पृष्ठभूमि पर पौराणिक एवं मिथकीय चरित्रों तथा ऐतिहासिक आईकॉन को उपस्थित कर लोकनाट्य की परंपरागत प्रणाली का इस्तेमाल कर लोक नाट्य को एक विशेष सामाजिक जागरण का उत्तरदायित्व अपने विकास के अगले चरण के रूप में सौंपा। रामलीला – रासलीला और नौटंकी जैसी लोकनाट्य विधाओं ने लोकनाट्य को एकदम शास्त्रीय नहीं तो अर्द्ध शास्त्रीयता में संहिताबद्ध किया। विधिवत स्क्रिप्ट राइटिंग का प्रयोग होने लगा। यद्यपि इन स्क्रिप्टस में स्थान भेद दो संवाद और कथा में कुछ भेद मिलता है, जो लोक संस्कृति की स्थानांतरचारिणी गतिविधियों से प्रभावित हैं। इनकी स्क्रिप्ट छपित रूप में प्रकाशित होने लगी। चलित मंडलियों का कायाकल्प हुआ। अभिनय आदि की ट्रेनिंग की संभावना बढ़ी। साजसज्जा और पात्रों के सजाने सँवारने के नए-नए संसाधन बाजार में आये। इस रूप में लोक नाट्य का व्यावसायीकरण भी प्रारंभ हुआ।

लोकनाट्य की लोक प्रियता और उसकी जन-प्रभावी प्रस्तुतियों ने आधुनिक रंगमंच को भी प्रभावित किया। गुणी और प्रयोगधर्मी नाट्यकर्मियों ने लोक कथाओं को आधुनिक रंगमंच पर अपनी कला दृष्टि की रचनात्मकता में प्रस्तुत कर उन्हें अपनी समकालीनता का मुखर माध्यम बनाया। हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ की लोक कथाओं के माध्यम से आधुनिक नाटक को लोक दृष्टि की अनेक कोणीय उद्देश्य गर्भिता के साथ लोक संस्कृति का आस्वाद्यमान संसार रचा। ब.व. कारंत ने लोकधुनों का प्रयोग अपने नाटकों में किया और इस तथ्य को प्रतिवादित किया कि लोकधुनें अपनी मार्मिकता को किस तरह दर्शक के अंतर्मन को छूती हैं। अलखनंदन जैसे नाट्यकर्मियों ने न केवल बुंदेली कथाओं का चयन अपने नाटकों के लिए किया, बल्कि बुंदेली बोली में संवाद और बुंदेली गीत संगीत को प्रस्तुत कर लोक की टोन को व्यापक अर्थ प्रदान किया। नागबोड्स ने अपनी नाट्य रचनाओं के लिए लोक कथाओं को केन्द्र में रखा और लोक के विश्वासों और लोक परंपराओं को अपनी नाट्यकृतियों में रचनात्मक दृष्टि से मूल्यवान बनाया। हिन्दी नाटक के प्रारंभिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लोक नाट्य की तेजस्वी ताकत को पहचान लिया था। उन्होंने अपने नाटकों में लोक धुनों का इस्तेमाल तो किया ही लोक अभिप्रायों में छिपे व्यंग्य को विदेशी सत्ता के विरोध में लोक शैली में प्रस्तुत किया।

जैसे अन्य कला माध्यमों के स्तर पर लोक अपना कोई सौन्दर्य शास्त्र नहीं रच पाया वैसे लोक नाट्य का भी कोई ऐसा शास्त्र नहीं है। लोक कलाओं का अपना सौन्दर्य ने तो एक रूपता का है, न ही उनके साँचे निर्मित हो सकते हैं, न ही उनके विमर्श के लिये कुछ निर्धारित मानदंडो को नियत किया जा सकता है। लोक कलाओं का सौन्दर्य उनके प्रवाह में है एक ऐसे प्रवाह में जिसका जल हर घाट पर नया हो जाता है जिसे किनारे भी कोई आकृति नहीं दे पाते – क्योंकि किनारे टूटते रहते हैं। फिर लोक नाट्य के अध्येताओं ने लोक नाट्य के महत्वपूर्ण पहचान चिन्हों को स्थिर करने का प्रयास किया है। यह प्रयास एक तरह से ऐकेडेमिक प्रयास कहा जायेगा। कोई रास्ता ऐसे ही प्रयासों से आगे निकलेगा, क्योंकि प्रत्येक कला अंततोगत्वा अपनी सतत् विकसनशील उर्जा के आस्फालन से समीक्षक मन को उकसाती रहती है।

संपर्क : श्री चंडी जी वार्ड, हटा, दमोह म.प्र.– 470775
मोबा. 9977421629

■■■

लोक का नाटक अपने आसपास दृष्टि डालता है

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्मश्री सम्मान से विभूषित)

काल, क्षेत्र, प्रकृति, प्रकृति के गुण और देव रचना त्रित्व में है। अपनी इच्छा, वासना और कर्म में स्वयं मनुष्य के लिए भी 'त्रित्व' एक संभावना है- मनुष्य अपनी अधमता में पशुओं जैसा और पवित्रता में देवताओं जैसा हो सकता है, बीच में मनुष्य की संभावना है जो अपनी प्राकृतिकता और दिव्यता की संभावना में जीता है, उस मृत्यु लोक जैसा, जो न पाताल लोक है न स्वर्ग लोक।

आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी ने पिछले अनेक वर्षों में लोक जीवन में प्रचलित मौखिक साहित्य परम्परा के प्रायः सभी रूपों और विधाओं के संकलन-संपादन तथा प्रकाशन का कार्य किया है गीत, कथा, गाथा, आख्यान, भक्ति रचनाएँ आदि इसमें शामिल हैं।

वाचिक एक विस्तृत क्षेत्र है, इसमें केवल शब्द परम्पराएँ ही नहीं होतीं, साहित्य-काव्य के अलावा लोक की पारम्परिक प्रदर्शनकारी और रूपंकर कलाओं के साथ भी वाचिक साहित्य की एक पूरी लोक परम्परा जुड़ी होती है, इसीलिए लोकनृत्यों और नाट्यों के साथ भी साहित्य रचना की एक समृद्ध वाचिक परम्परा का विकास होता है। स्वांग, दिवारी, करमा, गणगौर, सावनी फागें और बधाई के मंगलगीत मूलतः लोक की नृत्य परम्परा के साथ संबंधित वाचिक काव्य हैं, यहाँ तक कि काठी नृत्य के साथ गायी जाने वाली निमाड़ी गाथाएँ नृत्य परम्परा का साहित्य हैं। ठीक इसी तरह पारम्परिक लोकनाट्यों के साथ नाट्य साहित्य की एक वाचिक परम्परा संबंधित रहती है, इसमें नाट्य पाठ और गीत रचना अपने आपमें एक समृद्ध लोक साहित्य परम्परा है। गाथा गायन और नाट्य परम्पराओं के साथ लोक के संगीत की भी एक परम्परा जुड़ी रहती है- लोक के रंग संगीत के संकलन का तो कोई विशेष यत्न हिन्दी क्षेत्र में हुआ ही नहीं है। परम्परागत शैलियों में लोकनाट्यों के पाठ भी संकलित कर व्यवस्थित रूप से प्रकाशित नहीं किये गये हैं।

हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रचलित जनपदीय सांस्कृतिक परम्पराओं में विशेष रूप से राजस्थानी ख्याल जो शेखावाटी और कुचामणी शैलियों में विकसित हुआ तथा सांगीत या नौटंकी जो हाथरसी और कानपुरी शैलियों में आज भी एक जीवन्त लोक परम्परा है, इसके अलावा भगत, माच, नाचा, स्वाँग, गम्मत, साँग, विदेशिया, विदापत, जट जटिन, किनतनिजा तथा नटुआ आदि लोकनाट्य भी उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश और हरियाणा तथा छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रभावी लोकनाट्य परम्पराएँ रहीं हैं। इनमें से कुछ शैलियाँ समग्र रंग प्रस्तुति शैली की तरह और कुछ गान शैलियों के रूप में विकसित हुई।

लीला परम्पराओं का विकास, रामकथा और श्रीमद्भागवत के साथ जुड़ा है। कृष्ण कथाओं की लीला प्रस्तुति और रामलीला मंचन, लीला मंच की प्राचीन शैलियाँ हैं- वैष्णव परम्परा में लीलानुकरण और लीला दर्शन तथा आस्वाद साधक के लिए भक्ति का एक ढंग ही था। दशहरे और रामनवमी के अवसर पर रामलीला मंचन तथा शरद पूर्णिमा और वसंत के अवसर पर रास मंचन की प्राचीन परम्परा रही है। इस क्षेत्र को हमें आध्यात्म, संस्कृति और लालित्य का समवेत रूप ही कहना होगा। लीला मंच, नाट्य मंचों से अलग रहे हैं और उनकी परम्परा का विकास, जनरंजन की नाट्य शैलियों के रूप में न होकर 'भक्ति की एक पद्धति' की तरह हुआ है। कालान्तर में विशेष रूप से रामकथा मंचन लीला प्रस्तुति के अपने पारम्परिक आध्यात्मिक स्वरूप के बजाय नाट्य परम्पराओं से प्रभावित हुआ पारसी नाट्य शैली के प्रभाव में इसका मंचन एक यथार्थवादी नाट्य प्रस्तुति की तरह ही होने लगा रामकथा की लीला प्रस्तुतियाँ इनी-गिनी ही शेष रहीं, विशेष रूप में रामनगर और काशी में अथवा असम के क्षेत्र में विकसित आध्यात्मिक सत्रों में। इसके विपरीत श्रीमद्भागवत केन्द्रित कृष्ण कथाओं पर एकाग्र रास मंच, लीला प्रस्तुति के पारम्परिक मंच की तरह ही रहा, उसमें नाट्य तत्त्वों और यथार्थवादी नाट्य शैलियों का प्रभाव बहुत कम पड़ा।

वैष्णव सम्प्रदायों में लीला से जुड़े पारम्परिक काव्य और संगीत एक सुदीर्घ परम्परा में विकसित हुए हैं- श्रीमद्भागवत की कथाओं के प्रसंगों में, लीला मंच के माध्यम से लोक समाजों तक भागवत कथा और लीला मंच को विस्तारित करने में विभिन्न रासाचार्यो ने अथक परिश्रम किया। इस मंच ने ब्रज के पारम्परिक लोक संगीत के साथ ही ध्रुपद और धमार की प्राचीन परम्परागत शास्त्रीय संगीत शैलियों को भी अपने में समाहित किया। रासलीला मंच को ब्रज क्षेत्र के समाजी संगीत गायन की विशेष संगीत शैली तथा पुष्टिमार्गीय वैष्णव परम्परा के हवेली संगीत से भी बड़ी समृद्धि मिली।

चूँकि ब्रज की ये रासमंडलियाँ सारे देश में आमंत्रित की जातीं थीं, इसलिए इन संगीत शैलियों का प्रभाव भी देश की विभिन्न संगीत परम्पराओं पर हुआ, और आज भी यह एक जीवन्त परम्परा है। इसी प्रकार काव्य परम्परा को भी समझने का यत्न करना चाहिये। वास्तव में मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के समय से ही विभिन्न श्रेष्ठ कवि, अनेक वैष्णव सम्प्रदायों से जुड़े रहे हैं-इनकी काव्य रचना तत्त्वतः 'भक्ति पद रचना' है, इनमें अष्टछाप के कवियों का योगदान अभूतपूर्व है, ये सभी कवि श्री वल्लभाचार्य के पुष्टि मत और सम्प्रदाय से जुड़े थे। दूसरे अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में भी श्रेष्ठ कवि और संगीताचार्य संबद्ध रहे हैं। रास मंच ने ब्रज की पारम्परिक वाचिक गीति रचना तथा ब्रजभाषा के विभिन्न कवियों की पदरचना को भी भागवत कथाओं के साथ समाहित किया- इसलिए बहुत हद तक रास मंच के माध्यम से इस काव्य और संगीत परम्परा का संकलन और संरक्षण संभव हो सका। इस परम्परा ने कथा, गीति रचना, नृत्य-भावाभिनय और संगीत के साथ एक समग्र लीला मंच और लीला दर्शन विकसित किया। पारम्परिक भारतीय प्रदर्शनकारी कलाओं के क्षेत्र में इसीलिए हम आग्रहपूर्वक लीला मंच के अवदान पर पुनर्विचार का आग्रह दोहराते रहे हैं- हम ऐसा मानते हैं कि लीला मंच हमारे देश में नाट्य परम्पराओं के आदि स्रोत और बीज रूप रहे हैं।

सोलहवीं सदी में 'श्रीरामचरितमानस' प्रबंध की रचना के साथ रामलीला मंचन की परम्परा में एक युगान्तर घटित हुआ। संत तुलसीदास ने अपने शिष्य मेघा भगत के माध्यम से रामलीला प्रदर्शन के लिए रामलीला मंडली का गठन करवाया। धीरे-धीरे ऐसे रामलीला मंडल सारे उत्तर भारत में फैल गये। प्रस्तुति का प्रमुख आधार 'रामचरितमानस' ही था। इसे अनेक लोक शैलियों में विकसित होने का अवसर मिला, जिसमें मूल पाठ के साथ कुछ जनपदीय स्थानिक सांस्कृतिक तत्त्व और काव्य तथा संगीत परम्पराओं का संश्लेष किया गया। ऐसा लगता है कि तुलसी के पूर्व रामलीला मंचन रामकथा के कुछेक प्रसंगों पर केन्द्रित होता था, जिसमें पाठ का आधार वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण, आनंद रामायण तथा कृतिवास रामायण और कालिदास और भवभूति जैसे संस्कृत कवियों की रचनाओं में विशेष रूप से 'रघुवंशम्' और 'उत्तररामचरित' के प्रसंग ही शामिल रहे होंगे। रामचरितमानस की रचना के बाद सम्पूर्ण रामकथा, रामलीला में प्रदर्शित होना आरंभ हुई। उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के आरंभ में पारसी मंचन शैली के अभ्युदय से धीरे-धीरे रामलीला की परम्परा 'लीला के तत्त्वों' को पीछे छोड़ती गयी और पारसी रंग शैली में 'रामकथा नाटक' की एक यथार्थवादी शैली में विकसित होने लगी। उसमें भाव-भक्ति और लीला दर्शन की आध्यात्मिक शक्ति का क्षरण हुआ, वह जनरंजन की शैली में परिवर्तित हुई बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में श्रीराधेश्याम रामायणी के पाठ और गायन शैली का भी बड़ा प्रभाव पड़ा। उसकी सम्प्रेषण शक्ति और प्रभाव जबर्दस्त था। पारसी शैली के साथ इस प्रभाव ने लीला परम्परा के दायरे में विकसित जनपदीय रामलीला लोक शैलियों को लगभग नष्ट कर दिया।

लीला परम्परा के पश्चात् मंचन की शैलियों में हमें पौराणिक रचना केन्द्रित 'आख्यान के रंगमंच' पर विचार करना चाहिये। पौराणिक कथा लोक एक विराट विस्तार है- इसमें प्रारभ में रामायण और महाभारत की कथाओं और उनके उपाख्यानों को मंचित किया जाता रहा। धीरे-धीरे इसमें बहुत सारी पुराण कथाएँ मंच प्रस्तुति का विषय बनायी गयीं। नल-दमयन्ती, सत्यवादी हरिश्चंद्र, मोरध्वज, सरवन कुमार, सुभद्राहरण, जटायु मोक्ष, शबरी-प्रसंग, मेघनाद वध, प्रहलाद कथा आदि प्रमुख रूप से पौराणिक रंगमंच का विषय रहे।

आख्यान के रंगमंच पर एक और युगान्तर घटित हुआ, जब लोक के आख्यानों ने पौराणिक रंगमंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। सुदीर्घ लोक प्रेमाख्यानों के मंचन को इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता मिली। लोकाख्यानों के रूप में वे विभिन्न जनपदों में लोक गायन परम्परा के माध्यम से पहिले ही लोक समाजों की स्मृति में रचे-बसे थे। रंग प्रस्तुति के रूप में लोक में वे शीघ्र ही पौराणिक कथाओं के मंचन से भी अधिक प्रभावी और प्रिय हुए।

यह लौकिक कथा की लोक रचना थी इसने भारत में रंग दृष्टि और शैलियों के विकास में अतुलनीय योगदान किया। पुराण रचना, ज्ञान परम्परा के सार की कथा निर्मिति है। ज्ञान के सार को लोक समाजों तक ले जाने की एक कथा पद्धति इसे 'ज्ञान के संस्कृतिकरण' के रूप में समझना चाहिए। शास्त्र के बाहर 'ज्ञान" कथा' होकर लोक के संज्ञान, संस्कार और स्मृति का हिस्सा हो जाता है। 'ज्ञान की कथा' पहिले कथा व्यासों के द्वारा' कथा प्रवचन' के रूप में फैलती है और फिर वह मंचन का विषय बनती है। इससे अनेक लोक प्रदर्शनकारी शैलियों और रूपों का विकास होता है। हमें इन शैलियों में 'गान', 'नृत्य' और 'नाट्य' का एक समवेत रूप दिखता है- अनेक नाट्य शैलियाँ तत्त्वतः 'गान' हैं और प्रसंगतः नाट्य प्रस्तुतियाँ, अनेक शैलियाँ मूलतः 'नृत्य' परम्परा का भाग हैं, उनका वास्तविक रूप 'कथा नृत्यों' की तरह है, कुछेक नाट्य शैलियाँ 'लीला' रूपों का नाट्य विकास है।

पौराणिक आख्यान 'दिव्य और लौकिक' का एक संश्लेष है। यह 'ज्ञान की संस्कृति भूमि' और 'कथावस्तु' में जीवन्त लोक है। लेकिन किसी भी रूप में वह केवल 'माइथोलॉजी' नहीं है। हमें भारत में पुराणों की स्थिति पर अपनी परम्परा के सन्दर्भ में विचार करना होगा- हम इसे सांस्कृतिक नृतत्त्व की भूमिका और पद्धति के माध्यम से विश्लेषित कर इसके वास्तविक स्वरूप के साथ न्याय नहीं कर सकते। इसमें देवता और दैत्य, स्वर्ग-नरक, आकाश-पाताल, जन्म और मृत्यु, पुनर्जन्म और कर्मफलों, भाग्य और प्रारब्ध, सृष्टि और संहार, मनुष्य और पुरखों तथा प्राणि जगत के असंख्य विस्तार में मनुष्य और जीवों का दिव्य लोकों, दिव्य समयों और सूक्ष्म पराप्रकृति के साथ एक विचित्र संबंध है- देवताओं के स्वर्ग, मनुष्य के मृत्युलोक और पाताल के नागलोक में विस्तारित यह जीवन क्षेत्र देव-दानवों और मनुष्यों, पुरखों और प्रेतों तथा अदृश्य सूक्ष्म अस्तित्वों की समग्र लीला भूमि है। उनके अपने-अपने समय हैं 'दिव्यता और देवों का समय, प्रकृति और प्रकृति के गुण,

तत्त्वातीत अयोनिज इच्छा सृष्टि आदि धरती मृत्यु लोक है, जिसमें त्रय आयामी समय और क्षेत्र, त्रिगुणात्मक प्रकृति, पंचतत्त्वात्मक सत्ता, मिथुन सृष्टि, जन्म और मृत्यु है। इसमें प्रत्येक सत्ता परिवर्तन के नियम के भीतर है और प्रकृति तथा अस्तित्त्व का अपना 'ऋत' उसे संचालित करता है। उसकी देव सृष्टि में देवता 'स्वरूप' और 'धारणा' दोनों रूपों में हैं। परम देव सृष्टि एक ब्रह्म निराकार से 'त्रिदेवों' की सगुणता में विभाजित होती है। सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा, इसका पालन करने वाले विष्णु और संहार के देव शंकर के रूप में।

काल, क्षेत्र, प्रकृति, प्रकृति के गुण और देव रचना त्रित्व में है। अपनी इच्छा, वासना और कर्म में स्वयं मनुष्य के लिए भी 'त्रित्व' एक संभावना है- मनुष्य अपनी अधमता में पशुओं जैसा और पवित्रता में देवताओं जैसा हो सकता है, बीच में मनुष्य की संभावना है जो अपनी प्राकृतिकता और दिव्यता की संभावना में जीता है, उस मृत्यु लोक जैसा, जो न पाताल लोक है न स्वर्ग लोक।

पुराण जीवन और जीवन की कल्पना, यथार्थ और स्वप्न, लौकिक और दिव्य, प्राकृतिक और अनन्त के समय, प्राणि, मनुष्य और पुरखों-मातृशक्तियों, प्रेतों और देव-दानवों की समष्टि है- जिसमें समय के अलग-अलग रूपों में जीवन की आवाजाही होती रहती है। शाप और वरदान फलित होते हैं। खण्ड प्रलय और नवसृष्टि के कल्प होते रहते हैं- समष्टि के समय और प्रकृति तथा समग्र के जीवन की धारणा के बिना वे कुल मिलाकर अविश्वसनीय गल्प या माइथोलॉजी हो जाते हैं और 'समग्र के स्वीकार की आस्था' से वास्तविक जीवन से अधिक वास्तविक।

भारत में आख्यान 'गान' से 'नृत्य' और 'नृत्य' से 'नाट्य' तक संस्कृति रचना की एक विशाल यात्रा करते हैं। सदियों-सदियों 'आख्यान के रंगमंच' के साथ करोड़ों भारतीयों का आध्यात्मिक बोध और संस्कृति चेतना विकसित और संस्कारित हुई है।

आख्यान के रंगमंच की इस भूमि पर ही अन्ततः लौकिक आख्यान और चरितनायकों पर एकाग्र एक नये लौकिक पुराण का अवतरण हुआ पारम्परिक मंच ने दैविक से लौकिक तक भी एक सुदीर्घ और बीहड़ यात्रा पूरी की है।

इतिहास के नायक चरितनायकों में और चरितनायक लोक देवताओं में बदल गये। चरितनायक के लिए इतिहास का समय छोटा था, वे इतिहास के समय से मुक्त होकर दिव्यता की पहली संभावना पर अपने लिए कुछ ज्यादा समय चाहते थे। कुछेक चरितनायक, लोक की रचना में अन्ततः लोक देवता भी हुए, थोड़े से आख्यान लोकदेवताओं को भी लेकर रचे गये हैं, इन्हें भी लोकमंच पर वैसी ही प्रसिद्धि और समादर प्राप्त हुआ, जैसाकि पहिले पौराणिक आख्यानों-उपाख्यानों को। कई अर्थों में हम कह सकते हैं कि लोक की ये गाथाएँ- आख्यान पौराणिक रचना की तुलना में लोक के अधिक निकट थे, क्योंकि इनमें चरित और लोक देवताओं के साथ विशेष जनपद की स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं और विशिष्टताओं का समावेश भी था। ये आख्यान स्थानिक 'संस्कृति दर्शन' के अद्भुत साक्ष्य बन गये।

जनपदीय लोक परम्पराओं में लोक के सुदीर्घ प्रेमाख्यान भी लोकनाट्य शैलियों के प्रिय विषय रहे हैं- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि आभीरों के आगमन के साथ लोक प्रेमाख्यानों की रचना की एक परम्परा विकसित हुई। लोक की भूमि पर 'प्रेम' के इस रूप को गहराई से समझने की जरूरत है। ढोला मारू, लोरिक चंदा, सोहिनी महिवाल, हीर-रांझा आदि प्रेम आख्यान लोक के प्रिय कथा आख्यानं रहे हैं, वे सदियों से लोक समाजों में 'गाये' और 'मंचित' किये जाते रहे हैं। इसका अर्थ है कि ये मूलतः लोकगान शैलियों के रूप में प्रचलित रहे हैं। 'हीर' पंजाब के लोक जीवन में एक सुदीर्घ प्रबंधात्मक गीत की तरह गाई जातीहै, उसकी विशिष्ट संगीत शैली है। लोरिक चंदा की गाथा, भोजपुरी अवधी और छत्तीसगढ़ी में लोरिकी, लोरिकायन और चंदैनी के रूप में गायी जाती है। ये गाथा गायन शैली आज भी लोक परम्परा में इन जनपदों में एक जीवन्त गायन परंम्परा है। बिहार में 'विदेसिया' की लोक प्रस्तुति बीसवीं सदी की घटना है, तत्त्वतः यह 'विरहा लोक गायन' परम्परा का विकास है। इन आख्यानों ने 'गान' से नाट्य तक एक लम्बी यात्रा की है।

ये प्रेमाख्यान विभिन्न जनपदों में प्रचलित रहे, किन्तु बोलियों के अपने अन्तः प्रवाह और सांस्कृतिक आदान-प्रदान और प्रभाव से वे धीरे-धीरे सारे उत्तर भारत में प्रचलित हो गये। इन आख्यानों में 'प्रेम कथा' जीवन की व्यापक गतिविधि के बीच विकसित होती है और इसमें आकर्षण-विकर्षण, मिलन और विरह की लौकिक भूमिकाओं से 'प्रेम के उदात्त रूप' तक जीवन की एक समग्र कथा रची गयी है।

इस बिन्दु पर जिस क्षण हम प्रेम और प्रेमाख्यानों की चर्चा कर रहे हैं, हमें युद्ध और युद्धाख्यानों पर भी उसी समय विचार करना होगा। यह कितना आश्चर्यजनक है कि दुनिया भर की कथाओं में प्रेम और युद्ध साथ चलते हैं। 'प्रेम' में शक्ति है कि वह 'काल' को अनन्त तक फैला देता है, मनुष्य 'प्रेम' में स्वतंत्र होने के विस्तार की एक अकथनीय अनुभूति में होता है, उसके लिए केवल बाहर का संसार ही नहीं, स्वयं उसका अन्तस भी जैसे 'स्वातंत्र्य' की एक गहन अनुभूति में डूब जाता है। युद्ध, घृणा और हिंसा, प्रतिशोध और अहंकार में मनुष्य का संसार छोटा कर देता है दूसरे को नष्ट करने की बलवती और दुर्दम इच्छा, मनुष्य के अन्तस को जैसे निगल लेती है।

प्रेम कथाओं के साथ युद्ध कथाएँ भी रची गयी हैं। एक में हम मनुष्य का अनन्त विस्तार और परम स्वतंत्रता के दर्शन करते हैं, जिसमें हृदय अन्ततः एक 'महाकरुणा' में लय हो जाता है। दूसरे में हम मनुष्य की बाहरी और आंतरिक सत्ता का घोर आश्चर्यजनक संकुचन देखते हैं, जिसमें मनुष्य निःशेष और विलुप्त हो जाता है। मनुष्य को ही अन्ततः नष्ट कर एक विवश परतंत्रता उन्मादित अट्टहास करती है, उसकी आवाजें, किसी निर्जन में अपने तक लौट आयीं दुखद प्रतिध्वनियों जैसी सदियों तक गूँजती रहती हैं।

अगाध शौर्य से परिपूर्ण वीर योद्धाओं की भी गाथाएँ रची गयीं हैं। ये

इतिहास के नायक हैं- इतिहास के समय में रहते हैं- इतिहास को बदल डालने, इतिहास की भूमि पर युद्ध कर इतिहास में अपना नाम अमर कर लेते हैं। इतिहास के इन वीर बंदियों के लिए खुद आख्यान इतिहास के समय और जीवन से बड़ा और विस्तृत समय और जीवन देने में असमर्थ है। उन्हें अन्ततः गाथा के महलों में रहना होता है- कभी-कभी आने वाली पीढ़ियाँ महलों के पुरावशेषों में कौतूहल से इन्हें देख आतीं हैं- इतिहास के इन खण्डहरों में जहाँ इन वीर योद्धाओं की आत्माएँ भटकतीं रहती हैं।

उनकी आवाजें हम सुन नहीं पाते वे कह रहे होते हैं, हम थे जिन्होंने इतिहास रचे, इतिहास बदले और इतिहास में दर्ज हो गये, अब हम थक गये, हमें मुक्त करो।

लोक के नाट्य की आखिरी संभावना, सामाजिक रंगकर्म के रूप में प्रकट होती है। लोक का स्वभाव और प्रवृत्ति 'लौकिक' की है। वह पहिले 'दिव्यता के देवों' को लौकिक करता है और फिर 'सूक्ष्म प्रकृति' को विदा कर त्रिगुणमयी अपनी 'ऋत' में परिवर्तित होती सुन्दर स्थूल प्रकृति में बदल देता है। प्रेम के उदात्त में लीन अमर चरित्रों और इतिहास के युद्ध- नायकों की रचना के बाद लोक का नाटक अपने आसपास दृष्टि डालता है। उसे जीवन की सम्भव सामान्यता में हजारों लोग अपनी प्रतीक्षा में खड़े दिखते हैं। जीवन भर कंजूसी कर सम्पत्ति के पहाड़ पर बैठे दानी, पांडित्य का विशाल बोझा उठाये विद्वान, संन्यासी के पवित्र वेश में घोर संसारी, संसार बटोकर संसार तज देने वाले विरागी, किसी जाति में पैदा भर होने का अपराध करने वाले के स्पर्श से मलिन होने वाले कुलीन पवित्र, भगवान का धंधा करने वाले पुरोहित, दान की सौगात लुटाने वाले वंदनीय सूदखोर, मूँछें ऐंठती मर्दानगी जो औरतों और कमजोरों पर बरस पड़ती है। अननिगत चरित। हमें चारों ओर से घेरे रहते हैं।

वे सब कालों और पीढ़ियों में पाये जाते हैं। आश्चर्यजनक रूप से वे सब समयों और पीढ़ियों में एक जैसे रहते हैं। हम इन पर हँसना चाहते हैं- हमारी हँसी, जिसमें हमारा क्रोध और घृणा भी मिली होती है। हँसी जो अगर संभव न हो सके, तो एक सच्चा आदमी पागल हो सकता है।

लोक का नाटक लीला की दिव्यता को अपनी श्रद्धा और प्रणाम निवेदित कर आरंभहोता है और एक जरूरी हँसी तक अनवरत अपनी यात्रा तय करता चलता रहता है। वह अनन्त के काल, पुराण के काल और इतिहास के वर्षों में देवताओं, दैत्यों, पुरखों और प्रेमियों तथा वीरों से मुलाकात करता अन्ततः जीवन के प्रवाह में लौट आता है, उसके पास बहुत से जीवन, बहुत से समय और बहुत से देव-दानवों, चरितों और नायकों की कथाएँ सुनाने के लिए रहती हैं।

'कथा' कही जाती है- इसमें सदा दूसरा यानी सुनने वाला बड़ा महत्त्वपूर्ण है। दूसरे तक जाकर ही जैसे कथा पूरी होती है, यहाँ शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

जब 'कथा' 'गान' बनती है तो जैसे सुनने वाले की कोई विशेष भूमिका नहीं होती। यहाँ शब्द, 'स्वर' होकर जीवन और जीवन के अनुभव और अनुभूति के बहुत सारे एकान्त अंधेरे में अनकहे रह गये जीवन का 'स्वर गान' होकर 'कथा' को गहन और संगीतपूर्ण बना देते हैं- हम ही गाते हैं, हम ही सुनते हैं।

अन्तस के इस अतलान्त में एक दिन कथा के पात्र 'गान' से बाहर निकलकर 'मुद्राओं और भंगिमाओं' में प्रकट होते हैं। 'गान' 'नृत्य' करने लगता है और 'कथा' रंगभूमि पर भंगिमाएँ और 'प्रतिरूप' प्रकट करने लगती है- जो कथा 'शब्द' से 'स्वर' होकर अन्तस में चली गयी थी, वह 'अन्तस' से सीधे सारे 'लोक' में प्रकट होकर उसे अपने साथ बहा ले जाती है।

शब्द, स्वर, मुद्रा और प्रतिरूप की इस यात्रा में 'नाट्य' का जीवन अपनी 'लीला' करता है- अमर्त्य से नश्वरता तक, देवताओं से मुनष्यों तक, एक विराट् यात्रा।

मध्यप्रदेश में प्रचलित लोकनाट्य शैलियों पर एकाग्र कुछ टिप्पणियाँ और विमर्श तथा वाचिक नाट्य पाठों के संकलन का यह कार्य अकादेमी ने पन्द्रह वर्ष पूर्व आरंभ किया था। अनेक कारणों से यह संग्रह ग्रंथ के रूप में प्रकाशित नहीं हो सका। अनेक वरिष्ठ लोक अध्येता, जिन्होंने उस समय यह कार्य संभव किया-सर्वश्री डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, गोमती प्रसाद 'विकल', डॉ. शिवकुमार 'मधुर', चन्द्रशेखर दुबे, सिद्धेश्वर सेन, प्रभाकर दुबे अब हमारे बीच नहीं हैं। यह ग्रंथ आदरपूर्वक इन्हीं लोक मर्मज्ञों को समर्पित है।

श्री माधव शुक्ल 'मनोज', डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. श्याम सुन्दर दुबे, श्री वीरेन्द्र द्विवेदी, श्री वसन्त निरगुणे, श्रीमती कृष्णा वर्मा और श्री सन्तोष पाण्डेय जिन्होंने पाठ संकलन और नाट्य शैलियों पर विवेचनात्मक लेख उपलब्ध कराये, हम हृदय से आभारी हैं। हमें आशा है कि रंग परम्पराओं और शैलियों के अध्ययन में उत्सुक पाठकों, अभिनेताओं और रंग निर्देशकों के लिए यह सामग्री महत्त्वपूर्ण होगी।

पुस्तक : रंगभूमि, संपादक डॉ. कपिल तिवारी, प्रकाशक आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल से साभार

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए। **- संपादक**

कला में अद्वैतानुभूति

राधावल्लभ त्रिपाठी

वेदों में सृष्टि के रहस्य की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि प्रारम्भ में एक पुरुष हुआ, वह एकाकी रम नहीं रहा था। तो उसने अपने आपको बहुत बना लिया। एक के बहुली भवन से सृष्टि होती है। एक अनेक हो जाता है। इन अनेकों के भीतर वह एक पिरोया हुआ रहता है।

एकत्व के बहुलीभवन और इस बाहुल्य में अन्तर्निहित एकत्व की साधना ही कला की साधना है। कविता, चित्र, मूर्ति, नृत्य आदि सभी कलाओं में सर्जक कवि या कलाकार अपने भीतर के एक व्यक्ति को बहुलीभवन के द्वारा असीम बनाता चलता है। कला की सर्जना में कलाकार अपने व्यक्तित्व को असीम बना कर अनन्त से जुड़ जाता है। व्यष्टि चित्त समष्टि से एकाकार हो जाता है।

ऋषि बताते हैं कि एक ही अपने विस्तारित कर के अनन्त हो जाता है। ऐसा वह आनन्द के लिये करता है। यह बहुलीभवन भी एक की अपेक्षा रखता है, एक है तभी बहुल हो सकता है। एक अपने को अनेकों में बिखेर देता है। इस बहुलता को पेड़ के दृष्टान्त से समझा जा सकता है। पेड़ एक है, उसका मूल एक है। उस मूल से अनेक शाखाएँ फूटती है। एक एक शाखा में कई कई पत्तियों आती हैं। फूल आते हैं। हर फूल का एक वृन्त या बन्ध होता है। उसमें पंखुड़ियाँ फूटती हैं। पंखुड़ियाँ बाद में आती है, केन्द्र जहाँ से पंखुड़ियाँ फूटती हैं, पहले है। पंखुड़ियों का एक केन्द्र है। पंखुड़ियों से उसका सम्बन्ध केन्द्रापसारी दृष्टि से भी प्रतिपादित हो सकता है और केन्द्राभिमुख दृष्टि से भी। एक अनेक होने के लिये आकुल होता है, अनेक फिर एक से जुड़ने के लिये यत्न करने लगते हैं। यह यत्न आनन्द की साधना है। आनन्द से ही सृष्टि के सारे प्राणी जन्म लेते हैं, आनन्द के लिये जीवन में खटते हैं और आनन्द की अभिमुख रहते हैं। यह केन्द्राभिमुखी दृष्टि है। बहुलता के विचार के साथ हमारी परम्परा में यह दृष्टि बनी रही है। तब बहुलता में एकता का सन्धान करने की आवश्यकता नहीं होती, वह स्वतःसिद्ध और प्रत्यक्षगम्य होती है। यह एक अपने को अनेक में विन्यस्त करता जाता है - यह भी सत्य है और वे अनेक पुनः एक का सन्धान अपने को उसी में समाहित करते हैं-यह भी।

कला के विश्व में आनन्त्य और एकत्व की यह प्रक्रिया दोनों तरह से प्रतिफलित होती है। इस प्रक्रिया में चेतना का प्रसार, असीम का अनुभव भी होता है और एकत्व की अनुभूति भी होती है। अनन्त अपने आप को विस्तारित भी करता है, और फिर संकुचित भी करता है।

कला की सृष्टि में सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व रस है। भरतमुनि कहते हैं कि रस के बिना तो नाट्य में कहीं भी कुछ भी होता ही नहीं, क्यों कि सब उसी में से आविष्कृत, पल्लवित और परिवर्धित होता चलता है नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते (नाट्यशास्त्र, षष्ठ अध्याय)। इस बात को वृक्ष और बीज के चिरन्तन दृष्टान्त से स्पष्ट करते हुए वे फिर कहते हैं

यथा बीजाद्भवेदृक्षो वृक्षात्पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः ।।६.३८।।

जैसे बीज से वृक्ष होता है. वृक्ष से पुष्प और फल। इसी तरह बीज के रूप में तो सारे रस (नाट्यप्रयोग के) मूल में हैं, इन्हीं से भाव व्यवस्थित होते हैं। यह रस सर्जक की संवित् है। यहि संवित् मूल है। इस मूल से नाट्य और नृत्य की सृष्टि में ग्यारह तत्त्वों का प्रसार होता है – रस, भाव, अभिनय, धर्मी, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान तथा रङ्ग (नाट्यशास्त्र ६/१०)।

भरतमुनि जिसे नाट्यवृक्ष में बीजभूतसंविद्रूप रस बता रहे हैं उसी को ब्रह्माण्डवृक्ष के बीजभूत तत्त्व के रूप में उपनिषद् बता रहे हैं। यदि कहा जाये कि काव्यरस या नाट्यरस अलग हैं, औपनिषदिक तत्त्वमीमांसीय रस इनसे पृथक् पदार्थ हैं, तो यह कहना उचित नहीं, क्यों कि काव्यरस या नाट्यरस को भी संविद्विश्रान्ति रूप या स्वात्ममात्रपर्यवसिति के रूप में ही समझाया गया है। आत्म का अनुभव भी भाव है, इस अनुभव से तदाकारिता रस है। यदि काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है तो रस आत्मा की संवेदनात्मक अनुभूति है। नट या नर्तक का अभिनय करना आत्मा का अभिनय है। भाव के लक्षण में भरतमुनि कहते हैं - आत्माभिनयनं भावः (नाट्यशास्त्र २६.२९)।

मूलतः रस कविगत संवित् है। अभिनवगुप्त कहते हैं कि जैसे बीज वृक्ष के मूल के रूप में अवस्थित रहता है, उसी तरह रस नाट्यवृक्ष के मूल के रूप में बीजभूत संवित् है।

नायकस्य कवेः श्रोतुः समानोऽनुभवस्ततः यह आचार्य अभिनवगुप्त के गुरु भट्ट तोत का कथन है। नायक, कवि और श्रोता तीनों का अनुभव एक ही होता है। नायक से आशय संसार के उन मनुष्यों से हैं जिनका जीवन कविता, कला में चित्रित किया जाता है। उनके अनुभवों को कवि व्यक्त करते हैं। नट, नर्तक आदि रंगमंच पर आंगिक, वाचिक और सात्त्विक तथा आहार्य अभिनयों के द्वारा कविता में रचे जा चुके इन अनुभवों को फिर से मंच पर रचते हैं। तीनों ही स्तरों पर अनुभव एक हो जाता है। यह अनुभव रस है। वेद या उपनिषद् इस रस की चर्चा करते हैं और इसीको आनन्द भी कहते हैं।[1]

कलासर्जना का उत्स यही आनन्द माना गया। तैत्तिरीय उपनिषद् में तो आनन्द से ही संसार के उपजने और आनन्द में समाने की बात कही गई है।[2]

भारतीय नाट्य, नृत्य. चित्र या मूर्ति सभी में आनन्द ही वह गंगोत्री ही जिससे कविता और कला की भागीरथी, अलकनन्दा या गंगा निःसृत होती है, आनन्द ही साधना का विषय है और आनन्द ही प्राप्य है। जो कवि कलाकार इसे साध लेते हैं उनके लिये जगत् आनन्दमय हो जाता है, वे आनन्द की धारा से इसे आप्लावित देखते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने एक गीत में कहते हैं -

आनन्दधारा बहिछे (बोहिछे) भुवने (भुबोने)
दिनरजनी कत अमृतरस उथलि याय अ (ओ) नन्त ग (गो) गने
आनन्द की धारा की धारा बह रही है भुवन में।

दिन रात या आनन्द की धारा का अमृरस उफान ले ले कर अनन्त गगन में भरता जा रहा है।

उपनिषदों में मनुष्य की चेतना के पाँच कोश या पाँच स्तर बताये गये अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय। सामान्यतया संसार में सभी जीव-जन्तु या मनुष्य अन्नमय और प्राणमय के स्तरों पर रहते हैं। यह स्तर स्थूल काया और पार्थिव जगत् के चिन्तन में चुक जाता है। पर इस पार्थिव लोक में मनुष्य जो कुछ कहते सुनते हैं, गाते हैं या नाचते हैं, वह सब कला की सृष्टि के लिये नींव बनता है। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में ऋषि कहते हैं -

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः। अथर्ववेद १२.१.४१
जिस धरती पर उमंग में भर कर हम मनुष्य नृत्य में थिरकते हैं
तथा
सा नो भूमिः पूर्व पेये दधातु (वही, ३)
वह भूमि अपना पहला पहला पेय हमें दे।
सा नो भूमिर्भूरिघारा दुहामतो उक्षतु वर्चसा।।
वहीं भूमि हम सब के हित दूध की धार बहा है।

भूमि का यह पहला पहले पेय या उसके वक्ष से बहती दूध की धार रस ही है।

जीव इसी धरती की मिट्टी में खेलता है, मिट्टी के शरीर में रमता है। जायसी पद्मावत में कहते हैं -

माटी कर तन भाँड़ा माटी मूँह नव खण्ड।
जे केऊ खेले माटि मुँह, माटी परम प्रचण्ड।।

यह सृष्टि का आधिभौतिक स्तर है। कलाओं के लिये धरती यहीं बनती है। कविता के बीज इसी धरती से उगते हैं इसके आगे मनोमय लोक है। सन्देह, विचिकित्सा, संकल्प-विकल्प जिस स्तर पर उदित होते हैं वह मनोमयजगत् है। इसमें शरीर छूट जाता है, देह के बन्धन टूट जाते हैं। मन का संसार देह और पार्थिव संसार के कई गुना विराट् और विलक्षण हो जाता है।

योगवासिष्ठ की एक कथा में मगध के राजा इन्द्रद्युम्न की रानी अहल्या मगध के ही एक इन्द्र नाम के ब्राह्मण युवक से प्रेम करती है। राजा को इस प्रेम की भनक लगती है तो वह दोनों को रोकने प्रयास करता है। जब दोनों नहीं मानते तो उसने दोनों को बर्फीले पानी में फिंकवा देता है, दोनों उससे हँसते हुए बाहर निकल आते हैं। तब राजा दोनों को जलते भाड़ में फिकवा देता है। वे उससे भी हंसते हँसते बाहर आ जाते हैं। हाथी के पैरों से कुचलवाने और कोड़े लगवाने पर भी वे अक्षत बने रहते हैं। यातनाएँ दे दे कर राजा बार बार इन्द्र से पूछता है कि क्या हाल हैं। इन्द्र उससे यही कहता है- **मनोमात्रमहं राजन् मनो हि पुरुषः स्मृतः ।।**

इन्द्र इन्द्रियों के अधिष्ठाता है। वे मन हैं। अहल्या धरती है। जिस पर हल नहीं चलता उसे अहल्या कहा जाता है। अर्थात् धरती। मन इस पार्थिव जगत् से बंधा है। वह इसमें रमता है। पार्थिव जगत् मन से बंधा है। योगवासिष्ठ ने इन्द्र और अहल्या के प्रेम की पुरानी कहानी को गूढ जीवन दर्शन के साथ नया रूप दे दिया है।

हम पार्थिव जगत् से मनोलोक में पहुँचते हैं. कल्पनाओं का संसार इसी जगत् में रह कर करते हैं। शास्त्रचिन्तन का उपक्रम भी यहीं होता है। हम इसमें देवताओं को प्रतिष्ठित करते हैं। यह आधिदैविक संसार है। अन्नमय जगत् और प्राणमय लोक में बीजवपन और अंकुरण होने के पश्चात् कलाएँ, कविता, और शास्त्रों के पादप यहीं प्रस्फुटित होने लगते हैं। फिर उनकी यात्रा मनोमय से ऊपर जा कर विज्ञानमय और आनन्दमय कोश तक जाती है। इस आनन्दमय कोश में एक अखण्ड चिद्धन आनन्द ही शेष रहता है, वहीं अशेष होता है। विज्ञान, कला और शास्त्रों का अद्वैत यहीं है।

अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश तक की यात्रा में आधिभौतिक जगत्, आधिदैविक जगत् और आध्यात्मिक जगत् ये तीनों समाविष्ट हो जाते हैं। अद्वैत का बोध होता है। यह अद्वैत तत्त्व जड़ और स्थिर नहीं है। वह निरन्तर रूपान्तरित होता है। बृंह-बढ़ना-इस धातु से ब्रह्म शब्द बना है। परम सत्ता अपने को निरंतर विस्तारित करती आ रही है। वह एक से अनेक होता चलता है, फिर भी अंततः एक ही रहता है। मैक्समूलर ब्रह्म का अर्थ एक ऐसी सत्ता मानते हैं, जो स्फुटित होती है, खिलती जाती है, और शब्दों या विचारों में ढलती जाती है।[3] वे ब्रह्म को word (वाक्) शब्द से भी संबद्ध करते हैं। ब्रह्मन् का एक अर्थ शब्द या वर्ड भी है। भारोपीय भाषा में ब्रह्म और लेटिन भाषा का verbum मूलतः एक ही धातु से निकले हुए शब्द हैं। भर्तृहरि के भी पहले उपनिषदों ने भी शब्द को ब्रह्मस्वरूप स्वीतार किया था- मैत्रायणी उपनिषद् (6.23) में परब्रह्म और शब्दब्रह्म - दो रूप परम सत्ता के कहे गये। ब्रह्म को ही उपादान कारण भी कहा गया, और निमित्त कारण भी, क्यों कि अनंत सान्त के भीतर अपने को व्यक्त करता है, अतः व्यक्ति की भी सम्भावना अनन्त हो जाती है। अद्वैत का बोध होने पर भी बोध के प्रकार की दृष्टि से व्यक्ति अपने में विशिष्ट भी बना रहता है, और असीम से एक भी। अद्वैत दर्शन की परंपरा में यह बोध तीन प्रकार का बताया गया (1) मैं तुम्हारा ही हूँ. (2) तुम मेरे हो. (3) तुम ही मैं हो-

त्वदीयोऽहं मदीयस्त्वं त्वमेवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः ।।

कविता, कला, भक्तिसाधना, ध्यान-धारणा इन में ये बोध प्रतिफलित होते हैं। शंकराचार्य कहते हैं

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गो न तारङ्गः क्वचन समुद्रः स्यात्।।

भेदापगम या अद्वैत होते हुए भी हे प्रभु, मैं ही तुम्हारा हुआ, न कि तुम मेरे हुए, क्यों कि लहर समुद्र का अंग होती है, समुद्र लहर का अंग नहीं होता। भागवत में प्रहलाद इन सारे बोधों में तात्त्विक अंतर नहीं देखते। परम सत्ता मैं हूँ या परमसत्ता मत्स्वरूप या मेरा मैं है -यह कहने में अंतर नहीं रह जाता, परम सत्ता मैं बनती है मैं परम सत्ता। ईश्वर को नमन करते हुए तब प्रहलाद कहते हैं कि उसके साथ मैं अपने आप को भी तो नमन कर रहा हूँ-

अहं त्वं त्वमहं देव दिष्ट्या भेदोऽस्ति नावयोः।
दिष्ट्या मत्तामसि प्राप्तो दिष्ट्या त्वत्तामहं गतः ।।
मह्यं तुभ्यमनन्ताय तुभ्यं मह्यं शिवात्मने ।।
नमो देवाधिदेवाय परायपरमात्मने।।

जलालुद्दीन रूमी कहते हैं

मन् तू शुदम् तू मन् शुदी
मन् तन् शुदम् तूँ जाँ शुदी
ता कस न गोयद बादजीं
मन् दीगरम् तू दीगरी

मैं तू हुआ तू मैं हुआ
हमारे देह हमारे प्राण एक हुए
फिर क्यों व्यर्थ बकबक करते हैं लोग
कि तू मुझ से दीगर है और मैं तुझ से दीगर हूँ

दुनिया बदलती है-कई बार हम बदल जाना लक्षित नहीं कर पाते, क्यों कि हम आधिभौतिक स्तर पर बदलाव को ही देख पाते हैं, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तरों पर होने वाले रूपान्तर को हम प्रायः नहीं बूझ पाते हैं। यह संसार अपने आधिभौतिक रूप में जितना बड़ा है उससे कई गुना बड़ा आधिदैविक रूप में है और उससे भी कई गुना बड़ा आध्यात्मिक रूप में है। आधिभौतिक बदलाव ऊपर ऊपर से बहुत बड़ा मालूम पड़ता है, पर वह भंगुर और तुच्छ होता है, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तरों का बदलाव अपनी सूक्ष्मता के कारण प्रत्यय का विषय सहज में नहीं बन पाता, वह वह तात्त्विक और अपने फैलाव में विराट् तथा दूरगामी होता है। यह आनन्त्य है। उपनिदों की भाषा में यही भूमा है। आनन्द इसी भूमा में है। कलाएँ और काव्य हमें भूमा से जोड़ देते हैं।

जिस आधिभौतिक जगत् से आरम्भ हो कर यह यात्रा आनन्द के अध्यात्म में पहुँचती है, वह आधिभौतिक जगत् भी आनन्दमय परमात्मा की रचना है, इसलिये आनन्द उसमें अन्तः स्तिमित है। वैदिक विश्वबोध इस जगत् को परमात्मा की रची कविता के रूप में देखता है- **देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति)।** शतपथ ब्राह्मण (७।२।२।१७) तथा बृहदारण्यक उपनिषद् (१।५.१४) में प्रजापति की सोलह कलाओं का विवरण है, जो काल या समयचक्र के रूप में जगत् को धारण करती हैं।

यदि यह जगत् परमात्मा के द्वारा रची कविता है, तो इस कविता को कवि या कलाकार अपनी कृति में नये सिरे से रचता, कहता और प्रस्तुत करता है। वैदिक ऋषि ऐतरेय महीदास अपने ऐतरेय ब्राह्मण में इस दृष्टि से समस्त कलाओं या शिल्प को दो प्रकार का मानते हैं देवशिल्प और मानुष शिल्प। देवशिल्प की ही अनुकृति मानुष शिल्प है। इस संसार के नाना पदार्थ देवताओं के शिल्प हैं। उनकी अनुकृति में मनुष्य अपना शिल्प, कला या कविता रचता है।

कला की सृष्टि में भी अन्नमय, प्राणमय और मनोमय से हो कर विज्ञानमय के द्वार से आनन्दमय तक की यह यात्रा होती है और इसकी सारी गत्यात्मकता के में नित्य नये पड़ाव आते रहते हैं क्यों कि कलाएँ निरन्तर हमें संस्कारित और परिमार्जित करती चलती हैं। कलाएँ शुभ और अशुभ का विवेक देती हैं, अतएव पुरुषार्थ की प्राप्ति उनके द्वारा अवश्य होती है। ब्रह्मा के मुख से नाशा. में कहलवाया गया है-

भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पकः।
कर्मभावान्वयापेक्षी नाट्यवेदो मया कृतः।। (१/१०६)

इसलिये कला की सर्जना और कलानुभूति में आनन्द की साधना और आनन्द की जो सिद्धि होती है, वह पुरुषार्थ की साधना और पुरुषार्थ की सिद्धि भी बन जाती है। नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि कहते हैं कि रस मात्र रंजन या आस्वाद नहीं है, पुरुषार्थसिद्धि में उसकी परिणति अनिवार्यतःहोनी चाहिये। इसीलिये श्रृंगार रस के भी धर्मश्रृंगार, अर्थश्रृंगार और कामश्रृंगार- ये तीन प्रकार भरतमुनि बताते हैं, आगे चल कर भोज ने इनमें मोक्षश्रृंगार चौथा भेद भी जोड़ा।

रंगमंच पर कला का साधक चाहे वह नट या अभिनेता हो, या नर्तक अथवा नृत्यांगना हो, यह यात्रा देह के माध्यम से करता है। देह अन्नमय कोश है, उसमें स्पन्दित होते प्राणमय को वह साधता है, और मनोमय से कला के संसार को रचता है, जो विज्ञानमय और आनन्दमय तक ले जाता है। आत्मा, बुद्धि, मन और देह के सम्बन्धों को बताने के लिये कठोपनिषद् में बताया गया कि आत्मा रथी है, शरीर रथ, बुद्धि सारथि है और मन लगाम है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।

शरीर का रथ स्थूल होने से दिखता है, मन की लगामें भी देखी जा सकती हैं, बुद्धि इस शरीर के रथ को मन की लगामों से चलाती है, वह भी समझ में आती है। पर रथी या रथ का स्वामी अदृश्य है। रथी आत्मा है। सारथि रथ का स्वामी बनने लगता है। उपनिषद् रथी या आत्मा को जानने का आग्रह करते हैं। अपने को जान लेना असीम से जुड़ना है। इसलिये एक असीम सबका लक्ष्य है, वही भूमा या अनंत है, सुख उसको पा लेने में है। उपनिषद् फिर कहते हैं - **"यो वै भूमा तत् सुखम्। नाल्पे मुखमस्ति। भूमेव सुखं, भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः।"** (भूमा या असीम में सुख है, सीमित में नहीं। इस लिये भूमा या असीम को जानना चाहिये।) यह ज्ञान बुद्धि में उस सर्वात्मा के

अवभास से के द्वारा होता है। मनुष्य की बुद्धि उसके मानवीय गुणों के विकास का और अन्ततः आत्मसाक्षात्कार का माध्यम बन सकती है। शंकराचार्य आत्मबोध में कहते हैं -

यदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्वबत्।। (आत्मबोध - 17)

सर्वात्मा सर्वत्र अवभासित नहीं होता, वह स्वच्छ बुद्धि में ऐसे ही झलकता है जैसे निर्मल दर्पण में प्रतिबिम्ब झलक उठता है।

कलाकार वह नर्तक हो या कवि या साहित्यकार प्रजापति की भूमिका पर स्थित हो कर रचना करता है। ईश्वर की रची हुई दुनिया को नये सिरे करता हुआ वह ईश्वरमय होता जाता है।

अनुकृति या ईश्वर निर्मित जगत् की मानवीय सर्जनाव्यापार के द्वारा पुनःसृष्टि है। अनुकृति का यही स्वरूप भरतमुनि ने नाट्य की सर्जन प्रक्रिया के द्वारा सूचित किया है। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि बार बार नाट्य को जगत् की अनुकृति कहते हैं।[4] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कलाओं का एकत्व बताने के लिये कहा है कि नाट्य, नृत्य या चित्र सभी में अनुकृति का तत्त्व समान है।[5] यह अनुकृति अपने भीतर के ईश्वर को पाना, उसे रचना और उससे एक हो जाना है।

वैदक ऋषि ऐतरेय महीदास एक प्रतीकात्मक कथा के द्वारा बताते हैं कि छन्दस् या वेद के छन्दों में रस था। छन्द छन्द में जो रस था वह ऊभचूभ हो कर बहने लगा। प्रजापति भयभीत हुए कि इस तरह तो छन्दस् का रस लोक से अतिक्रान्त हो जायेगा। तब उन्होने छन्दस् के उस रस को नारांशंसी तथा गायत्री के द्वारा बाँध लिया।[6]

यह जगत् शिवमय है, जिस तरह शिव विभाग शून्य अखण्ड हैं, उसी तरह परमार्थ रूप में यह भी विभागशून्य तथा अखंड है। पर जिस तरह दर्पण में हम प्रतिबिम्ब देखते हैं, तो उस प्रतिबिम्ब में अंग-प्रत्यंग अलग अलग झलकते हैं, वास्तव में दर्पण एक और अखंड है, प्रतिबिम्ब इस दर्पण से अलग कुछ नहीं है, पर वह अलग झलकता है. उसी तरह यह संसार शिव से अलग झलकता है।

चूँकि इस जगत् में शिव समाये हुए हैं अत यह जगत् मिथ्या नहीं है। उसी तरह अभिनवगुप्त की दृष्टि में कला न भ्रम है, न आरोप, न निश्चयात्मक ज्ञान या अध्यवसाय। वह रसस्वभाव वस्तु है। कला रस है और रस कला है। यही रस परम तत्त्व भी है। अत एव कलानुभूति परम तत्त्व की अनुभूति हो जाती है।

रचनाकार भी शिव की तरह निर्मिमित्सा या रचने की इच्छा से आविष्ट होता है। प्रकाश, विमर्श और स्पन्द उसकी रचनाप्रक्रिया में उन्मिषित होते हैं। अभिनवगुप्त कहते हैं कि एकाग्र चित्त होकर सारे सामाजिक जन नृत्त, गीत आदि की प्रस्तुति को अमृतमय मान कर उसमें तल्लीन हो जाते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि मल्लों, नटों आदि के खेल या प्रस्तुति को देखते हुए सारे प्रमाताओं या कलानुभव के मर्मज्ञों का उस पूर्ण अनुभव कराने वाला तादात्म्य हो जाता है। जो सर्वात्मक संवित् या चैतन्य अलग अलग देहों में सीमित हो कर बसी हुई है, उसके के अलग अलग देहों में संकुचित रूप इस प्रकार के मेलों या सामूहिक प्रदर्शनों में परस्पर टकराते हैं, एक दूसरे में प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, और कान्ति से आलोकित हो उठते हैं। तब आत्मा का उच्छलित होता किरणसमूह इन चेतना के नाना रूपों में प्रतिबिम्बित हो जाता है। वह अनेक दर्पणों के एक साथ मिल जाने से अनायास दीप्त हो जाता है। इसीलिये नृत्त, गीत आदि को अनेक लोग जब एक साथ देखते हैं, तो जो आस्वाद का अनुभव होता है, वह उनमे से किसी एक का नहीं होता। आनन्द से सराबोर चेतना नृत्त आदि के विषय का प्रत्यक्ष या साक्षात्कार करती हुक्ति पूर्ण आनन्द पाती है।[7]

कलासृष्टि के समय कवि या कलाकार शिव की भूमिका पर अवस्थित होता है, तो कलानुभव की दशा में प्रमाता ईश्वररूप हो जाता है। कला की रचना और अनुभूति दोनों के लिये चित्त का शिव के समान हैं।

शिवसूत्र में कहा गया है- आत्मा नर्तक है, जीवात्मा रंगमंच है, और इन्द्रियाँ इसका आस्वादन लेने वाली प्रेक्षक हैं। वास्तव में योगी संसार के नाटक को अपने भीतर देखता है और उसका साक्षात्कार करता है। यह साक्षात्कार प्रमोदनिर्भर या आनन्द से आप्लावित होता है। इसमें चमत्कार और रस की सम्पूर्णता होती है। संसार के विषयों के आस्वादन और काव्य के आस्वादन में अन्तर यह है कि संसार के विषयों के आस्वादन में विषयों का व्यवधान होता है। चेतना और आस्वाद के बीच में सांसारिक विषय रहता है। काव्य के आस्वाद में यह विषयव्यवधान नहीं होता।[8]

योगिनश्चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि हि संसारनाट्यप्रकटनप्रमोद-
निर्भरं स्वरूपम् अन्तर्मुखतया साक्षात्कुर्वन्ति, तत्प्रयोगरूढ्या
विगलित- विभागा चमत्काररससम्पूर्णतामापादयन्ति।
(शिवसूत्रविमर्शिनी, का०सं०ग्र०, पृ०४४)

हमारे समकालीन विश्व में जब छल और प्रपंच विस्तार हो रहा हो, और युद्ध, कलह तथा द्वन्द्व की विभीषिकाएँ निरन्तर मुँह बाये खड़ी हैं, कलाएँ एक समानान्तर संसार रच कर अद्वैत के अनुभव के द्वारा आज के मनुष्य के द्विधा विभक्त, द्वैधग्रसित मनोवृत्तियों के तार उसी एक से जोड़ने में सहायक हो सकती हैं।

नृत्यकला तथा अद्वैतानुभूति

कार्यशाला के लिये बीजपत्र

भारतीय कलादृष्टि में कला केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। कला की सर्जना में कलाकार अपने व्यक्तित्व को असीम बनाकर अनन्त से जुड़ जाता है। व्यष्टि चित्त समष्टि से एकाकार हो जाता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है- ***आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्दं प्रयन्त्यभिविशन्ति च।*** समस्त प्राणी आनन्द से जन्म लेते हैं, आनन्द के लिये जीवन भर प्रयास करते हैं तथा आनन्द में ही अन्ततः समाविष्ट हो जाते हैं। यही आनन्द परम तत्त्व है- **आनन्दो ब्रह्मेति**

व्यजानात्। इसी आनन्द को रस भी कहा गया है। तैत्तिरीय का ही वचन है - **रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति** यही आनन्द रस है। रस को प्राप्त करके मनुष्य आनन्दमय हो जाता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् के इन वचनों को कलासृष्टि तथा कलानुभूति की व्याख्या में उद्ध्त किया जाता रहा है।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि कला के संसार के प्रजापति हैं। उन्होंने रस के सम्बन्ध में कहा है कि रस के बिना नाट्य के विश्व में कहीं भी कुछ भी नहीं होता है। रस कलानुभूति सर्जक, रचनाप्रक्रिया तथा कलानुभूति इन तीनों स्तरों पर समाहित रहता है। सर्जक भी कलानुभव से एकाकार होता है। भारतीय परम्परा तन्मयीभवन को लक्ष्य मानती है। कला के इस दर्शन को आनन्दाद्वैत कहा जा सकता है। इसका प्रयोजन मुक्ति है।

कलासर्जना की प्रक्रिया में सर्जक, अभिनेता तथा दर्शक या पाठक कलानुभूति से एकाकार हो जाते हैं। कला में चित्रित विभाव या आलम्बन, कलाकार तथा कला के भावक तीनों का अनुभव एक हो जाता है। यह अनुभव समाधि में परिणत होता है, जिसे कलासमाधि कहा जा सकता है। कलाकार प्रजापति की भूमिका पर आरूढ़ होकर समाधि की दशा से ही कला की सर्जना में प्रवृत्त होता है। इस दशा में उसकी चेतना असीम से जुड़ जाती है। कलानुभूति में अनुभव, अनुभवकर्ता, अनुभव का विषय तथा अनुभव का प्रक्रिया सब एकमेक हो जाते हैं। सब कुछ के निःशेष होने पर केवल रस ही शेष रहता है, इसे सब उसी में विलीन हो जाता है। यही रसाद्वैत है। निरावरण निष्कलुष चैतन्यमात्र ही रस है।

प्रस्तुत कार्यशाला में भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र के ताण्डवलक्षणाध्याय तथा उस पर आचार्य अभिनवगुप्त की टीका अभिनवभारती के आधार पर अद्वैतानुभूति की दृष्टि से नृत्यकला की साधना और तदनुसार प्रशिक्षण की पद्धति के लिये सुनिश्चित कार्ययोजना तैयार की जायेगी।

अद्वैतवादी कलाचिन्तकों में निम्नलिखित पर इस में पोस्टर प्रदर्शनियाँ लगाई जायेंगी -

वैदिक ऋषि

दीर्घतमस्

ऐतरेय महीदास

काव्यशास्त्र तथा कलाशास्त्र के चिन्तक

भट्टनायक

अभिनवगुप्त

विश्वनाथ

भानुदत्त

पण्डितराज जगन्नाथ

कला के अद्वैतपरक सौन्दर्यशास्त्र के विवेचक

मधुसूदन सरस्वती

वल्लभाचार्य

रूप गोस्वामी

सम्पर्क: 9999836088

■■■

[1] तैत्तिरीय का ही वचन है रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति यही आनन्द रस है। रस को प्राप्त कर के मनुष्य आनन्दमय हो जाता है। साहित्यशास्त्र में तैतिरीय के इन वचनों को उद्धृत किया जाता रहा है।

[2] आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्दं प्रयन्त्यभिविशन्ति च। समस्त प्राणी आनन्द से जन्म लेते हैं, आनन्द के लिये जीवन भर प्रयास करते हैं तथा आनन्द में ही अन्ततः समाविष्ट हो जाते हैं। यही आनन्द परम तत्व है - आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।

[3] "What burst forth or breaks forth. whether in shape of thought or words or in the shape of creative power. Lectures on Vedanta, Chowkhambha SS, Varanasi. 1967, p.22)

[4] तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्यैः सुरा जिताः। नाट्यशास्त्र १।५७, नाना भावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।। वही १।११२ सप्तद्वीपानुकरणं नाट्यमतद् भविष्यति। वही, १।११७
येनानुकरण ह्येतन्नाट्यमेतन्मया कृतम्। वही. १।११८,

[5] यथा नृत्ते तथा चित्रे पैलोक्यानुकृतिः स्मृता विष्णुधर्मोत्तर पुराण तृतीय खण्ड

[6] छन्दसां वै षष्ठैनाह्वाप्तानां रसोऽत्यनेदत्। स प्रजापतिरबिभेत्। पराङयं छन्दसां रसो लोकानत्येष्यतीति। तं परस्ताच्छन्दोभिः पर्यगृह्णात्। नाराशंस्या गायत्र्याः। रैभ्या त्रिष्टुभः। पारिक्षित्या जगत्याः। कारव्यानुष्टपभः। तत् पुनः छन्दःसु रसमदधात्। सरसैहर्हास्य छन्दोभिरिष्टं भवति। सरसैश्छन्दोभिर्यज्ञं तनुते य एवं वेद।
(ऐतरेयब्रा० ३०।६, भाग-३, पृ० १५५-५९)।

[7] तथा हृदयैकाग्रसकलसामाजिकजनः खलु। नृत्तं गीतं सुधासारसागरत्वेन मन्यते।। तत एवोच्यते मल्लनटप्रेक्षोपदर्शने।
सर्वप्रमातृतादात्म्यं पूर्णरूपानुभावकम्।। संवित् सर्वात्मिका देहभेदाद् या सङ्कुचेत् तु सा। मेलकेऽन्योन्यसङ्घट्टप्रतिबिम्बाद् विकरस्वरा।।
उच्छलन्निजरश्म्यौघः संवित्सु प्रतिबिम्बितः। बहुदर्पणवद् दीप्तः सर्वांशेनाप्ययवतः। अत एव नृत्तगीतप्रभृतौ बहु पर्षदि।
यः सर्वतन्मयीभावो हलादो नत्वेककस्य सः।। आनन्दनिर्भरासंवित् प्रत्यक्षं सा तथैकताम्। नृत्तादौ विषये प्राप्ता पूर्णानन्दत्वमश्नुते।।

[8] मधुरादिरसास्वादे तद् विषयस्पर्शव्यवधानम्। ततोऽपि काव्यनाट्यादौ तद्व्यवधानशून्यता तद्व्यवधानसंस्कारानुवेधस्तु।
तत्रापि तु तथोदितव्यवधानांशतिरस्क्रियासावधानहृदया लभन्त एव परमानन्दम्। यथोक्तम्- यद्विपानकृतोल्लासरसानन्दव्यवस्थितेः (वि०भै० ७२)।
-ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, पृ० १७९

आलेख

मालवांचल में लोकनाट्य माच के ठाठ

- डॉ. पूरन सहगल

'माच' मालवा राजस्थान में अभिनय शैली का अत्यंत लोकप्रिय लोकानुरंजन का माध्यम रहा है। इसकी संवाद शैली संगीत प्रधान होती है। अनेक राग रागनियों का उपयोग इस के कड़ावों में किया जाता है। पूरी रात अभिनीत किया जाने वाला माच का खेल जितना लोकप्रिय था उतना और कोई भी नाट्य माध्यम नहीं था। आज भी मालवा अंचल में इसकी लोकप्रियता बनी हुई है।

कुछ विद्वान माच के तार छत्तीसगढ़ के 'नाचा' बुंदेलखण्ड के 'राई' राजस्थान-मालवा के 'ढारा-ढारी', गम्मत, गुजरात की भुवाई आदि नृत्य एवं अभिनव प्रधान लोकरंजक शैलियों से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे हैं। डॉ. भगवतीलाल जी राजपुरोहित अपने एक लेख 'माच का प्रदर्शन' में लिखते हैं कि माच एक रूपक है। इसका प्रारंभ मालवा में 19 वीं सदी के पूर्वाद्ध में हुआ। राजस्थान में माच ख्याल और महाराष्ट्र में माच नृत्य का प्रचलन रहा है। मालवा के उज्जैन के भागतीपुरा में गोपाल गुरु ने मालवी माच का आरंभ किया। स्वयं गोपाल गुरु राजस्थान के मेवाड़ से उज्जैन में आकर बसे थे। अतः राजस्थान के अपने संस्कारों के आधार पर ही उन्होंने मालवा माच की परिकल्पना की होगी। फिर यह लोक नाट्य विभिन्न गुरुओं के समर्थ सहयोग से पूरे मालवा और ग्वालियर तक व्याप्त हो गया।

प्रसिद्ध विद्वान पं. सूर्यनारायणजी व्यास ने तो माच को चतुर्भाणी शैली से प्रभावित बताकर इसे मालवा की प्राचीनतम नाट्य शैली निरूपित करने का प्रयास किया है। वे श्री मोतीचंद्र एवं डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा संपादित ग्रंथ 'श्रृंगार हाट' के हवाले से ऐसा विचार व्यक्त करते हैं इन भाणों को पढ़ते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे मालवा में बहुप्रचलित और लोकप्रिय ग्राम्यनाटक माच के मौलिक रूप ही हैं। संभव है, माचों का जन्म इन्हीं भाणों से हुआ होगा। यही लहजा, यही भाषा, (मालवी) यही शैली, हाजिर जवाबी, चुहुलबाजी और अश्लीलता आदि माचों में मौजूद रही है। भाणों को हम माचों का जन्मदाता कह सकते हैं। संभव है, उस पूर्व युग में यह संस्कृत की स्वाभाविक शैली में खेले जाते हों। बाद में अवंती भाषा (मालवी) में आ गए हो। यह चतुर्भाणी 'श्रृंगारहाट' नाम से चार भाणों का एक संग्रह है। इसकी रचना गुप्तकाल में की गई।

पंडित सूर्यनारायणजी संस्कृत के विद्वान तो थे ही अवंतिका और उसकी मालवी से भी उनका लगाव बहुत ही चरम परम था। उनके मन में निश्चित ही यह मोह रहा हेगा कि, माच को किसी प्राचीन वंश से जोड़कर इसे प्राचीनता प्रदान कर अधिक महत्वपूर्ण बनाया जा सकता है।

इसी प्रकार अन्य लोक प्रचलित नाट्य शैलियों से इसे जोड़ना या इस पर उनका प्रभाव सिद्ध करना केवल आधारहीन चर्चा से अधिक नहीं माना जा सकता। माच किसी भी पूर्व परंपरा का न तो विस्तार है और न ही इस पर किसी अन्य नाट्य विधा या शैली का कोई स्पष्ट प्रभाव।

'माच' अपने आप में एक स्वतंत्र शैली है। इसकी तुलना केवल माच से ही की जा सकती है। जैसे नीमच का माच, मन्दसौर का माच या उज्जैन का माच। ऐसी तुलना तो संभव है किन्तु अन्य नाट्य शैलियों से इसकी तुलना अथवा उत्पति बताना उचित नहीं है। इसी प्रकार राजस्थान के 'ख्यालों' से भी इसे जोड़ना ठीक नहीं लगता। ऐसा करने के पहले यह तय करना पड़ेगा कि, ख्यालों का प्रारंभ कब और कैसे हुआ? यह भी तो हो सकता है कि, ख्याल 'माच' से प्रभावित हुए हो। वैसे एक ही समय में प्रचलित कलाएं परस्पर प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकती हैं?

'माच' के उद्भव और विकास की कथा बहुत रोचक है 18 वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में चंदेरी के महाराजा जयसिंह राठौड़ एक कला प्रेमी और साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे। संगीत के तो वे स्वयं जानकार थे।

उनके दरबार में दो आशु कवि थे। एक का नाम था शाह अली और दूसरे का नाम था तुकनगीर गुसाई। उन्होंने अनेक पदों की रचनाएं की। संगीत के भी दोनों सिद्धहस्त कलाकार थे। चंदेरी तो बैजूबावरा के कारण वैसे भी संगीत का तीर्थ रहा हैं।

एक बार राठौड़ राजा जयसिंह ने दोनों कवियों में तात्कालिक काव्य प्रतियोगिता का आयोजन करवाया। यह तय किया गया कि, दोनों आशुकवि

विभिन्न राग-रागनियों और 'तर्जो' में सवाल-जवाब करेंगे। जिस रागनी में और तर्ज में सवाल होगा, उसी में जवाब देना होगा। उत्तर देने में विलंब नहीं करना होगा। प्रतियोगिता के लिए समय निर्धारित किया गया। वह प्रतियोगिता सात दिनों तक चलती रही। प्रतिदिन श्रोताओं और कलाप्रेमियों की संख्या बढ़ती चली गई। स्वयं राजा जयसिंह राठौड़ निर्णायक थे। दोनों में से कोई भी हारता हुआ नहीं दिखा। आखिरकार राजा ने प्रतियोगिता रोक दी। राजा ने दरबारियों और अन्य कला पारखियों से निर्णय मांगा। कोई भी निर्णय नहीं दे सका। अंत में राजा ने स्वयं निर्णय दिया और दोनों को बराबर घोषित करके उन्हें सरपाव और जागीर प्रदान की। राजा ने उनका मान बढ़ाने के लिए अपनी पाग में से 'तुर्रा' निकालकर तुकनगीर गोस्वामी की पाग में लगा दिया और 'कलगी' निकालकर फकीरशाह अली की पाग में लगा दी। इतना बड़ा सम्मान आज तक उस दरबार में किसी को नहीं मिला था।

राजा द्वारा जागीर में दी गई जमीन पर गोस्वामी तुकनगीर ने एक मठ की स्थापना की। उसमें संगीत और नृत्य सहित नाट्य शास्त्र की विद्या सिखाई जाती थी। इसे तुर्रा अखाड़ा कहा गया। इस अखाड़े का ध्वज भगवा रहा।

फकीर शाहअली ने राजा द्वारा दी गई जमीन पर अपने उस्ताद शाह नसरूलह खाँ की मजार बनवाई। उस पर हरा झंडा लगाया गया। उसका नाम' कलगी अखाड़ा' कहा गया। वहाँ भी गीत-संगीत और काव्य रचना की शिक्षा दी जाती है।

इस प्रकार तुर्रा अखाड़ा के पहले उस्ताद और संस्थापक गुसाईं तुकनगीर तथा कलगी अखाड़ा के पहले उस्ताद व संस्थापक फकीरशाह अली माने गए। जहाँ तुर्रा अखाड़ा की स्थापना की गई थी उस मठ पर नाट्य का पहला वाद्य 'चंग' का प्रतीक रूप में चाँदी से बनी बारह फीट व्यास की' चंग' लटका दी गई है।

भले ही दोनों उस्तादों ने अपने-अपने अखाड़े अलग-अलग बना लिए किन्तु उन्होंने परस्पर मेल-मिलाप और राय-मश्वरा जारी रखा। दोनों अखाड़ों का प्रदर्शन आमने-सामने होता था। खूब आनंद के साथ कलाम होते थे। कभी-कभी तो वाकयुद्ध ऐसा हो उठता था कि, उस्तादों तथा अन्य विशिष्ट लोगों द्वारा समझाइश देने और बीच बचाव करने के लिए दखल देना पड़ता था। इन अखाड़ों में खास बात यह थी कि, दोनों अखाड़ों में हिन्दू और मुसलमान शिष्य मिलकर शिक्षा प्राप्त करते थे। तुर्रा अखाड़े में हिंदू मुसलमान दोनों धर्मों के शिष्य थे तो कलगी में भी दोनों मजहबों के शिष्य थे। धीरे धीरे दोनों अखाड़ों में प्रतिद्वंदता के भाव पनपने लगे।

तुर्रा और कलगी के खेलों के विषय अलग अलग होते हैं। कलंगी अखाड़े वाले रामायण महाभारत के कथा प्रसंगों तथा अन्य धार्मिक आख्यानों खेल तैयार करके के खेलते हैं जबकि तुर्रा अखाड़े वाले महापुरुषों, लोक नायकों के जीवन पर आधारित खेलों की रचना करके उन्हें खेलते हैं। समाज सुधारक महापुरुषों अथवा विचारों के नाटक भी तुर्रा अखाड़े वाले खेलते हैं।

दोनों अखाड़ों की राग-रागनियाँ और तर्जे समान होती हैं। प्रमुख राग-रागनियों में दोहा, डेढ़ा दोहा, डेढ़ा दोहा नसीराबादी, डेढ़ा दोहा हरियाणवी, लावणी, छोटी लावणी, हिलूर, चूनरी, आसावरी, छंद, शेखावटी, पणिहारी, झेला, जिकरी, भाभी-भाभी, उमराव, यमक, रेखता, मनरहन, दादरा, गूजरी, लावणी लंगड़ी, इंद्रसभा आदि अन्य रागनियाँ माच के ठाठ को गतिमान करती हैं।

शुरू-शुरू में ध्वनि विस्तारक यंत्र नहीं होने के कारण माच के कलाकार जिन्हें खेलिए कहा जाता है खूब ऊँचे स्वर में अलाप लगाकर गाते थे। राग-रागनियों के संवादों में एक अद्भुत नियम यह भी होता है कि, संवाद का प्रति संवाद उसी रागनी और तर्ज में देना होता है जिस में सामने वाले पात्र ने गाया हो। इसमें विलंब भी अभीष्ट नहीं होता। इसके अलावा प्रथम पात्र ने अपने संवाद में जितने प्रश्न किए हैं। उतने उत्तर उसी क्रम से देने होते हैं। उदाहरण है भर्तृहरि ख्याल का। जब वैश्या अमर फल लेकर राजा भर्तृहरि के दरबार में आती है तब भर्तृहरि उससे पूछते हैं।

लावणी- तू कौन, कहाँ से आई सुंदर नारी।
भर्तृहरि - हे क्या तेरी फर्याद मुझे बतला री।।
वैश्या- सम्राट चक्रवर्ती हो भूप तप धारी।
मैं हरजाई, रैयत नाथ तुम्हारी ।।

दोनों ही अखाड़ों में यह नियम एक समान है। मंच (तख्त) पर उस्ताद का सम्मान कर साफा बंधवाकर बैठाया जाता है। हर पात्र उन्हें धोक देकर अपना अभिनय प्रारंभ करता है। रागनियों-तर्जो में कहे गए संवादों को मंच के एक और बैठे कुछ गायक कलाकार दोहराते हैं। इन्हें 'टेरिए' कहा जाता है। दोहराने को 'टेर झेलना' कहा जाता है। इस प्रक्रिया के दो उद्देश्य होते हैं। एक तो दोबारा गाने से संवाद अच्छी तरह श्रोताओं तक पहुंच जाता है। दूसरे सामने वाले पात्र को उत्तर देने का अवसर मिल जाता है। दोहराने का काम पहले गायक कलाकार करते थे। बाद में शहनाई भी उनका सहयोग करने लगी। माच का प्रारंभिक साज चंग थी। फिर ढोलक आई। हारमोनियम भी आया तो फिर सारंगी भी आ गई।

पुरुष पात्र की वेशभूषा भी खूब भड़कीली होती है। स्त्री पात्र भी पुरुष ही होते है। उनकी वेशभूषा अत्यंत चटकीली और भड़कीली होती है। वेशभूषा के साथ-साथ उनके लटके झटके भी खूब लुभाते है। घुंघरू सब पात्रों के पैरों में बाँधे जाते है। सभी लोग लटके-झटके से मचक-मचक कर अभिनय करते है। आज भी यह परंपरा कायम है। इसे मचकने से ही संभवत 'माच' शब्द की उत्पत्ति हुई हो। मंच से माच को जोड़ना भी उचित हीं है। 'मचक" माच' लोक नाट्य की खास शैली है। स्त्री पात्र तथा पुरुष पात्र दोनों ही खूब ही मचक-मचककर तथा नाच कूदकर अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं। यही मचकना ही माच का प्राण तत्व होता है। प्रकाश का माध्यम मशालें होती थी। बाद में पेट्रोमेक्स आए। बिजली बहुत बाद में आई।

तुर्रा और कलंगी के अखाड़ों में प्रतिस्पर्द्धा खूब होती थी। यदि किसी नगर गाँव में तुर्रा ने खेलकर लिया तब वहाँ कलंगी वाले अवश्य खेल करते थे।

इसी प्रकार कलंगी की टक्कर में तुर्रा वाले अखाड़ा जमाते हैं।

जब कभी दोनों अखाड़े आमने-सामने डट जाते तब तो रंगत का ठाठ ही निराला होता है। ऐसी स्थिति में खेल हट जाता और दोनों तख्तों के खिलाड़ियों का परस्पर नोक झोंक शुरु हो जाती अद्भुत और रोमांचक लोकरंजक दृश्य होता था। श्रोता रात भर जमे रहते थे। प्रभात तक माच का खेल चलता है।

खेल के समय पार्श्ववाचक और कवि भी तख्त पर बना रहता है। जो पात्रों का संवाद और रागनी का संकेत करता एवं साजिंदों को भी रागनियों की सूचना देता है। अधिक बार कवि और पार्श्व वाचक एक ही होता है। उस्ताद प्रत्येक पात्र और उसके अभिनय पर नजर रखता है। वह भी आशुकवि होता है। आज भी माच की परंपरा जीवित है। उसकी चुस्ती और मचक बरकरार है। सुस्ती और ढीलापन माच में कभी नहीं होता। इसे मर्द खेल कहा जाता है।

दशपुर अंचल माच का मुख्य के केन्द्र माना जाता रहा है। इस अंचल के अनेक नगरों और गाँवों में माच के अनेक अखाड़े रहे हैं। सबकी स्वतंत सत्ता स्वतंत्र खेल और स्वतंत्र ठाठ ठस्के रहे हैं। यहाँ के अखाड़ों ने चित्तौड़ नागोर, निम्बाहेड़ा, सादड़ी और प्रतापगढ़ तथा झालावाड़ बूंदी तक अपने झंडे गाढ़े हैं। दशपुर अंचल की तो पहचान ही है। यहां का 'माच लोक नाट्य' यह अंचल माच का पीहर कहा जाता है।

डॉ. शिवकुमार 'मधुर' ने बहुत परिश्रम करके 'मध्यप्रदेश का लोक नाट्य माच' ग्रंथ लिखा। उनका यह शोध वंदनीय है। यह दशपुर अंचल का दुर्भाग्य रहा कि, उनकी दृष्टि दशपुर अंचल पर नहीं पड़ी। एक विहंगम दृष्टि उन्होंने इधर डाली अवश्य किन्तु उनके पैरों में एक लंबी डोर बंधी थी अवंतिका की। वे घूम फिरकर उस्ताद जगन्नाथ से लगाकर सिद्धेश्वर सेन के बीच ही चक्कर लगाते रहे। माच को सिद्धेश्वर सेन ने जो ऊर्जा एवं यश प्रदान किया वह स्तुत्य है। आज यदि मालवा में माच जीवित है तो इसका श्रेय निर्विवाद रूप से सिद्धेश्वरजी को जाता है। किन्तु काश मधुर जी दशपुर अंचल के माच गौरव पर भी अपनी लेखनी चलाते। निश्चित ही वे चूक गए। दशपुर में माच की परम्परा उपेक्षित हो गई।

नीमच सिटी माच का प्रमुख घराना माना जा सकता है। चित्तौड़ से माच इस क्षेत्र में आया। नीमच के भंवरलाल मंगल, लक्ष्मीनारायण मंगल और भगतराम कुमावत ने माच घराने को खूब यश दिया। इसी प्रकार बघाना में अर्जुन नरेड़ी, लाला उस्ताद और शंकरजी चौरड़िया का नाम आज भी वहां के लोगों की जबान पर जीवित है। मल्हारगढ़ के बिहारीदासजी, चेनरामजी, राधेश्यामजी और रघुवीरजी तथा कारूंडा के घासीजी को माच का बहुत सिद्ध खिलाड़ी माना जाता था। सूबी हो या घसूंडी अथवा आसपास के कई गाँव। सब जगह माच की धूम मचती थी।

नीमच छावनी का माच तो इतना ठाठदार था कि, राजस्थान के माच अखाड़े उनका माच देखने के लिए निमंत्रित होते थे। माच अखाड़ों में परस्पर निमंत्रित की परम्परा भी निराली थी। उन्हें चिट्ठी केसाथ पाँच इलायचियाँ भेजने पर ही निमंत्रण स्वीकार होता था। जब अखाड़े के खिलाड़ी किसी अन्य अखाड़े के माच प्रदर्शन में पहुँचते थे तब उनका पूरा सम्मान किया जाता था। उनकी बैठक व्यवस्था विशेष रूप से की जाती थी।

छावनी के माच के विशेष खिलाड़ियों में व कवि, उस्तादों में तुर्रा के बाबू जयदालजी वर्मा, उस्ताद तुलसी राम हाँस, बाबू पूनमचंदजी भास्कर, भूरा महाराज शर्मा, मूलचंदजी शर्मा, उदयरामजी वर्मा, चांदमलजी सिंहल व केशरीमलजी गोयल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार कलिंगी अखाड़ा के बाबू ओकारसिंहजी चौहान का नाम बहुत श्रद्धा से लिया जाता है। वे यहाँ कलंगी अखाड़ा के संस्थापक माने जाते हैं। इनके बाद छोगालालजी अग्रवाल व श्री बंशीधरजी ने कमान सम्हाली। बाद में श्री पूनमचंदजी प्रजापति यहां के कलंगी अखाड़ा के उस्ताद स्थापित हुए।

तुर्रा अखाड़े में श्री जयदयालजी वर्मा तथा तुलसीदासजी हंस ने अनेक खेलों की रचना की। इनके बाद श्री जगदीश प्रसादजी ऐरन ने अनेक खेलों की रचना की। महाराज भर्तृहरि जाग मच्छंदर गोरख आया, भक्त प्रहलाद, दुष्यंत शकुंतला, भक्त श्रवणकुमार, महाराजा हरिशचंद्र, महासती नारायणी देवी, सीता स्वयंबर, लवकुश, रुक्मणी मंगल आदि अनेक खेलों की रचना की। रचना ही नहीं की बल्कि इन्हें खेलाया भी।

कलंगी अखाड़े के लेखकों में पंडित शिवदयालजी, श्री रामेश्वर दयालजी खण्डेलवाल व श्री बंशीलालजी धाणी प्रमुख थे। उन्होंने रामायण और महाभारत के कथा प्रसंगों को आधार बनाकर अनेक खेलों की रचना की।

नीमच के अतिरिक्त छोटीसादड़ी, कारूंडी, अचारी, सबी, घसूंडी, जीरन, पड़दाँ, मनासा, रामपुरा, रतनगढ़, जाट, जावद क्षेत्र में कलंगी के फजलू उस्ताद, राजाजी भाटी, सीताराम कुमावत, रामलाल गंधर्व, नाथूलाल भाटी, मोहनलाल ग्वाला, उस्ताद केसरीमल टेलर तथा तुर्रा अखाड़ा के चतुर्भुज बंजारा, उस्ताद कैलाश सोनी, मूलचंद टेलर, घीसालाल टेलर, शंकरलाल बंजारा के नामों को विशेष रूप से पहचाना जाता है। इस अंचल में माच के मंच के और तानों की तरंगें आज भी ठस्के लेती देखी जा सकती हैं। सर्दियों में तथा मेलों के आयोजनों में माच के आयोजन जमते हैं। मेलों में तुर्रा कलंगी की भगवा हरी ध्वजाओं को दूर से ही पहचाना जा सकता है। सूबी मे उस्ताद चुन्नीलाल जाट व मोहम्मद हुसैन तथा जगन्नाथजी तथा अचारी में उस्ताद मूलंचदजी का नाम आज भी बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। चम्बल तट पर स्थित पौराणिक तीर्थ शंखोद्धार, आँतरीमाता तथा मल्हारगढ़ के संजीत के फुव्वारी माता के मेलों में माच का खूब आनंद होता था। ये मेले एक-एक महीने तक चलते थे। आँतरी के भेरूलाल गंधर्व, महंत किशोरदास और गणपतजी सेन माच अखाड़ों के खिलाड़ी, खेलों के साजिंदों और रचयिता माने जाने जाते थे। इन मेलों में प्रतिवर्ष माच का ठाठ जमता था। दोनों अखाड़े जमते हैं।

मनासा के माच का तो ठाठ ही निराला था। यहाँ पर तुर्रा अखाड़ा के श्री शंकरलाल जी मांडेश्वर, भूरालालजी उपाध्याय, एकलिंगजी गोस्वामी पड़दाँ वाले, मोहनलालजी भोला मनासा वाले, भेरूदासजी बैरागी पड़दाँ,

शंकरलालजी हेड़ा, मांगीलालजी मूंगड़, उस्ताद मुज्जगिरिजी और उस्ताद श्री लक्ष्मणगिरिजी पड़दाँ का नाम दूर दूर तक ख्यात था। इसमें लछमण गिरिजी ने व एकलिंगजी ने अनेक खेलों की रचना की। लछमणगिरि का तो अपना स्वतंत्र अखाड़ा था। वे पूरे पठार पर व उधर निम्बाहेड़ा और कनेरा तक अपने खेल का झंडा गाढ़ कर आए थे निम्बाहेड़ा दरबार ने उन्हें पाग पछेवड़ा प्रदान कर सम्मानित किया था। (देखे मेरी पुस्तक लोह पट्टा पड़दा) वे तुर्रा अखाड़ा के उस्ताद थे। उने नाम की छाप लगती थी।

इसी प्रकार कलंगी के श्री कचरुलालजी नाई राठौड़, उस्ताद नबी बक्श, उदेराम फणसे, कन्हैयालालजी राठौर, रतनलालजी गेहलोत, श्यामलालजी नाई का नाम अधिक ख्यात था। इनमें रतनलालजी गेहलोत जी का अभिनय करते थे। तब लोग शर्त लगाते थे कि यह तो फलाने की लाड़ी है। रतन नहीं है। जबकि होता रतन ही था।

महंत द्वारकादासजी बैरागी कलंकी के मान्य सारंगी वादक थे। आप प्रसिद्ध साहित्यकार बालकवि बैरागी के पूज्य पिताश्री थे। वे संगीत के प्रमाणित जानकर और अपने समय के प्रसिद्ध सारंगीवादक थे। उन्हें पूरी रामायण मौखिक याद थी। जिसे वे सारंगी के साथ गाते थे। बचपन में स्वयं बैरागी जी भी माच के तख्तों पर उपस्थिति देते रहे हैं।

तुर्रा के साजिंदों के रामनाथजी नाई और मथुरालालजी दमामी गंधर्व विशेष मान्य थे। इनके अलावा रामसिंहजी उस्ताद और रतन पेन्टर भी तुर्रा के साजिंदे थे। ढोलक के लिए नानूरामजी गंधर्व और मोड़ी रामदास बैरागी का नाम विशेष उल्लेखनीय है रुक्मण मंगल, भक्त ध्रुव, राजा मोरध्वज, राजा हरिश्चन्द्र तारामति और नल दमयंती इस अखाड़े के विशेष खेल थे। कलगी के अनेक खेलों में राजा रसालू का खेल बहुत प्रसिद्ध था।

मन्दसौर के इलाजी चौक में माच के अखाड़े जमते थे। नगरी और लसुड़िया इला के माच अखाड़े तो पूरे क्षेत्र में पहचाने और 'नोते' जाते थे। सीतामऊ, गरोठ, शामगढ़ भानपुरा कंवला श्री हरिदासजी, मूलंचदजी पंडा, बद्रीलालजी पंडा, कन्हैयादासजी, कालूदासजी, पूरन कोरिए (नर्तक वादक) श्री कालूराम गोदारा और पूरा वह इलाका माच खेलों का क्षेत्र रहा है। स्थानीय और अतिथि माच अखाड़ों के खेल यहाँ जमते रहे।

इसी प्रकार यदि हम कनेरा से एक व्यास चक्र खेंचना शुरु करें तो पूरा अरावली पटार मुकंदरा क्षेत्र, विंध्याचल को छूती हुई हमारी वलय रेखा गंगधार, सोंधवाडी क्षेत्र गरोठ भानपुरा, शामगढ़ सीतामऊ होती हुई मन्दसौर, मल्हारगढ़ से घूमकर नीमच जावद को अपने घेरे में लेकर मनासा के ऊपरी कंजार्डा, डीकेन, चौकड़ी को जोड़कर एक शानदार विशाल वलय बनाती है।

इतने अधिक माच के अखाड़े किसी भी अंचल में मिलना संभव नहीं है जितने दशपुर जनपद में रहे हैं अथवा आज भी किसी न किसी रूप में उनका अस्तित्व है। इस अंचल के लिए एक दोहा बहुत प्रसिद्ध हैं-

'गाँव-गाँव माच, ढाणी-ढाणी भुवाई।
खेड़े-खेड़े रामलीला, बाना ने धूम मचाई ।।'

जब लोकरंजन का कोई भी साधन और माध्यम नहीं था तब माच, भुवाई और रामलीला ही ऐसे लोक नाट्य थे जो थके हारे श्रम साधक किसान को मनोरंजन प्रदान कर तरो ताजा रखते थे। आज भले ही न माच के वैसे ठाठ बाट हैं न माचियों के। भुवाई के कलाकार अपने जजमानों की आवभगत की कंजूसी की मार खाकर सहम गए हैं और रामलीलाएं तो रामानंद सागर की रामायण की भेंट चढ़ गई हैं। लेकिन इनका अस्तित्व नहीं मिटा वह आज भी जीवित है।

दशपुर अंचल जिसे हम मेवाड़ के कनेरा और झालावाड़ के गंगधार तक तथा प्रतापगढ़ के छोटीसादड़ी तक विस्तारित मानते हैं। माच के अखाड़ा का खूब ठाठ था। इस अंचल के लोक नाट्यों में रामलीला, भुवाई और माच के खेलों का जैसा ठाठ रहा वैसा किसी भी अंचल में नहीं रहा। ये तीनों ही लोक नाट्य परंपराएँ अपना-अपना पृथक अस्तित्व बनाए हुए समानातर चलती रहीं। तीनों की अपनी-अपनी नाट्य शैलियाँ हैं। तीनों को इस अंचल की धार्मिक निष्ठा से भी जोड़ा गया। आज भी इनकी परंपरा घटी अवश्य है। खुटी नहीं है।

माच के पात्र तो अपने अभिनय के प्रति इतने समर्पित होते हैं कि, भले ही सब छूट जाए। माच का खेल नहीं छूटना चाहिए। ऐसे कई उदाहरण हैं कि, घर में मौत हो गई फिर भी पात्र ने उसे टालकर माच का अपना अभिनय किया। एक उदाहरण ही पर्याप्त है। एक बार एक प्रमुख माचिये की पत्नी की मृत्यु हो गई। उसी रात को माच का खेल होना था। मृत्यु संदर्भ को अघोषित कर दिया गया। रात को सहज भाव से खेल हुआ। अगले दिन सबने मिलकर दाह संस्कार में भाग लिया। ऐसे तो कई प्रसंग हैं। बात करें माचियों द्वारा अपने अभिनीत पात्र को जीने की तो एक ही रोमांचक प्रसंग पर्याप्त होगा। जब अमरसिंह बने पात्र ने तेश में आकर सचमुच में सलावत खाँ बने पात्र की गर्दन पर प्रहार करके उसकी गर्दन पर घात प्रहर कर दिया। अमरसिंह बना पात्र वास्तविक जीवन में सलावत खाँ बने पात्र का पिता ही था। तबसे नकली शस्त्र का चलन चलाया गया।

ये हैं दशपुर अंचल के माच के ठाठ ठस्के और ठहराव। अवंतिका माच परंपरा में और दशपुर माच परंपरा में एक अंतर यह भी कि दशपुर जनपद के माच खेल के प्रारंभ में गणपति मनाए जाते हैं-

'मनाऊँ गजानंद गणेश।
लाज राखजो, ब्रह्म, विष्णु महेश ।।' तथा
'पेलाँ तो मनावाँ जी गवरी का नंदगणेस।
भूल चूक का लज्जा राखे, कसर न आवे लेस ।।'

जबकि अवंतिका माच परम्परा में भैरव की प्रथम पूजा की जाती है। इसका कारण संभवतः अवंतिका के काल भैरव का प्रभाव रहा होगा। भाषा का अंतर तो स्वाभाविक है। माच में मालवी और खड़ी बोली का मिश्रण भी माच की अपनी पहचान है। लोक नाट्य परम्परा का लोकप्रिय 'माच' और उसकी मचक भरी मस्ती आज भी लोकरंजक नाट्य शैलियों में अपनी पृथक पहचान बनाए हुए हैं।

मालवा के दशपर जनपद (नीमच मन्दसौर अंचल) के पश्चात माच परम्परा मालवा के उज्जैन अंचल में पहुँची। संभवतः 19 वीं शताब्दी में श्री गोपाल गुरु इसे उज्जैन ले गए थे वे चित्तौड़ अंचल के रहने वाले थे। उन्होंने उज्जैन के भागतीपुरा में निवास किया और माच खेलों का प्रदर्शन प्रारंभ किया।

गोपालगुरु के बाद जयसिंहपुरा के गुरु बालमुकुंदजी ने माच को मालवा के इस क्षेत्र में गतिमान किया। संभवतः 1805-1875 ई. के मध्य गोपाल गुरु ने माच को मध्य मालवा में स्थापित करने के प्रयत्न किए। उनके लिए यह संघर्ष का काम था। उनके विशेष सहयोगी सुखीराम और सेठ मुकुन्दरामजी इसमें विशेष सहयोगी रहे।

इसी परम्परा में जगन्नाथ पटवारी, रामचन्द्र गुरु, फुंदीलाल बाबू और पं. गणेश शास्त्री, ठाकुरलाल वैद्य, किशनलाल दुबे, अम्बाराम उस्ताद, भागीरथ, मोतीराम मालवी, शांतिराम, मुन्नालाल जैसे समर्पित कलाकारों ने माच को स्थापित करने में प्राणपण से योगदान दिया। इनके ही समकालीन कलाकारों में ऊँकारजी, शेरमार खाँ की भूमिका में गोविंदा गुरु और कूकाजी स्त्री पात्रों में एवं लच्छमन और टोडूलाल पुरुष चरित्रों में विशेष प्रसिद्ध हुए।

बालमुकुंद गुरु की परम्परा को ऊंकार गुरु, सोमेश्वर गुरु, गणेश गुरु, शंकलाल पटेल और बद्रीलाल पटेल चौधरी ने आगे बढ़ाया। इनके साथियों में प्रमुख रूप से मांगीलाल गुनसेवाले, हेमराज मालीपुरा वाले, बद्रीलाल माली, कन्हैयालाल ठाकुर, हेमराज रामी, छोटा बद्री चौधरी, प्रेममाली, रुगनाथ चौधरी माने जाते हैं। बाद में उर्दूपूरा में भागीरथ पटेल ने भी मांच मंडली स्थापना की। इनमें पूनमचंद सांकला, पोखरजी उस्ताद और आनंद बाबू सांकला का सहयोग उल्लेखनीय रहा। इस मंडली ने माच का खूब विस्तार किया और कई गाँवों और शहरों में पूर्ण दक्षता केसाथ माच के खेल प्रदर्शित किए।

बेगमपुरा की मंडली गुरु रामकिशनजी के निर्देशन में तैयार हुई, इन्होंने मधु मालती, पुष्पसेन, गोपीचंद, विक्रमादित्य, भक्त पूरनमल, सिंहासन बत्तीसी आदि अनेक खेल प्रदर्शित किए। फिर तो माच की परंपरा लोक व्यापी होती चली गई। नयापुरा में गुरु भैरवलाल, बिलौटीपुरा में गुरु राधाकिशनजी, इन्हीं की परम्परा में नाथूसिंह उस्ताद, पूनमचंद उताद और बुद्धेश्वर सुनार ने माच मंडली को आगे बढ़ाया।

इसी मंडली के श्री सिद्धेश्वर सेन ने अपनी पृथक माच मंडली बनाई। 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्री सिद्धेश्वर सेन ने माच के सृजन एवं प्रदर्शन में खूब ख्याति अर्जित की।

दौलतगंज की माच परम्परा के प्रणेता उस्ताद कालूरामजी अनेक (लगभग बीस) खेलों की रचना की। इसी मंच से पहली बार महिला कलाकार लहर गौरजी महाराज गुसाई तथा गोमती बाई बेरागन ने माच के मंच पर प्रवेश किया। इससे पूर्व स्त्री पात्र का अभिनय पुरुष कलाकार ही करते चले आ रहे थे। इसका श्रेय श्री कालूरामजी को जाता है। कालूरामजी के सुपुत्र सालिगराम मास्टर और पात्र पं. ओमप्रकाश शर्मा ने इस परम्परा को गतिमान एवं विकासमान किया।

इस मंच द्वारा राजा विक्रमादित्य, राजा भरथरी, गोपीचंद और जीव खोवई ग्यो (हरिशंकर परसाई की कहानी पर आधारित) जैसे अनेक समकालीन खेलों के प्रणयन के साथ ही समकालीन रंग मंच में माच शैली के अभिनव प्रयोग तथा रंग संगीत की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया।

माच के क्षेत्र में सिद्धेश्वर सेन का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। गुरु राधाकिशन जी की परंपरा को आगे बढ़ाकर इन्होंने मालवा के लोक नाट्य माच को जितनी ऊँचाईयाँ प्रदान किए इसके लिए रंगकर्मी उनके अत्यंत आभारी रहेंगे। मालवा की इस नाट्य परम्परा को वर्तमान में अभिषिक्त कर अतीत और भविष्य का सेतुबंध बना दिया है। उन्होंने 19 वर्ष की आयु में राजा रसालू के खेल सृजन से लेकर अनेक खेलों की रचना की है इनकी संख्या 25 मानी जाती है।

अब्दालपुरा फकीरचंद गुरु, मंगरोला के चुन्नीलाल गुरु एवं साथियों का योगदान भी माच परंपरा में महत्वपूर्ण माना जाता है।

उज्जैन के माच नाट्य परंपरा अत्यंत समृद्ध है। मालवा के लोक नाट्य माच को राष्ट्रीय ख्याति प्रदान करने में इस अंचल के माच उस्तादों का योगदान सराहनीय है। मेवाड़ी सीमा दशपुर जनपद से लेकर सम्पूर्ण मालवा में मालवा की यह नाट्य परंपरा आज राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

माच के ये खेल जहाँ लोकरंजन के लिए सहज उपलब्ध अवसर जुटाते थे। वहीं लोक संस्कृति एवं लोक कलाओं के संरक्षण तथा विकास में भी माच के कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। मानव मूल्यों का जितना संरक्षण एवं पोषण माच परिवारों ने किया उतना किसी भी रंगमंच द्वारा नहीं किया गया। धार्मिक सद्भाव, भाईचारा, वर्ग सामंजस्य एवं जातीय सद्भाव का तो माच प्रेरक उदाहरण माने जा सकते हैं। लोक नायकों तथा पौराणिक प्रसंगों के चरितों को जीवित करने तथा उनके द्वारा समाज में प्रेरणादायक संदेश को पहुँचाकर माच परंपरा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर लोक संस्कृति को जीवित बनाए रखा है। अनेक राग-रागिनों को प्रतियोगी भाव से जाँच परख कर माच परंपरा ने संगीत के क्षेत्र में अत्यंत सुदृढ़ प्रस्तुतियाँ दी व खूब वाह वाही लूटी है।

माच के मचकोलों और रागनियों के रंगों से सुभासित और सुवासित, माच दशपुर अंचल की लोक नाट्य परंपराओं में अपना विशेष स्थान रखता है। ऐसा तेजस्वी एवं ऊर्जावान 'माच' की नाट्य परंपरा भले ही थोड़े नए परिवेश परिधान एवं प्रस्तुतीकरण के साथ ही सही किन्तु आज भी जीवित व जीवंत है। हम यदि सकारात्मक प्रयत्न करें तो इसे और अधिक लोकरंजन और लोक कल्याणकारी रूप में पुनर्जीवित कर सकते है।

नाट्य माच मंच व्यवस्था -

माच के रंग मंच पर भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएं दी गई हैं। कहीं-कहीं तो इस मंच की ऊँचाई इतनी अधिक बताई गई है कि आश्चर्य होने लगता है। डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा अपने लेख 'लोक नाट्य माचः प्रदर्शन-शैली और शिल्प'

(मालवा का लोक-नाट्य माच और अन्य विधाएँ पृ. 87) में बताते हैं कि एक समय था जब इतना ऊँचा मंच बनाया जाता था कि, नीचे से बैलगाड़ी निकल जाती थी। तुर्रा-कलंगी का मंच 20-20 फीट ऊंचे होते थे। बीस फीट ऊँचे मंच का अर्थ हुआ दो मंजिला इमारत। बैलागाड़ी निकलने के लिए छह फुट ऊंचा मंच भी पर्याप्त होता है। मनासा में भी ऊँचे मंच बनते मैंने देखे हैं।

आदर्श मंच की ऊंचाई पांच-छह फीट होती है। चौड़ाई से लंबाई डेढ़ गुनी होनी चाहिए। एक किनारे पर दल का निशान (ध्वजा) पूर्वकाल में तीन किनारों पर मशालें तथा वर्तमान में विद्युत प्रकाश। मंच पर एक ओर उस्ताद का आसन। मंच के आगे अथवा बाई और एक लघुमंच वादकों के लिए। वादन के साधन सारंगी, शहनाई, ढोलक, नग्गाड़े, हारमोनियम, मजीरे अब तबला भी टेरिये जो टेर झेलते हैं।

दर्शकों के लिए तीन ओर दीर्घा, वयोवृद्ध दर्शकों की बैठक व्यवस्था पृथक होती है। यह मंच के दायी और रखी जाती है। महिलाओं को माच में बैठक व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती।

मंच की सुरक्षा और दर्शकों की सुरक्षा की भी पक्की व्यवस्था की जाती थी। मंच पर बल्लियों के सहारे टेंट भी लगाने की व्यवस्था अब की जाती है। मंच के पार्श्व में कलाकारों के बनाव श्रृंगार की व्यवस्था की जाती है। मंच के सामने दोनों और दो पाट तथा सामने चार खम्बे गाढ़कर मंच की चौकस व्यवस्था की जाती है। चारों खम्बों के निकट चार-चार युवक (कुल सोलह युवक) एक जमादार एक थानेदार, एक बादशाह बैठता है। पृष्ठ के 'बारह घाट' के पाट के पास विश्वासपात्र कार्यकर्ता और अभिनेता रहते हैं। निकट के टेक पात्र पर 'टेरिए' अथवा बोल झेलिए बैठते हैं। माच का चतुर्दिक खुला मंच पूरी तरह अनुशासन एवं सुरक्षा की चौकसी में रहता है।

■■■

MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY

कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करें।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं .... कला समय पत्रिका का .... एक वर्ष : 600/- रूपये, दो वर्ष : 1200/- रूपये, चार वर्ष : 2300/- रूपये, आजीवन : 10,000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 300/- प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये .... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम : ....

पता : ....

....

पिन : .... मो.: ....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशिः

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त)

वार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत) साधारण डाक
द्वैवार्षिक	:	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत) साधारण डाक
चार वर्ष	:	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत) साधारण डाक
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत) साधारण डाक

(10 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेंजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
- नमूना प्रति ₹100/- , एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/-

-प्रबंध संपादक

आलेख

भील आदिवासी लोकनाट्य

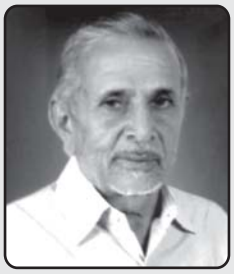
डॉ. भगवानदास पटेल

भील नाट्य का उद्भव स्थान नोरतानृत्य:

भील समाज के नाटक का उद्भव नृत्य से हुआ है। उसका प्रमाण उनका नोरता का धार्मिक उत्सव देता है। आश्विन सुदी प्रतिपदा (पड़वा) को खेला जाने वाला नोरता नौ लाख देवियों की पुराकथा का नृत्य-नाट्य रूपांतर है। पेट भरना, अमर होना और आनंद प्राप्त करना मानव की महत्त्वपूर्ण एवं मूलभूत वृत्तियाँ हैं। भीलों की पूर्वकालीन प्राचीन कथा के अनुसार भोला नामक भील ने पेट की भूख शांत करने के लिए बोए हुए अनाज को कोई खा न जाए इसके लिए पशु-पक्षियों को भगाने हेतु ढोल की रचना की। उसे बजाने से पशु-पक्षी तो भाग गए। साथ ही, ढोल बजाने से पैदा हुए नाद-ताल से उसे भी आनंद आया। अपने कार्यों की निशानी युगों-युगों तक सुरक्षित रहे, इस आकांक्षा से पाताललोकवासी वासुकी नाग के फन से नौ लाख देवियाँ बरगद और बाँस के बीज अनेक साहसिक कार्यों करके ले आई। बीजों को पृथ्वी पर बोया गया। बरगद उगकर बड़ा हुआ। उसकी छाया में चार देवियों ने नृत्य करने हेतु चार राइयों का रूप धारण किया। गुणका (गणपति) के नेतृत्व में नोरता की रचना की। नृत्य में थिरकन पैदा करने हेतु भोला भील ने ढोल बजाना प्रारम्भ किया। इस तरह चार राइयाँ (देवियाँ) और पाँचवाँ बूटा (गणपति) अपने कार्यों को मूर्तरूप देने हेतु ढोल के ताल और बाँसुरी के स्वर के साथ नौ दिन तक पृथ्वी पर नाचे और आनंद प्राप्त किया। यह नृत्य-स्वाँग (नृत्यवेश) आगे चलकर नोरता के रूप में प्रसिद्ध हुआ। भील समाज इस उत्सव को 'नोरता नाचना' या 'नोरता खेलना' भी कहता है। 'नोरता नाचना' नृत्य का तथा 'खेलना' नाट्य का भाव दर्शाता है।

नोरता का धार्मिक संदर्भ :

नोरता भील समाज के विशेष वर्ग- भोपा (भूवा ओझा) का धार्मिक अनुष्ठानगत नृत्यस्वाँग (नृत्यवेश) ही है। इस स्वांग में अधिकांश देवियों और गणपति का रूप धारण करने वाले भोपा होते हैं। इस नोरता में सहभागी होने के लिए स्त्रियों को निषेध है। देवियों का स्वाँग भी पुरुष ही धारण करते हैं। नोरता में सहभागी भोपा को भी कुछ नियमों का पालन करना होता है। वे भादों मास की अमावस्या की रात से घर छोड़ने के बाद नौ दिन तक गृहप्रवेश नहीं कर सकते। उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का कठोरता से पालन करना होता है।

सूड़ा (पाँच-सात गाँवों का समूह) के अग्रणी लोगों की सहमति से गाँव के लोगों और पशुओं की खुशहाली के लिए देवी के भोपा आश्विन सुदी प्रतिपदा से नोरता खेलते हैं।

नोरता लेने से पूर्व देवियों की सहमति लेनी आवश्यक होती है। अतः भादों वदी अमावस्या के दिन देवियों (अंबा, सुंड, जोगमाया, कालिका आदि देवियों) के स्थानक के पास ग्रामजन एकत्रित होते हैं। माता (देवी) का मुख्य भोपा दीप जलाकर पूजा करता है, नारियल चढ़ाकर देवी के समक्ष बैठता है। धीरे-धीरे भोपा में देवी का भाव आने लगता है। मुखिया द्वारा पूछे जाने पर झूमता हुआ भोपा देवी के स्वांग में बोलने लगता है, **"मार नोरतुं रमणं है"**। (मुझे नोरता खेलना है) **'उगमणे'** (प्रतिपदा) **नोरतुं लेझो'**। (प्रतिपदा को नोरता शुरू करो)।"

देवी की आज्ञा मिलने के बाद ग्रामजन चार राइयों (देवियों) के लिए वस्त्र एवं आभूषण खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त राइयों (देवियों) के लिए पैर में बाँधे जाने वाले पीतल के चार जोड़ी घुँघरू, नारियल, कुंकुम, अगरबत्ती, नींबू आदि तथा नोरता के लिए आवश्यक पूजा सामग्री खरीदते हैं।

नोरता के स्वाँग लेने वाले भोपा रात में देवी के स्थानक पर जाते हैं। तंबूरे पर देवियों के भजन गाते हैं। अरेला गाने वाले नौ लाख देवियों का अरेला (लोकाख्यान) गाते हैं।

सुबह भोर में जलाशय में स्नान करके घी का दीपक जलाकर नारियल चढ़ाकर नोरता सजाया जाता है। चार पुरुष स्त्री के वस्त्राभूषण धारण करते हैं। पैरों में घुँघरू बाँधकर और सिर पर मयूर पंख का मुकुट धारण करके चार देवियों का रूप धारण करते हैं। एक भोपा मुख पर मुखौटा पहनकर बूटिया (बूढ़ा) बनता है। उसे गुणका (गणपति) भी कहा जाता है। वह नोरता का अगुआ होता है। जब तक भोपालोग इन देवी-देवता का रूप (स्वाँग) धारण किए रहते हैं तब तक स्वयं को संबंधित देवता-देवियाँ ही समझते हैं। पूरे नौ दिन तक उपवास करके भोपा नाचते हैं।

लम्बे बाँस के एक छोर पर त्रिशूल स्थापित करके सफेद धोती बाँधकर ध्वजा (नेजा) का दंड बनाते हैं। एक भोपा इस दंड को धारण करके नोरता के साथ चलता है।

बाँस की टोकरी में एक किलो मकई के दानों के बीच देवी की चाँदी की मूर्ति स्थापित की जाती है। उनके सामने घी का दीपक जलाकर एक भूवा टोकरी अपने सिर पर रखता है। यह टोकरी नोरता खेलते समय नीचे गिरनी नहीं चाहिए। दीपक भी नौ दिन अखंड रूप से जलता हुआ रहना चाहिए अन्यथा नोरता का धार्मिक अनुष्ठान निष्फल हो जाता है।

एक भोपा 'कास' (वनस्पति का पौधा) या 'भिंडी' (वनस्पति का पौधा) के रेशाओं से निर्मित चाबुक या सोटी हाथ में लेकर 'तार' का रूप धारण करता है।

मुख्य भोपा के कंधे पर लाल रंग की झोली होती है जिसमें नाड़ा, कुंकुम, अभिमंत्रित उड़द के दाने, नींबू, अरगबत्ती आदि तांत्रिक सामग्री होती हैं। एक हाथ में लोहे की जंजीर और दूसरे हाथ में मयूर पंखों का बनाया हुआ मूठा (जूड़ा) होता है।

नोरते में सहभागी सभी व्यक्ति मैली (अपवित्र) विद्या के जानकार भोपा होते हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ जादू-टोना-टोटका के जानकार भोपा और ग्रामजन नोरता की रक्षा करने हेतु नोरता के साथ रहते हैं।

नोरता की संपूर्ण तैयारी हो जाने के पश्चात्, नोरते के अनुष्ठान में सहभागी भोपा देवी या माता के सम्मुख जाते हैं । आरती करने के ढोल बजाकर अंबा, सुंड, कालकी, पोवण आदि देवियों का सामूहिक रूप से स्मरण करते हैं। नौ दिनों तक सब पर कृपादृष्टि रखेंगी, इस तरह की देवियों को आराधना की जाती है। इसके बाद खड़ा ढोल (नाचने के ताल का ढोल) बजाया जाता है। ढोल के ताल पर सभी भोपा माता के स्थानक के पास नृत्य करते हुए नोरता खेलते हैं। तत्पश्चात् गाँव में जाकर प्रत्येक घर में नोरता खेलते हैं जिससे पूरे गाँव से आधि-व्याधि-उपाधि और लड़ाई-झगड़े दूर हो जाएँगे, ऐसा मानते हैं। गाँव में नोरता खेलने के बाद दूसरे दिन से सूडा के गाँवों में नोरता खेलने जाते हैं।

खड़ा ढोल या मादळी ढोल के बजने के साथ राइयों (देवियाँ) और भोपा अर्धगोलाकार नृत्य करते हैं। गुणका (गणपति) किसी एक के घर में घुसकर किसी वस्तु को खोजते हुए घर में मोभ (बड़ेर) और डंडे आदि देखने का अभिनय करता है। घर से बाहर आकर सकारात्मक रूप में सिर हिलाता है जैसे उसे खोई हुई वस्तु मिल गई हो। गुणका (गणपति) के अभिनय हेतु भील समाज में इस तरह की प्राचीन कथा प्रचलित है :

पाताललोकवासी वासुकी नाग के फन से देवियों द्वारा लाए गए बीज से सिंदूरवर्णी बरगद का पेड़ बड़ा हो रहा था । उसकी छाया में कुछ ऋषि धूनी लगाकर तपस्या करने लगे। बड़ को ऋषि अपवित्र करेंगे तो नोरता का अनुष्ठान निष्फल हो जायेगा। अतः नोरता खेलने का आनंद खत्म हो जाएगा। इस संशय से नौ लाख देवियाँ मधुमक्खी बनकर ऋषि और शिष्यों को काटने लगीं। परिणामस्वरूप क्रोधित ऋषि बरगद को काटकर उसकी डालियों को भी अपने साथ ले गए जिससे देवियों ने बरगद की खोज करने हेतु चार राइयों (देवियों) और बूटा (गणपति) का रूप धरकर नोरता खेला। नोरता का अगुआ बूटा घर-घर जाकर बरगद की डालियों की खोज करने लगा। इस प्राचीन कथा का प्रमाण देता हुआ बूटा वर्तमान समय में भी प्रत्येक घर के डंडे और बल्लियों की जाँच करता है तथा नोरता का सिंदूरवर्णी बरगद उसे मिला है, उसकी स्वीकृति के लिए अपना सिर हिलाता है तथा नृत्य करती हुई राइयों (देवियों) की विपरीत दिशा में नृत्य करके दर्शकों को हँसाता है। तार (चाबुक) धारण किया हुआ भोपा राइयों (देवियों) और दूसरे लोगों को तार (चाबुक) के फटके मारता है तो भोपा की नाचने के साथ घूमने की गति तीव्र होती है। मुख्य भोपा घूमते हुए अपनी पीठ पर लोहे की जंजीर से प्रहार करता है।

अपनी झोली से उड़द के दाने लेकर वह लोगों पर फैंकता है जिससे उन्हें किसी की मारी हुई घात-चोट या मैली विद्या का असर नहीं होता। तार के फटके का असर बूटा (गणपति) पर विशेष रूप से होता है। वह उत्साहित होता है और जोरदार आवेग के साथ ध्वजा के डंडे के ऊपर चढ़ जाता है। तार के फटके के प्रभाव तले आए हुए भोपा एक-दूसरे की बाँहों के बीच में हाथ डालकर गोलाकार श्रृंखला बनाते हैं तथा गोलाकार रूप में आवेग के साथ तेजी से नाचते हैं।

गाँव से बाहर नोरता खेलने या नाचने के अवसर पर कई बार मैली विद्या के जानकार भोपा मंत्र प्रयोग द्वारा नोरता के अनुष्ठान को निष्फल बनाने के लिए राइयों और गुणका को मूर्छित करते हैं। परंतु उनका सिर पृथ्वी को स्पर्श करे, उससे पहले ही पकड़ लिया जाता है। ऐसी मान्यता प्रवर्तित है कि यदि उनका सिर पृथ्वी से छू जाए तो राइयों या गुणका की तत्काल मृत्यु हो जाती है। गुणका को नोरता का अगुआ माना जाता है। वह नीचे गिर जाए तो नोरता का धार्मिक अनुष्ठान निष्फल हो जाता है।

व्यक्ति को मैली विद्या का असर होने लगे तो आरतिया ढोल जोर-जोर से बजाते हैं। सभी भोपा झूमने लगते हैं। मुख्य भोपा अभिमंत्रित उड़द के दानों को मैली विद्या के प्रभाव तले आए व्यक्ति पर डालकर मोरपंख के मूठा (बुहारी) से झारा उतारकर उसे असरमुक्त करता है। इस समय नींबू काटकर सहभागी लोगों को मंत्र से कवच मंडित करता है।

प्रत्येक घर का मालिक नोरता का स्वागत करके टोकरी (पलना) में देवी के समक्ष प्रज्जवलित दीपक में घी डालकर दंड पर ध्वजा के रूप में सफेद धोती बाँधता है और एक किलो अनाज देता है।

जिस गाँव में रात हो जाती है वहाँ माता के स्थानक पर भोपा मोरिया (मुकुट) छोड़ते हैं। उसके बाद ही वे देवी-देवता के स्वांग से मुक्त होकर सामान्य मनुष्य बनते हैं। गाँववासी लोग भोपाओं को प्रेमपूर्वक भोजन कराते हैं तथा रात में देवी के स्थानक पर समूह में देवियों के अरेला (आख्यान) गाते हैं।

नौ दिन के पश्चात् देवी के स्थानक पर मोरिया छोड़ते हैं। स्त्रियों के आभूषण राइयों (देवियों) का रूप धारण करने वालों को दे दिए जाते हैं। इन आभूषणों को कुमारी कन्याएँ पहनती हैं। चढ़ाई गई धोतियों को नोरता के सहभागी व्यक्ति आपस में बाँट लेते हैं। इसके पश्चात् सहभागी व्यक्ति सामान्य मानव बनकर अपने घर जाते हैं।

भोजन की व्यवस्था हो जाने के बाद गाँव के अगुआ लोग तय करते हैं कि किस दिन दशहरा मनाना है। उत्सव में जिसने नोरता खेला हो, वह व्यक्ति गाँव के मेहमानों को आमंत्रित करता है। सुबह भोर में सभी लोग देवी के स्थानक के पास एकत्रित होते हैं। नोरता खेलते समय एकत्रित हुए घी की लपसी बनाकर प्रसाद के रूप में बाँटी जाती है। दोपहर को बलि चढ़ाने के बाद रोटी के साथ समूह भोजन लेते हैं।

इसके पश्चात् आश्विन सुदी प्रतिपदा को विभिन्न अनाजों के बोए जाने पर उगाए गए जवारा और उसके पास रखे गए जल से परिपूरित मिट्टी के कोरे घड़े के आधार पर वर्ष में होने वाली बरसात का भविष्य फल देखते हैं। घड़ा पूरा भरा हो तो चार महीने तक वर्षा होगी, ऐसा माना जाता है। जिस अनाज के अधिक पैदा होने की संभावना हो, उसके जवारा हरे होते है तथा जो अनाज कम पैदा होने वाला हो उसके जवारा कम हरे एवं झुलसे हुए से होते हैं। शाम को मानव समुदाय बिखर जाता है तथा वर्षा एवं कृषि के भविष्य फल की बात पूरे पट्टे (अनेक सूडा के अनेक गाँवों में) फैल जाती है।

इस लेखक ने भील समाज के उत्सव में सहभागी बनकर नोरता के धार्मिक संदर्भ की सामग्री का विश्लेषण किया है, जिससे कुछ भील लोकनाट्य के सिद्धांत प्राप्त हुए हैं:

(1) नोरता दर्शकों के समक्ष प्रदर्शित करने का नृत्य-नाट्य रूप ही नहीं है अपितु गाँव के लोगों और पालतू पशुओं से आधि-व्याधि और उपाधि जैसे रोगों को दूर करने का धार्मिक अनुष्ठान भी है। अतः यह ग्रामीण लोकनाट्य और प्रशिष्ट नाटक से भिन्न होता है।

(2) उसका स्वरूप समाज में प्रचलित नौ लाख देवियों की पुराकथा और भूत-प्रेत टोना टोटका जैसी मैली विद्या में विश्वास और मंत्र उच्चाटन मारण विद्या आदि से आविर्भूत हुआ है।

(3) नोरता का वहन करने वाले या उसका रूप लेने वाले समाज का एक विशेष वर्ग भोपा (भूवा) होते हैं। वे शुद्ध और मैली विद्या का ज्ञाता होते हैं। जिसके बारे में समाज को ज्ञात नहीं होता उस तरह के गूढ़ ज्ञान या विद्या वे गुरु परंपरा से प्राप्त कर लेते हैं तथा उसका उपयोग समाज के विविध प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों को पूर्ण करने में करते हैं। वे आधिदैविक शक्तियों का आह्वान करते हैं तथा उनके माध्यम से रोग, अकाल, अतिवृष्टि, मंत्रों तथा विविध अभिचारों द्वारा उनका निवारण करते हैं। आवेश अथवा भाव की अवधि में भोपा स्वयं देवता अथवा अलौकिक शक्ति बन जाते हैं।

(4) नोरता में भोपा जिन देवी-देवताओं का रूप धारण करके अभिनय करते हैं तब लोग उन्हें संबंधित देवी-देवता मान लेते हैं। वे जो साज-सज्जा या वस्त्र, आभूषण, मुखौटा धारण करते हैं वे उनके शरीर के सौंदर्य के लिए नहीं होते बल्कि वे धार्मिक अनुष्ठान की सामग्री ही होते हैं। नोरता के भोपा जब इस साज-सज्जा को विधि-विधान के साथ धारण करते हैं तब वे संबंधित देवी-देवता के साथ तादात्म्य बनाते हैं तथा वे संबंधित देवी-देवता बन जाने का अनुभव करते हैं। इससे उनके बोलने मात्र से गाँव के लोगों और पालतू पशुओं के रोगों का निवारण होता है।

ऐसा उन पर धार्मिक आस्था के कारण समाज मानता है। नोरता जैसे अनुष्ठानिक नाटक भोपा वर्ग द्वारा ही अभिनीत होते हैं जिनके द्वारा किए जानेवाले गुह्य कृत्यों के लिए मंत्र और शुद्ध एवं मैली विद्या आवश्यक होती है। अतः इस तरह के आनुष्ठानिक नाट्य भोपा (भूवा) वर्ग की संपत्ति होती है। व्यक्ति के अवसान के बाद यह परिवार की संपत्ति बनती है।

(5) धार्मिक अनुष्ठान तथा आनुष्ठानिक नाट्य की एक विशेषता यह है कि भोपाओं द्वारा अभिनीत कथा या प्रसंग संबंधित समाज के दर्शक समुदाय की आस्था का विषय होता है। उसमें अभिनीत प्रसंग असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया जाता है। इन प्रदर्शनों में संभव और असंभव, संगत और असंगत की भेदरेखा नहीं रहती। साहित्यिक नाट्य की अपनी विषय वस्तु और अभिनय के संबंध में दर्शकों की आशंका रहित समर्पण की भावना नहीं होती। साहित्यिक नाटक पुराकथाकीय आस्था से भिन्न नित्य प्रति के जीवन से अधिक नजदीक होने से अनुभव के आधार पर क्रियाशील बनता है तथा यथार्थता के अधिक नजदीक रहता है। आदिवासियों के आनुष्ठानिक नाटक और प्रशिष्ट साहित्य नाटक का यह प्रमुख भेद है।

गोर (गौरी) का धार्मिक संदर्भ :

गोर (गौरी) और होली के महोत्सव भील समाज के लोकनाट्य के विकास के दूसरे महत्त्वपूर्ण सोपान हैं। इन त्यौहारों में धार्मिक स्वांग के साथ ही लोकनाट्य में सामाजिक स्वाँग और संवाद भी शामिल हुए है। इस कालखंड आखेटयुग और कृषियुग के बीच होने की संभावना है। गोर का धार्मिक संदर्भ इस प्रकार है: गोर अथवा गणगौर उत्तर गुजरात की खेड़ब्रह्मा दांता तहसील में रहने वाले भील आदिवासियों का होली के बाद आने वाला प्रमुख धार्मिक महोत्सव है। इस रसोत्सव को सूड़ा के आठ-दस गाँव साथ मिलकर मनाते हैं। गोर का उत्सव वैशाख सुदी प्रतिपदा से पूनम तक चलता है।

इस धार्मिक पर्व का संबंध सृष्टि के आरंभ में जल पर विराजमान 'जळुकार भगवान' के मुख से उद्भवित उमिया और नाभि में से उद्भवित शिव के साथ जोड़ा जाता है। उमिया को भील समाज गोर भी कहता है। 'गौरी' (पार्वती) शब्द का परिवर्तित रूप ही गोर है।

ग्रीष्म ऋतु में इन गौर और उनके पति शिव की स्मृति में भील आदिवासी विशुद्ध धार्मिक अनुष्ठान के साथ गौरी की पूजा करते हैं तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के धार्मिक-सामाजिक स्वाँग खेलते हैं। इस समय पूरे पंद्रह दिन तक समग्र पर्वतीय प्रदेश गीत, संगीत, नृत्य और नाट्यमय बन जाता है। इस अवसर पर तथा होली के उत्सव के समय खेले जाते स्वाँग (नाट्य) एक समान होते हैं। गोर के उत्सव को समयखंडानुसार तीन भागों में बाँटा जा सकता है:

वैशाख सुदी प्रतिप्रदा की शाम को परंपरागत पूजारी एवं आठ-दस गाँव के मुखिया लोग होली के स्थानक पर होली के मध्य भाग में मूसल रोपकर गोर को जगाने की धार्मिक विधि करते हैं। स्त्रियाँ गोर को जगाने के गीत गाती हैं। मूसल को शिवलिंग का प्रतीक माना जाता है। पूरे पंद्रह दिन प्रातःकाल समाज द्वारा नियुक्त पाँच कन्या और पाँच कुमार वन्य फूलों से मूसलरूपी शिवलिंग की पूजा करते हैं।

रात में गीत, संगीत और नृत्य के साथ स्वाँग खेलते हैं। सुदी चौदस के दिन गोर (गौर) का पुजारी एवं ग्राम के अगुआ लोग 'गोर' एवं 'ईसबोरजी' (शिव) की रचना करते हैं। धतूरा-आक जैसे वन्य पुष्पों और आभूषणों से उन्हें

सजाते हैं और गेहूं के आटे और महुआ के पानी से बनाई गई 'भरोरां' नामक मिठाई और नारियल के साथ उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। इस समय लोकसमुदाय गौरी एवं शिव की महिमा के गीत गाता है तथा नृत्य करता है।

पूर्णिमा के दिन गोर का मेला लगता है। लोकसमूह एकत्रित होता है। गोर नचाने के गीत गाते हैं और नृत्य करते हैं । सबसे आगे गुणका (गणपति) होता है जो अपने मुख पर विविध रंगी मुखौटा धारण करके विशिष्ट रूप से नाचता है। पूरे दिन लोकवाद्यों की संगति में गीत और नृत्य के साथ लोक-समुदाय रस निमग्न रहता है। शाम को जलाशय में गोर का विसर्जन करने के साथ पंद्रह दिनों तक चले इस रसोत्सव का समापन होता है। (गोर विषयक अधिक विवरण देखें प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की पुस्तक 'डुंगरी भील आदिवासी', पृ. 122 से 129, प्रकाशन वर्ष 1992)

स्वाँग-नाट्य के प्रकार :

गोर, होली और गवरी जैसे महापर्वों के समय खेलने या नाचने वाले स्वाँग नाट्यों को तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है: (1) धार्मिक स्वाँग नाट्य, (2) सामाजिक स्वाँग-नाट्य, और (3) वन्य-सृष्टि के अंतर्गत स्वाँग-नाट्य।

(1) धार्मिक स्वाँग-नाट्य :

धार्मिक स्वाँग नाट्य में डाकिन, ठाकोर का घोड़ा, ऋषि, कालकी, कान्हा गोपियों आदि का समावेश होता है। ये स्वाँग-नाट्य भील समाज के देवी-देवताओं के प्रति धार्मिक आस्था से आविर्भूत हुए है। इस प्रकार के स्वाँग को आनुष्ठानिक स्वाँग-नाट्य भी कहा जा सकता है जिसके उद्भव और स्वरूप विषयक चर्चा इससे पूर्व की जा चुकी है।

(2) सामाजिक स्वाँग-नाट्य :

सामाजिक स्वाँग-नाट्यों मे झरखु (स्त्री) और वहोरा (मुसलमान की एक जाल), सिपाही, काथोड़ी आदिवासी, वर-वधू, किसान, अहीर और बकरे आदि स्वांग नाट्यों की गणना की जा सकती है।

धार्मिक स्वाँग मूक अभिनय द्वारा अपना स्वरूप धारण करते हैं। चरित्र के साथ तादात्म्यीकरण की पराकाष्ठा के समय संबंधित देवी-देवता के भाव की झलक अभिनेता में दिखाई देती है जबकि सामाजिक स्वाँग नाट्य के नित्य प्रति के व्यावहारिक जीवन के साथ जुड़े होने से इस तरह के आधिदैविक भाव का प्रभाव अभिनेता पर नहीं पड़ता है। सामाजिक स्वाँग नाट्यों की दूसरी विशेषता यह है कि पात्रों को एक दूसरे के साथ सामाजिक व्यवहार करना होता है जिससे इस तरह के नाट्यों में संवाद जुड़े हुए होते हैं। इस तरह के संवाद अधिकांशतः रागात्मक गद्य में होते हैं।

धार्मिक स्वाँग अधिकांशतः ढोल की ताल और बाँसुरी या शहनाई के स्वर के साथ खेले या नाचे जाते हैं। अतः इसमें वाद्य संगीत अनिवार्य होता है, जबकि सामाजिक स्वाँग-नाट्य संवाद प्रधान होते हैं, जिसके कारण वाद्य संगीत प्रदर्शकों दर्शकों श्रोताओं के लिए बाधक बनता है। धार्मिक स्वाँग-नाट्य अनुष्ठान से जुड़े हुए होने के कारण गंभीरतापूर्वक इन्हें खेला जाता है, जबकि सामाजिक स्वाँग-नाट्य मुख्यतः मनोरंजन के लिए होते हैं। अतः बहोरा, सिपाही जैसे अन्य समाज के लोगों के आर्थिक और शारीरिक शोषण का प्रतिरोध स्त्री 'झरखें' हास्य-व्यंग्य द्वारा करती है।

काथोडी आदिवासी' और 'वर-वधू' जैसे सामाजिक पात्रों द्वारा यौन भावनाएँ हास्य के साथ मुक्त रूप में अभिनीत की जाती हैं। पात्रों की भूमिका अदा करते समय किसी भी प्रकार का सामाजिक दंभ या हया न रखने के कारण कामजन्य चेष्टाओं का जितना ज्ञान होता है उसे वाचिक-कायिक अभिनय द्वारा अपने सगे-संबंधियों के समक्ष सहज रूप से प्रदर्शित किया जाता है।

(3) वन्य सृष्टि के अंतर्गत स्वाँग-नाट्य :

बाघ, हाथी, रीछ (भालू), मगर जैसे स्वाँगों में भील आदिवासियों के प्रागैतिहासिकयुग से प्रवर्तित वन्य प्राणियों के साथ के संबंध और अनुभवों को नाट्य रूप में अभिनीत किया जाता है।

स्वाँग-नाट्य प्रदर्शक :

होली, गोर और गवरी के पर्व के समय खेले जाने वाले सभी स्वाँगों के धारक पुरुष ही होते हैं। स्त्री पात्रों के स्वाँग भी पुरुष ही खेलते हैं। स्त्रियों को स्वाग में भूमिका निभाने की मनाही होती है। वे गीत एवं नृत्य में सहभागी बनती हैं।

स्वांग के दर्शक उत्सव के दौरान माँस मदिरा का त्याग करते हैं। स्वाँग या नाट्य परंपरा वंश और पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती हैं। दूसरे वर्ष प्रदर्शक स्वाँग अथवा पात्र की भूमिका अदा न करे तो इस तरह की पूरे समाज की दृढ़ मान्यता होती है कि वह देवी-देवता के प्रकोप का भाजन बनता है तथा बीमार पड़ जाता है।

स्वाँग प्रस्तुतकर्ता अपने स्वाँग या पात्रों की रूप सज्जा चतुर्दिश व्याप्त प्राकृतिक वस्तुओं और घर की टूटी-फूटी वस्तुओं से निखारते हैं। खेलते समय किसी भी 'माइक' या बिजली की जरूरत नहीं होती। चाँदनी बिजली का काम करती है तथा बुलंद गला 'माइक' का काम करता है। पाठ भी परंपरागत रूप से मौखिक रूप से चित्त में तैयार होता है। गोर के स्वाँग पूरी रात खेले जाते हैं पर किसी भी तरह के आर्थिक उपार्जन की आकांक्षा नहीं की जाती। इन स्वाँग नाट्यों द्वारा धार्मिक और सामाजिक प्रथा परंपरा का निर्वाह किया जाता है। धार्मिक स्वाँग-नाट्यों में प्रदर्शक अधिक तदाकार होता है तो वह संबंधित देवी देवता बन जाता है तथा लोक समुदाय को आशीर्वाद देता है।

रंगमंच :

होली, गोर या गवरी के उत्सव के समय खेले जाने वाले स्वाँग हेतु किसी खास रंगमंच की जरूरत नहीं होती। गाँव का कोई खेत-खलिहान या पहाड़ की किसी समतल तलहटी का प्रांगण रंगमंच बन जाता है। इस प्राकृतिक रंगमंच के चारों ओर विस्तीर्ण शिलाएँ और वृक्षों की डालियाँ दर्शकों की बैठक बन जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश में वेशभूषा हेतु किसी भी प्रकार के तंबू या कमरे की आवश्यकता नहीं होती। किसी बड़ी शिला की आड़ में प्रदर्शक अपनी वेशभूषा बदलते हैं। आरंभ में आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी

एकत्रित होकर होली, गोर या गवरी के गीत गाते हैं तथा 'ढमसळीआ' ढोल के ताल के साथ नृत्य करते हैं। एक विशेष वातावरण के सृजित होने के पश्चात् स्वाँग खेलना आरंभ किया जाता है।

स्वाँग के लोकवाद्य :

स्वाँग और नाटक खेलते समय ढोल, मूंदग, कुंडी जैसे चर्मवाद्य तथा बाँसुरी, शंख, शहनाई जैसे सुषिर वाद्यों का उपयोग होता है। प्रत्येक स्वाँग-नाट्य ढोल अथवा मृदंग के संगीत के साथ होने वाले नृत्य के साथ बदल जाता है, जिससे रंगमंच पर पट परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। दृश्य परिवर्तन में भी लोकवाद्य सहायक सिद्ध होते हैं।

गोर, होली और गवरी विषयक लोकोत्सवों में खेले जाने वाले ये स्वाँग नाट्य नृत्य और संगीत की पृष्ठभूमि में निखरते हैं। इन लोकनाट्यों को स्थानीय बोली के रागात्मक संवाद सजीव बनाते हैं तथा लोक की अपनी वक्रोक्तिया और रूढ़ि प्रयोग एकत्रित हुए लोक समुदाय को भरपूर आनंदानुभूति प्रदान कराते हैं।

स्वाँग-नाट्य के दर्शक :

धार्मिक स्वाँगों के ऊपर पूरे समाज के लोगों की प्रगाढ़ आस्था होने से दर्शक धार्मिक श्रद्धा से सराबोर होते हैं तथा प्रदर्शक अत्यंत गंभीरता पूर्वक स्वाँग नाट्य अभिनीत करते हैं। जबकि सामाजिक स्वाँगों का उद्देश्य समाज में निकटस्थ भूतकाल में घटित विशेष घटनाओं से लोगों को अवगत कराने के साथ लोकानुरंजन होने से प्रदर्शक उन्मुक्ततापूर्वक हर्षोल्लास के साथ अपनी भूमिकाएँ अदा करते हैं। इससे तथाकथित अभिजात वर्ग को अश्लील लगने वाले यौन भावना विषयक स्वाँग यहाँ सहजता से अभिनीत किए जाते हैं तथा ये स्वाँग लोकानंद का प्रमुख अंश बन जाते हैं और अश्लीलता की सीमा को लाघ जाते हैं।

धार्मिक स्वाँग-नाट्य परंपरागत प्रदर्शकों द्वारा इतने अधिक प्रभावपूर्ण रूप में एवं प्रबल धार्मिक आस्था के साथ अभिनीत किए जाते हैं कि कभी-कभी दर्शक प्रदर्शक की भेदकता लुप्त हो जाती है तथा गीत-नृत्य मिश्रित स्वाँगों में पूरा लोकसमूह सहभागी होता है और नाचने गाने लगता है।

ये लोकनाट्य समाज के विशेष धार्मिक-सामाजिक प्रयोजन हेतु लोगों द्वारा लोक समूह में अभिनीत किए जाते हैं। ये स्वाँग-नाट्य निकटस्थ भूतकाल और वर्तमान लोकजीवन के अंश होने के कारण लोक की सामूहिक आशा-आकांक्षा -भावना का जीवंत रूप धारण करते हैं। अतः पूरा लोकसमुदाय नाटक देखने में निमग्न हो जाता है।

डुंगरी भीलों के ये स्वाँग-नाट्य दर्शक-प्रदर्शक के चित्त में बीज से अंकुरित पल्लवित होकर विकसित नहीं होते। परंपरागत रूप में होने के कारण ये स्वाँग-नाट्य दर्शकों के चित्त में पहले से स्थित होते हैं। फिर भी, दर्शक देवी-देवता के प्रति पूज्य भाव, प्रदर्शकों की अभिनय कला और लोकनाट्य की मंचन प्रक्रिया से आकर्षित होते हैं। ये स्वाँग समाज-जीवन के अभिन्न भाग होने से दर्शकों को आत्मीय लगते हैं, जिस से दर्शक और प्रदर्शक के बीच आत्मीय संबंध कायम रहता है।

विश्व का अनोखा लोकोत्सव गवरी :

भील आदिवासी लोकनाट्य के विकास का तीसरा सोपान राजस्थान का गवरी नृत्य स्वाँग नाट्य लोकोत्सव है। वर्षाकाल में आरंभ होने वाला गवरी राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर तथा बाँसवाड़ा क्षेत्रों में रहने वाले भील आदिवासियों का प्रमुख लोकनाट्य महोत्सव है। यह प्रदर्शकों के अभिनय द्वारा सहज रूप में खेला जाता है। इस नाट्य के साथ शिव विषयक पुराकथा जुड़ी हुई है। इसमें शिव का जो रूप मिलता है वह अत्यंत विशिष्ट है। शिव, गणपति, भस्मासुर का प्रतीक राईबूढ़ा, मोहिनी तथा पार्वती का प्रतीक दोनों देवियाँ (राइयाँ), कुटकड़िया तथा पाटभोपा ये गवरी के प्रमुख पात्र होते हैं जिन्हें 'माजी' कहा जाता है। दूसरे सभी सहभागी 'खेल्या' (खेलने वाले अभिनय करने वाले) कहे जाते हैं। खेलने या अभिनय करनेवालों में मीणा, नट, खेतुड़ी, कालबेलिया, जोगी बनजारा, वनजारिन जैसे मानव पात्र तथा सूअर, रीछ (भालू), बाघ जैसे वन्य प्राणी पात्र होते हैं। इन सभी पात्रों को जोड़ने वाला कुटकड़िया होता है। यह कुटकड़िया स्वांग या नाट्य के आरंभ के पूर्व प्रत्येक की संक्षिप्त कथा कहता है जिसके कारण गवरी से अपरिचित दर्शक श्रोता भी नाट्य का आनंद ले सकते हैं। गवरी के पात्रों का अभिनय और नृत्य अधिक विकसित और प्रौढ़ होता है।

गवरी में विशेष रूप से रौद्र, वीभत्स, हास्य, वीर, भयानक एवं श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। रस के अनुसार ही नाटक का स्वरूप और अभिनय परिवर्तित होता है।

गवरी महोत्सव का आरंभ के प्रातःकाल गाँव में त्रिशूल स्थापन, मांदळी ढोल वादन तथा भोपा द्वारा भारतगान के साथ होता है। सवा मास के अंत में हाथी को जलाशय में विसर्जित करने के पश्चात् इस महापर्व की पूर्णाहुति होती है। गवरी भादों सुदी प्रतिपदा से कुआर सुदी एकादशी के सूर्योदय तक पूरे 41 दिन तक अनेक गाँवों में मनाई जाती है। गवरी अनेक लोकनाट्यों के साथ तथा 60 से 100 नटों से प्रदर्शित किया जाने वाला भारत देश का अद्वितीय लोकोत्सव है। भारत के अतिरिक्त विश्व के किसी भी स्थान पर किसी भी समय इस तरह का नाट्यरूप सुनने को नहीं मिला है, जो इतनी लम्बी समयावधि तक, इतने अधिक प्रदर्शक समुदाय द्वारा, अनेक गाँवों में संख्यातीत दर्शकों के सन्मुख, इतने अधिक सुव्यवस्थित रूप में, अनेक दिनों तक दिन में, धार्मिक सामाजिक शिष्टाचार के साथ प्रदर्शित किया जाता है। आनंद एवं आश्चर्य की बात तो यह है कि इस समय अरावली पहाड़ी प्रदेश का समग्र लोकजीवन, पूरा गाँव अपने सब काम छोड़कर गवरी के दर्शन करता है। देवी-देवता के प्रति परम आस्था के साथ तन्मय होकर गीत-नृत्य संगीत कथा के साथ नाट्यों को देखता है तथा गवरी के पात्रों के साथ तन्मय होकर पूरा सवा महीना गवरीमय बन जाता है। यह महापर्व लोक के सहज संस्कारों से सम्पन्न तथा विराट भारतीय लोक की आत्मा का अंश होने से जाति-जाति के बीच भावात्मक एकता स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

संपर्क – 304, मिथिला अपार्टमेंट, सविता एन्क्लेव के सामने, जजिस बंगला, चार रास्ता
वोड़कदेव, अहमदाबाद गुजरात 380015 मोबा. 9428109579

जयपुर का लोकट्य - 'तमाशा'

(तीन शताब्दियों की जीवन्त विरासत)

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

आज से लगभग 300 वर्षों पूर्व जयपुर ब्रह्मपुरी के भट्ट घराने के दिग्गज कलाकार भट्ट बंशीधर " दान शिरोमणि" के दिमाग की उपज जयपुर का तमाशा" के रूप में साकार हुई। इस घराने के सुविख्यात वर्तमान कर्णधार श्री वासुदेव भट्ट के अनुसार 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आगरा के निकटवर्ती क्षेत्रों में दो दलों के बीच नगाड़े की ताल पर काव्यमय प्रश्नोत्तरी की एक शैली विकसित हुई, जो 'ख्याल तमाशा कहलाने लगी। उस मनोरंजक शैली के अनेक खिलाड़ी औरंगजेब की संगीत और कला के जनाजे को जमीन में गहरा दफनाने की नीति के कारण अपनी कलारूचि, उसके विकास और संरक्षण के लिए आगरा से देश के अन्य भागों विशेषकर रियासतों और रजवाड़ों में बिखर गये इनमें से अनेक कलाकारों को जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह सन् 1727 में अपने साथ जयपुर ले आये। जिन रंगकर्मी परिवारों को महाराजा सवाई जयसिंह और उनके बाद महाराजा सवाई प्रताप सिंह ने पूर्ण संरक्षण प्रदान किया, उनमें जयपुर का भट्ट परिवार प्रमुख हैं। उनके रंग प्रदर्शनों के लिए महाराजा सवाई जयसिंह ने ब्रह्मपुरी में एक खुले मंच की स्थापना की जिसे 'अखाड़ा' कहते हैं जो आज भी वीर हनुमान मंदिर, ब्रह्मपुरी के पास स्थित है जहां प्रत्येक वर्ष होरी त्यौहार की विशिष्ट परम्परा के विशिष्ट आकर्षण के रूप में यह आज भी इसी स्थान पर प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें चौथी, पांचवीं एवं छठी पीढ़ी के कलाकारों गोपी जी भट्ट, श्री जगदीश भट्ट, दामोदर भट्ट, निरंजन भट्ट, दिलीप तपन, विशाल, सौरभ, विनत भट्ट एवं संवाद भट्ट इस तमाशे को समय समय पर अभिनीत करते आये हैं। रांझाहीर" के समान ही 'गोपी चन्द' 'जोगी जोगन' तमाशे अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं।" इन तमाशों को उन्नीसवीं सदी के उत्तराद्ध में जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई रामसिंह के काल तक भट्ट बंसीधर ने जयपुरी शैली में प्रस्तुत किया भट्ट बंशीधर के बहुत समय तक औलाद न होने के कारण उन्होंने गोपाल जी भट्ट को पुत्र के रूप में गोद में लिया, कुछ समय 'रूक्मणीमंगल" गान प्रवीण, पं. गोपाल जी भट्ट ने भी उनके साथ तमाशा किया। बंशीधर जी के पुत्र ब्रजपाल जी के जन्म होने के बाद गोपाल जी बंशीधर जी का घर यह कहकर छोड़ कर चले गये कि अब एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं आप आशीर्वाद दें कि मैं जहां रहूं, सुखी रहूं। ब्रजपाल और तत्पश्चात् उनके पुत्रद्वय फूल जी और मन्नू जी भट्ट ने इन तमाशों को खेला। कालान्तर में स्व. गोपीकृष्ण भट्ट के बाद गोविन्द नारायण भट्ट उनके चचेरे भाई दामोदर, जगदीश, वासुदेव, इनकी सन्तानें दिलीप, तपन विशाल, कपिल सौरभ निरंजन विनत. शैलेन्द्र कपिल एवं संवाद, सचिन, हर्ष आदि तमाशे को थामे हुए हैं। एक सुखद आश्चर्य है कि 1965 में इसी भट्ट परिवार के कलाकार स्व. श्री मन्नू जी भट्ट की प्रेरणा से स्थापित संस्था वीणापाणि कला मंदिर परिसर में वर्ष 2011 में इस परिवार की छठी पीढ़ी के नन्हे-मुन्ने कलाकारों संवाद, नमन, रिमझिम झिलमिल ने तमाशा में अभिनय और संगीत पक्ष को थाम कर नई संभावनाएँ जगाई हैं जो आज भी सुचारू है।

मूलतः खुर्जा बुलन्दशहर निवासी श्री रेवती नाथ भट्ट ने जयपुर महाराजा सवाई जयसिंह तृतीय को जयपुर में अपने रामायण गायन से अभिभूत कर दिया था उन्होंने रेवतीनाथ को जयपुर में अपना दरबारी - गायक होने का निवेदन किया किन्तु उन्होंने अपने पुत्र पं. बंशीधर जी (जन्म सन् 1833) की प्रतिभा का जिक्र करके उन्हें राजगायक बनवा दिया जो कि उनके पुत्र श्री रामसिंह को रोज़ शंकर के भजन सुनाने के लिए नियुक्त किये गये। विलक्षण प्रतिभा के धनी उन्होंने एक हजार विभिन्न राग रागनियों में पद रचनाएँ कीं और इसकी एवज में उन्हें पुरस्कार स्वरूप श्रावण सुदी दौज सन् 1869 में एक रुपया प्रतिदिन तन्ख्वाह मंजूर की गई। बंशीधर जी ने गोपीचन्द भतृहरि, जोगी, जोगन, रांझाहीर छैला पणिहारी, रूपचन्द गांधी हरचन्दजती जुट्टन मियां एवं लैला मजनू तमाशे की रचना के अतिरिक्त सुन्दरकाण्ड व लंकाकाण्ड की लावणी की रचना भी की, जो आज सिटी पैलेस के पोथीखाना में सुरक्षित है। दानशिरोमणि " के नाम से ख्यात आपके सन् 1865 में ब्रजपाल पुत्र का जन्म हुआ। जिनकी गायकी टप्पा प्रधान थी व पिता के

समान ही कविता रचना में दक्ष थे यह परम्परा बाद में उनके पुत्र फूल जी भट्ट ने 'सुमन' आली एवं बंधनपुर नाम से लिखी पद रचनाओं के रूप में भी प्राप्त होती हैं। इन्हीं के छोटे भाई 1896 में जन्मे मन्नू जी भी गणगौर व माण्ड बहुत उम्दा गाते थे। इस परिवारमें जो बारीकी एवं साधना पं. गोपी जी भट्ट ने प्रदर्शित की उसका सानी नहीं है। उन्होंने तमाशे को सम्मपन दिलाया। वहीं पं. वासुदेव भट्टजी ने भी इसे जन प्रचारित और समाज विराट कैनवास तक प्रचारित और प्रसारित करने में अहम् भूमिका निभाई। इस परिवार की युवा पीढ़ी तपन, विशाल एवं सौरभ ने समाज के संदर्भों के जोड़ से इसमें नवाचार के माध्यम से युवा पीढ़ी को भी जोड़ा। दिलीप भट्ट ने भी तमाशे में उसकी विषयवस्तु को कुछ नये आयामों से जोड़ा जैसे:- शिव महिमा अग्नि परीक्षा बुलाकी पे पड़ी दहेज की मार आदि। यह बात उल्लेखनीय है कि तमाशा से प्रभावित अप्य नामचीन हरितयों ने भी तमाशा लिखा जैसे 'मेंहदी रंग लायेगी फिल्म के गीतकार डॉ. हरिराम आचार्य ने भी अग्नि परीक्षा" लिखा और दिलीप ने इसे निर्देशित किया। मेरे गुरु पं. लक्ष्मण भट्ट जी बताते हैं कि वो चहुमुखी गायक थे टीप की आवाज, रसीली गायकी, शास्त्रीय बारीकियां कूट-कूट कर भरी थीं। दानेदार एवं टप्पे जैसी तानों में दक्ष, एक राग के तमाशे की बंदिश को कम से कम आधा घंटे बढ़त करते थे, हर बार सम अलग अलग प्रकार से गाते व चारों तरफ बैठे श्रोताओं के पास हर कोने में जाकर सम लाते लोग वाह-वाह कर उठते। धमार में लय की अद्भुत अठखेलियां करते ठुमरी का अद्भुत बोल बनाव द्रुत तानें राग की अद्भुत बढ़त उनकी साधना की प्रखरता की ओर इंगित करती थी जो अब दुर्लभ और असंभव महसूस होती है। ऐसा सुना था कि आवाज में ओज लाने के लिए कुआँ के अन्दर औंधा मुंह कर के रियाज करते थे। उनके गाने का लोहा बड़े-बड़े कलाकार मानते थे।

इस तमाशे की खासियत है कि इसके मुख्य कलाकारों के समकक्ष ही इसके वादक-संगतकार और यहां तक कि दर्शक भी 4-5 पीढी से इसमें भाग लेते आये हैं। नई तकनीक, मीडिया, भूमण्डलीकरण, फिल्मों एवं ग्लोबलाइजेशन के युग में भी ठेठ पारम्परिकता के साथ नये समसामयिक प्रसंगों को समाहित कर इनके कलाकारों द्वारा आज भी यह तमाशा सुदृढ़ रूप से जीवन्त एवं सुचारू है। इसके श्रोता खास से आम तक हैं। आई. ए. एस. से लेकर रिक्शे तांगे चलाने वाले तक इसके श्रोता हैं। सांस्कृतिक आध्यात्मिकता के परिचायक तमाशे में भारतीय त्योहारों, बारह मास का आनन्द उर्दू, पंजाबी, खड़ी भाषा, अल्लाह की इबादत शंकर गणेश मां शारदा की वन्दना संसार की निस्सारता आदि ज्ञानात्मक पहलुओं को समेटे यह तमाशा सामाजिक एकता व गंगा जमुनी संस्कृति का प्रतीक माना जा सकता है।

तमाशे की संरचना कई राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों के परिणामस्वरूप दृष्टिगत होती है। विदेशियों का आगमन विदेशी संगीत पद्धतियां नवाबों का राज्य अंग्रेजों की हुकूमत समसामयिक भारतीय लोकनाट्य परम्पराएँ ख्याल रम्मत, तमाशा, पारसी थिएटर नौटंकी, स्वांग

यक्षगान, कथकली बंगाली जात्रा, महाराष्ट्रीय लावनी एवं तमाशा, रामलीलाओं, पंडवानी सभी प्रभावों को आत्मसात किये, यह तमाशा अपने ही रंग में समक्ष हुआ, जहां विविध धार्मिक वैभिन्न्य उर्दू, हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं एवं देशज, हरियाणवी, ढूंढाड़ी, राजस्थानी मुहावरे एवं तुकान्त शायरी एवं कविताओं आदि का मेल भारतीय व मुगलवाद्यों एवं वेशभूषा का मिश्रण एवं भारतीय राग रागनियों में भारतीय सांगीतिक विधाओं को इसने आत्मसात किया। आश्चर्य है कि इस परिवार की मूल भाषा ब्रज भाषा एवं संस्कृत का बहुत आंशिक प्रयोग तमाशे में दृष्टिगत होता है यह शोध का विषय है।

लोकनाट्य के योगदान की चर्चा करें तो अपनी आजीविका के संसाधन में जूझते मानव को समाज से जोड़ते हुए उसकी थकावट, कष्टों और समरस जिन्दगी से निकालने के लिए हमारे यहां त्यौहारों का प्रचलन है एवं उसमें लोकनाट्य जैसी विधाओं का इसलिए महत्व है कि उसमें लोकवार्ताऐं लोक प्रचलित संदर्भों, भाषाओं, बोलियों एवं संगीत रूपों आदि को समन्वित करते हुए कलाकार उस आनन्ददायी रूप के साथ सामाजिक जुड़ाव को और घनिष्ठता एवं जीवन्तता प्रदान करता है। इसलिए ही हर युग के लेखकों एवं इतिहासकारों ने उसे अपनी कृतियों में स्थान दिया है। जयपुर वैभव' के लेखक विक्टोरिया पदक से विभूषित भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने अपनी कृति" जयपुर वैभवम्" में 'नगरवीथी' के अन्तर्गत ब्रह्मपुरी का वर्णन करते हुए तमाशे का उल्लेख इन शब्दों में किया। " उच्छ्रंखलं खेलतां व रंगस्थलगायकानाम् होल्यभिनये विशंक गीतिर्ज विमोच्यासा" एवं स्वयं की हिन्दी टीका में दूसरी ये व्याख्या दी कि "ब्रह्मपुरी की यह सौगात कभी छोड़ने लायक नहीं है कि होली के अवसर पर तमाशा करते हुए अखाड़ा के गवैया की स्वच्छंदता और उन्मुक्त गीति का आनन्द अवश्य लिया जाये।"

संगीत के इस लोकरंजन स्वरूप की साधना और जनता को आनन्द देने की प्रवत्ति अन्य राज्यों व उसके कलाकारों में भी देखने को मिलती है। कुछ प्रमुख शास्त्रीय गायकों ने भी लोकनाट्य रूपों को अपनाया. उदाहरणार्थ दीनानाथ मंगेशकर सवाई गंधर्व, विनायक राव पटवर्धन, राजा भैया पूंछवाले एवं पं. बंशीधर भट्ट भी उसी की एक महत्वपूर्ण कड़ी माने जा सकते हैं।

अक्सर प्रश्न होता है कि जयपुर और महाराष्ट्र के तमाशे की क्या तुलना है तो महाराष्ट्र का तमाशा भी इस लोकनाट्य की एक मुख्य कड़ी माना जा सकता है। लोगों को जयपुर एवं महाराष्ट्र के तमाशे के शास्त्रीय संगीत पर आधारित होने व खुली जनता के बीच नाच व खेल के मंच पर खेले जाने आदि के साम्य के कारण एक ही माना जाने का भ्रम है किन्तु श्री वासुदेव भट्ट के अनुसार " जयपुर के तमाशे में गायन, वादन और अभिनय का सुन्दर मिश्रण होता है किन्तु साथ ही नाट्य अनुभूति और गरिमा भी होती है। तमाशे के पात्र एक घराने के सदस्य के रूप में शास्त्रीय एवं अर्धशास्त्रीय धुनों पर आधारित विशेष गायकी के प्रवीण कलाकार होते हैं। जयपुर तमाशों में कथा प्रसंग का विशेष रूप से सांगोपांग चित्रण होता है जबकि महाराष्ट्र के तमाशे में कुछ चित्रण ऐसे भी होते हैं जिनका मूल कथा से संबंध नहीं होता। जयपुर के तमाशे में असंबद्ध गीतात्मक संवाद नहीं होते इस प्रकार शैलीगत विशेषता के कारण जयपुर का तमाशा महाराष्ट्र के तमाशे से सर्वथा भिन्न हैं।

तमाशे के प्रमुख विशेषण:-

● तमाशे का मंच व वेशभूषा साजसज्जा रहित सहज होती है। खुला मंच जनता के मध्य होता है। तुर्रा हारा, कलंगी, गोटेदार भगवा वस्त्र साथ में मोरपंख ताल देने के लिए सींगी व सैली तमाशे की मुख्य वेशभूषा है। स्त्री पात्र का अभिनय भी पुरुष करते हैं, जिनमें गोटा हाथ में फूलमाला आदि पहनाकर स्त्री पात्र को उजागर किया जाता है। कभी-कभी अन्य आभूषण का वर्णन तमाशे में ही एक पात्र दूसरे लिए कर देता है, जरूरी नहीं कि वह धारण ही करे। खुले मंच के रूप में ब्रह्मपुरी में दो मंच बड़े अखाड़ा व छोटा अखाड़ा प्रसिद्ध है। विशिष्ट त्योहारों जैसे होली, दीपावली रामनवमी होली के बाद गणगौर अमावस्या आदि में इन अखाड़ों में नियमित तमाशे होते हैं। बड़े अखाड़े के मुख्य कलाकार स्व. मनोहर भट्ट उनके सजातीय शरद भट्ट आदि तमाशे करते रहे हैं। ब्रह्मपुरी का छोटा बड़ा अखाड़ा बारह भाइयों का चौराहा, पुरानी बस्ती आमेर का अम्बकेश्वर मंदिर, गोपाल धाबाई का अखाडा मठ का कुंआ, कुन्दीगर भैरों का मंदिर, रैगरों की कोठी कोलियों का मोहल्ला खातीवाड़ा ताड़केश्वर मंदिर होली टीबा आदि इसके परम्परागत मंच रहे हैं किन्तु जनसमुदाय के अधिसंख्यक संप्रेषण के मद्देनज़र इसे रवीन्द्र मंच एवं गोविन्ददेव जी मंदिर में भी खेला गया।

● हारमोनियम, 2 सारंगी, तबला, पुराने समय में पखावज आदि साजिन्दों के बैठने एवं जनता के चारों और बैठने के बाद बीच में तमाशे के कलाकार घुंघरू बांध कर तमाशे का प्रारंभ साजों पर सामयिक धुन-वादन पर लहरिये पर पदचाप नृत्य से प्रारंभ होता है, जो बिलंबित से द्रुतलय तक चरम पर पहुंचता है।

● तमाशे के पूर्व रंग में प्रथम पूज्य गणेश वन्दना, सरस्वती, शंकर व भवानी की प्रस्तुति होती है।

● पूर्व रंग के पश्चात् तमाशे में अन्य पात्र का प्रवेश व कथा का परिचय देने के बाद तमाशे का प्रारम्भ होता है।

● तमाशा पिछले 60-70 वर्षो से दिन में होता है। पूर्व में यह रात्रि जागरण के रूप में होता था। कालान्तर में यह तमाशा दिन में 12 बजे से सांय 5 बजे तक के समय में होता है।

● तमाशों की कथा चाहे विभिन्न सुखात्मक दुखात्मक भावों से परिपूर्ण हो किन्तु अन्त सुखात्मक व जन- कल्याण की प्रार्थना एवं भावनाओं से ओतप्रोत होता है।

● अधिकतर तमाशे की कहानियां प्रेम कहानियां हैं- जैसे रांझाहीर छैला पाणिहारिन, लैला मजनू आदि किन्तु कुछ तमाशे ज्ञानात्मक व आध्यामिकता लिये हैं, जैसे गोपीचन्द आदि।

● ये तमाशे मुख्यतः शास्त्रीय बारीकियां लिये शास्त्रीय राग रागनियों में निबद्ध होते हैं, जो राग- प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होती है वे हैं जैसे भूपाली, आसावरी, जौनपुरी, पीलू, मालकौंस, दरबारी, बिहाग, काफी, सिन्ध काफी भैरवी, भूपाली, पहाड़ी आदि। यह जानकारी भट्ट धराने के पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग ने मुझे स्वयं तमाशा करने पर उन धुनों को सुनकर समक्ष रखी, जिसे आधुनिक कालीन पूर्व के कलाकार शास्त्रीय रागों की जानकारी के अभाव में अंकित नहीं कर पाये थे, कालान्तर में अब रागों की जानकारी के साथ ये तमाशा कलाकार इन्हें विविध प्रचार प्रसारों में समक्ष रखते हैं एवं प्रयुक्त तालें कहरवा, तीन ताल, रूपक . धमार आदि। शास्त्रीयता में लोकपक्ष के रूप भरे जाते हैं, जैसे जोगी-जोगन, तमाशा में भैरव की अपेक्षा कालिंगडा राग का प्रयोग है। राबडी रो भोजन मीठो लागे रे इसमें लोक अनुरंजन तत्वों का समावेश करने की कोशिश की गई है।

● तमाशे के प्रमुख वादकों में प्रसिद्ध हारमोनियम वादक कन्हैयालालजी, धनजी, सारंगीवादक वजीर खां, सूरजजी, अलाउद्दीन खां, तबलावादक श्री बाला नरसिम्हा एवं मोहन जी आज भी इसलिये याद किये जाते थे, जो कलाकार के गले की हूबहू नकल कर गाने में चार चाँद लगाते थे। गायक के साथ-साथ बीच-बीच में आवाज लगाने व गाने की खुली छूट थी, यह तमाशे की लोकप्रियता एवम् जन जुड़ाव का सबसे बड़ा उदाहरण था। तमाशे में घुंघरू पहन कर सहज नृत्य का समावेश था, जो शास्त्रीय न होकर सहज रूप में जनता को अपने झुमाने में समर्थ था।

● तमाशे में स्त्री पात्र को नहीं रखा जाता किन्तु फूल जी गन्नू जी की बहन चन्द्रावली ने तमाशा गाकर इतिहास बनाया, उनके पुत्र तानसेन के रूप में ख्यात रसिक भट्ट ने भी बंशीधर जी के बाद जुट्टन मियां का तमाशा किया। स्वयं लेखिका तमाशे के उस काल की गवाह है जब तमाशा ह्रासोन्मुख था। इस घराने के जगदीश जी व वासुदेव भट्ट व मेरे पिता पं. लक्ष्मण भट्ट एवं राजपुरोहित गोपीबल्लभ की सलाह से उस तमाशे को पुनः लोक रंजक बनाने के उद्देश्य से स्त्रीपात्र का समावेश किया गया था। मैंने स्वयं हीर रांझा व जोगी जोगन तमाशों में छोटा अखाड़ा रवीन्द्र मंच व गोविन्द देव जी मंदिर में हीर व जोगन के चरित्र को अभिनीत किया। तमाशे की अभ्यस्त जनता ने एक बार फिर सुकून का अनुभव किया था। श्रुतिमंडल के तत्कालीन सचिव श्री कौशल भार्गव ने भी इसे संतोषप्रद बताया था। बाद में बिन्दु राणा ने भी लैला मंजनू तमाशे में लैला की भूमिका अदा की। वर्तमान में मंच पर स्त्रीपात्र के अभाव का कारण सम्भवतः कथानक का प्रेम लीलामय होना एवं हर वर्ग के श्रोता के मध्य अपनी गरिमा को बनाये रखना है। यद्यपि आज तमाशे में इस घराने की नन्हीं मुन्नी बच्चियां झिलमिल आदि भाग लेती हैं।

● इस घराने में जो तमाशा-लेखन की महत् परम्परा रही वह बहुत ही उम्दा रूप में वासुदेव भट्ट एवं उनके पुत्र तपन भट्ट पं. गोपी जी के लड़के दिलीप भट्ट में भी देखने को मिलती है, इनके द्वारा लिखित अन्य तमाशे आज का उद्धव प्रसंग, कृष्ण दर्शन गोविन्द भक्त इक्कीसवीं सदी शोमस्ट गोओन, राजपूताना, बंदरका ब्याह, अग्नि परीक्षा, (हरिओम आचार्य द्वारा लिखित) तमाशे की नई संभावनाओं को जगाती है।

ब्रह्मपुरी का छोटा एवं बड़ा अखाड़ा दोनों के तमाशे व शैली में साम्य देखा जा सकता है। अन्य तमाशाकार दामोदर मिश्र, नानाजी उस्ताद विजयलाल लालजी गौरा राम कुंवर डोगा गौरी लाल भडमूजा, गौरीशंकर एवं ईश्वरदत्त माथुर आदि।

अन्त में तमाशे के अस्तित्व एवं भविष्य की संभावनाओं के बारे में देखें तो अपनी चिन्तनशीलता नवोन्मेष, शालिनी बुद्धि एवं सृजनशीलता गुण के कारण इस घराने की नई पीढी इस तमाशे में नये समसामयिक प्रासंगिक संदर्भों को जोड़ते हुए इसमें रोचकता के रंग भर रही है, जिससे इसकी लोकप्रियता और सुदृढ हुई है, दरकार है जयपुर राज घराने मीडिया व सरकार की सकारात्मक सहयोगपूर्ण भूमिका की, इस घराने के वर्तमान वरिष्ठ व युवा कलाकार रंगमंच के ख्यातनाम कलाकार है, जो इस तमाशे की लोकप्रियता के लिये संघर्षरत हैं। आज का युग मेरे मत से शास्त्रीय ही कहा जाये तो उचित रहेगा क्योंकि आज भजन गायक सूफी गायक मांड सहित अन्य लोक गायक अपने गायन में शास्त्रीय खूबियों को बहुत उम्दा रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं. चाहे ये सभी लोक शैलियां गानी जायें फिर भी हर तरफ शास्त्रीय रंग से आम जनता भी जुड़ चुकी है और ऐसे गायकों को उनके ऊँचे पद पर स्थापित भी कर दिया है तब शास्त्रीय रंग से रंगे तमाशे के कलाकारों के लिये भी यह चुनौती बनी रहेगी कि वह अपनी साधना और तालीम और अभ्यास को अपने बुजुर्गों की भांति इस भागती दौड़ती जिन्दगी में भी गम्भीरता से साधते रहें। सुख की बात ये है कि आगामी पीढ़ी जो अब 7 वीं की ओर उन्मुख है वहाँ भी एक नई ऊर्जा एवं जिम्मेदारी से यह अग्रेषित हो रही है।

लेखिका: ध्रुवपद गायिका, भू.पू. डीन, ललित कला संकाय
एवं भू.पू. विभागाध्यक्षा राज. विश्वविद्यालय, जयपुर
मोबा. 9928277833

■■■

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल (म.प्र.)

गौरवशाली 14 वाँ वर्ष

कलाकारों के उत्थान, प्रोत्साहन और सम्मानजनक मंच उपलब्ध कराने हेतु
कलाओं और कलाकारों को समर्पित संस्था 'कला समय'

0755-2562294, 9425678058
kalasamay1@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आलेख

निमाड़ का लोक नाट्य 'रास मण्डल'

लोक नाट्य से लोकोत्सव में रूपान्तरण

डॉ. सुमन चौरे

एक समृद्ध लोक सांस्कृतिक जगत का महत्त्वपूर्ण अवयव है लोक नाट्य। मनोरंजन का प्रमुख पारम्परिक माध्यम है लोक नाट्य। लोक को शिक्षा देना इसका उद्देश्य नहीं रहा है तथापि इनसे जीवन जीने की समझ का संकेत मिल सकता है। इससे परम्पराओं के विषय में जानकारी मिलती है। धर्म और आध्यात्मिक विषयों के लोक नाट्यों से लोक में भक्ति का सागर उमड़ पड़ता है। लोकानुभूति है कि भगवान् स्वयं लोक के बीच विचरण कर रहे हैं। यह लोक नाट्य की शक्ति है जो उस अवसर को लोकोत्सव में बदल देती है।

रामायण से प्रेरित रामलीला, श्रीकृष्ण के चरित्र से अनुप्राणित विभिन्न प्रसंगों का अभिनय हम देखते हैं। संस्कृति के अन्य उपादानों की तरह यह कला भी अनुकरण की प्रवृत्ति से आगे बढ़ती है।

लोक नाट्य मनोरंजन का आडम्बरहीन माध्यम है। यह उस क्षेत्र विशेष की बोली की मिठास से सबको आकर्षित करता है सबको प्रस्तुति से बाँधे रखता है। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। लोक नाट्य की तैयारी में मात्र प्रस्तुति देने वाला दल या पात्र ही सम्मिलित नहीं होता है अपितु लोक नाट्य तो वही होता है जिसमें किसी न किसी रूप में उस क्षेत्र लोक की प्रत्यक्ष या परोक्ष भागीदारी हो। व्यापक भागीदारी से स्वत: ही यह आडम्बरहीन बन जाता है। मंच पर उपस्थित होने वाले पात्र मात्र अभिनय नहीं करते हैं वस्तुत: वे तो कथानक में रम जाते है। इसमें रटे हुए संवादों से अधिक स्वप्रेरत संभाषण की शैली अधिक दिखती है। लोकनाट्य का मंच हमेशा कोई ऊँचा चबूतरा ही नहीं रहता है। बड़े से मैदान या गाँव के चौगान के बीच में भी लोक नाट्य होता है। चारों ओर दर्शक रहते हैं। इनमें से अधिकतर वे होते हैं जिन्होंने लोक नाट्य की तैयारी की प्रक्रिया में किसी न किसी तरह का योगदान दिया हो।

एक प्राचीन उक्ति है – **'काव्येषु नाटकं रम्यम्'।** आशय है कि श्रवण करने के साथ ही अन्य इन्द्रियों के योगदान से नाटक अधिक रम्य बन जाता है। और लोक नाट्य में तो लोक चेतना के साक्षात् दर्शन होते हैं। जिससे लोक नाट्य प्रस्तुतिकर्ताओं के साथ ही सभी उपस्थित जन के साथ संवेदनाओं का सरल और निर्बाध संप्रेषण करता है।

निमाड़ के लोक नाट्यों में रास मण्डल और रामलीला प्रमुख हैं। उन्नीस सौ पचास और साठ के दशकों में मैंने भी इनमें भागीदारी की है। इसलिए इस विषय को और लोक संस्कृति के विविध विषयों को लिपिबद्ध करना मेरे लिए एक प्रकार से जीवंत और समृद्ध लोक संस्कृति के उस सुनहरे युग में फिर से भ्रमण करने का अनुभव रहता है। उस समय तो रास मण्डल मात्र लोक नाट्य न रहकर लोकोत्सव बन चुका था।

निमाड़ का कृष्ण भक्ति और आराधना का एक लोकोत्सव पर्व 'रास मण्डल' है। लोक नाट्य 'रास मण्डल' के कारण इस पर्व को ही रास मण्डल कहा जाता है। रास मण्डल का आयोजन ग्रामों में इतने विराट स्तर पर होता था कि यह एक लोक उत्सव ही बन गया था। विशाल आयोजन के बाद भी इसमें आडम्बर कहीं भी नहीं झलकता था।

'रास मण्डल' शब्द से कृष्ण की लीलाओं के रास का आभास होता है, किन्तु निमाड़ के इस उत्सव में रास न होकर बाल कृष्ण की लीलाओं के दर्शन होते हैं। भादव मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी, कृष्ण जन्म के अगले दिन यानी नवमी से यह उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव चौबीस घण्टे तक मनाया जाता है, इसमें कृष्ण जन्म से लेकर उनकी जलवाय पूजन तक की झाँकियाँ स्वांग सहित लोकगीतों के साथ गायी जाती है। रास मण्डल मुख्यत: लोक गीतों, लोक भजनों, संवादों और अभिनय के साथ कृष्ण की बाल लीलाओं का प्रस्तुतिकरण है।

रास मण्डल को मटकी भी कहते हैं। मटकी का तात्पर्य कृष्ण की दधलीला से है। वैसे तो प्रतिवर्ष गाँव में सार्वजनिक सहयोग से यह लोक नाट्य उत्सव बड़े ही आनन्द और उल्लास से मनाया जाता है। कभी-कभी कई लोग अपनी मनोकामना पूर्ण होने पर यह पर्व विशेष श्रद्धा से मनाते हैं, जैसे किसी की संतान नहीं है, तब वे मानता लेते हैं कि हे यशोदा माता हमारे घर भी संतान होगी तो हम आपकी गोद भरेंगे और 'मटकी' करायँगे। इस अवसर पर मटकियों से दध-माखन लुटाया जाता है। यदा-कदा किसी की संतान अस्वस्थ रहती है तो वे मानता लेते हैं कि हम अपनी हैसियत से माखन लुटायँगे और हमारे घर का माखन खाने वाला निरोगी रहे। मानता पूर्ण होने पर किया जाने वाला आयोजन भी व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक ही होता है।

यह पर्व वैसे तो जन्माष्टमी के अगले दिन ही होता है, किन्तु अपरिहार्य कारणों, जैसे अतिवृष्टि या ग्रामीण विपदा, से आयोजन की तिथि आगे भी बढ़ा दी जाती है। तिथि का निर्धारण भादव में ही किया जाता है।

रास मण्डल को 'खम्ब' भी कहते हैं। मनोभिलाषा पूरी होने पर लोग कृष्ण के जन्मोत्सव के आयोजन का भार सहर्ष वहन करते हैं। वे कहते हैं, 'हम

खम्ब करवायँगे' । यहाँ खम्ब का अर्थ है- मुख्य आधार। खम्ब इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इस उत्सव में गाँव के मध्य चौगान में एक ऊँचा खम्ब गाड़ा जाता है। जिस पर कपड़े का एक गोलाकार छत्र बाँधा जाता है। यह छाया वाला स्थल पूजा स्थल कहलाता है। खम्ब के सहारे चारों ओर दूध-माखन की मटकियाँ रखी जाती हैं और खम्ब के ऊपर भी दूध-माखन से भरी मटकियाँ लटकाई जाती हैं। खम्ब के आधार पर बालकृष्ण का विग्रह एक मजबूत आसन पर रखा जाता है। खम्ब के मूल भाग को पूजा करके जागृत किया जाता है। पूरा क्षेत्र बालकृष्ण का गोकुल गाँव प्रतीत होता है। चौबीस घण्टे तक निरन्तर चलने वाले कृष्ण जन्मोत्सव को विशिष्ट बनाने के लिए पूजन, गायन और नृत्य की कुशल टोलियाँ होती हैं। ये टोलियाँ चौबीस घण्टों को आपस में बाँटकर अपने-अपने समय पर नृत्य-गीत करती हैं। इन टोलियों को 'पहरे वाले' कहा जाता है। समय की इकाई 'प्रहर' से 'पहर' और फिर इससे 'पहरे वाले' संज्ञा बनी। पहरे वाले खड़े होकर प्रस्तुति देते हैं। खम्ब को चारों ओर घूम-घूम कर नृत्य करते हैं। रास मण्डल के गायन दल दूसरे गाँवों से भी उनकी प्रसिद्धि सुनकर बुलाये जाते हैं।

रास मण्डल का विधान यह है, कि गाँव के मुखिया या फिर गाँव के कोई एक दम्पत्ति जिनको भी यह कार्य सम्पादित करना है, जोड़े से सह पल्लव बाँधकर नदी के तट पर आरती लेकर पहुँचते हैं। यह दम्पत्ति नन्द बाबा और जसुमति मैया (यशोदा) कहलाते हैं। पूरा गाँव, महिला और पुरुषों के अलग-अलग दल बनाकर गाते-बजाते हुए उन दम्पत्ति के पीछे चलते हैं। अगर व्यक्तिगत मानोकामना पूर्ति के लिए आयोजन किया जा रहा है तो मानता मानने वाले परिवार के दम्पत्ति नन्द बाबा और यशोदा बनते हैं।

नदी में पुजारी कमर-कमर गहरे तक पानी में अपने सिर पर बालकृष्ण को सूपड़े में रखकर खड़े रहते हैं। यहाँ पुजारी वसुदेव का स्वरुप हैं,जो बालकृष्ण को कारागार से गोकुल ला रहे हैं। नन्द बाबा और जसुमति मैया स्वरूप दम्पत्ति के नदी तट पर आने के बाद पुजारी नदी से बाहर आते हैं। फिर नन्द बाबा और जसुमति मैया बालकृष्ण की आरती पूजन करके, वसुदेव के सूपड़े में विराजित बालकृष्ण को लेकर सूपड़ा अपने सिर पर रख लेते हैं। गाँव की आस्थावान गोपियाँ अपने-अपने सिरों पर दूध, दही और माखन की मटकियाँ रखकर नन्द बाबा और जसुमति मैया के पीछे चलते हैं। बड़े उत्साह से कृष्ण के जयकारों से गाँव गूँज उठता है। नन्द बाबा और यशोदा मैया बालकृष्ण को रास मण्डल के स्थान पर लाकर खम्ब के आधार के समीप पहले से स्थापित आसन पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। जसुमति मैया बाल कृष्ण के चरणों का प्रक्षालन करके उनको चन्दन तिलक लगाकर, वस्त्र धारण करवाकर श्रृंगार करती हैं। मोर पिंच का मुकुट लगाती हैं। फूलों से आसन सजाकर माखन मिश्री का भोग लगाकर आरती उतारती हैं। इसके बाद माखन-मिश्री का प्रसाद बच्चों को बाँट दिया जाता है। जिसे दध लुटाना कहते हैं।

बालकृष्ण की आरती उतारकर पूरे जनसमूह में घुमाई जाती है। लोग अपनी श्रद्धा से आरती में कुछ राशि अर्पित करते हैं। इस राशि से रास मण्डल का प्रसाद सभी उपस्थित भक्तों को वितरित कर दिया जाता है।

फिर झाँझ मिरधिंग की थाप पर गीत गाते हुए सब लोग खम्ब के चारों ओर घूमते हैं।

गीत-

जसुमति आरती संजोऽ नरहरि गोकुल मऽ आयो
जसुमति आरती संजोऽ नरहरि...
दुवारऽ तिहारे आया कान्हा भागऽ तुम्हारा जाग्या जसुमति
मोतिन चौक पुराओ जीऽ
हीरा माणिक का भुट्टा लाग्याऽ
केळऽ हीरामणि फूल्या
जसुमति आरती संजोऽ नरहरि...
दध माखन सी उभली माथणी
गौआ दूधऽ धोवाड़ो जीऽ
भाग तुम्हारा जाग्या जसुमति
आँचल दूधऽ धवाड़ोऽ जी...
जसुमति आरती संजोऽ नरहरि...
गौवा बछुड़ा ग्वाल बाल सबऽ
आँगण थाराऽ उभऽ जी
मारऽ कंस खऽ, ते अवतारा जी
जसुमति आरती संजोऽ नरहरि...
जसुमति आरती संजोऽ नरहरि...

भावार्थ - हे यशोदा मैया तुम आरती संजोवो, नरहरि भगवान् बालक का रूप धर कर गोकुल आ गये हैं। हे यशोदा तुम्हारा भाग्योदय हो गया है, जो कृष्ण तुम्हारे द्वार पर आ गये हैं। तुम मोतियों के चौक भरकर, उनका स्वागत करो। देखो तुम्हारे घर केल वृक्ष में जो फल लगे हैं, उन भुट्टों में हीरा मोती लटक रहे हैं। तुम भगवान् नरहरि का स्वागत करो। हे यशोदा, गायें अपने आप दूध देने लगी हैं। मथानियाँ दध से उफना गई हैं, पर तेरे भाग्य तो ऐसे जागे हैं, कि तू उनको अपने आँचल का दूध पिलायगी। हे यशोदा, ग्वाल-बाल, गाय बछड़े तेरे आँगन में आकर खड़े हैं। वे दर्शन करना चाह रहे हैं। यह नरहरि दुष्ट कंस को मारने के लिए अवतार लेकर आये हैं। तू उनकी आरती उतारने की तैयारी कर।

नन्द बाबा और जसुमति मैया की भूमिका का श्रद्धापूर्वक निर्वहन कर रहे दम्पत्ति आरती और प्रसाद वितरण के बाद पारम्परिक पूजा अर्चन से निवृत्त हो जाते हैं। अब रास मण्डल उत्सव की अगली कड़ी के रूप में स्वांग, नृत्य और गीत प्रारम्भ होते हैं। विभिन्न स्वांग रखकर लोग अपना आनन्द बाँटते हैं। शुभारंभ होता है गणपति के आगमन से। सन की रस्सी की सूँड

वाला मुखौटा बनाकर एक बालक को गणपति बनाकर नृत्य प्रारम्भ करते हैं। अलग-अलग दलों द्वारा प्रस्तुतियाँ दी जाती हैं। पुरुष ही महिला का श्रृंगार करके माता जसुमति (यशोदा) और माता सरसती (सरस्वती)। खम्ब के चारों ओर दल घूमता है। झाँझ-मिरदिंग के साथ गीतों के स्वरों पर गणेश थरकते हैं।

जसुमति मैया बाल गणेश को दुलार रही हैं। हे गजानन हम तुम्हें पूजते हैं। कृष्ण जन्मोत्सव के आनन्द उत्साह को उल्लासपूर्वक कालमुखी गाँव के लोग मना रहे हैं। गजानन हम सब तुम्हारी पूजा करते हैं।

खम्ब के चारों ओर घूमकर नृत्य करता दल गाता है:

गजाननऽ पूजाँऽ जगऽ का माँयऽ
गजाननऽ पूजाँऽ जीऽ...
कंस को काळऽ अवतरयो मथुरा मंऽ
खुल्या वज्जिर किवाड़ऽ
पूजाँऽ जीऽ...
देवकी वसुदेव की खुली गई बेड़ी
मुरछा खायऽ द्वारऽपालऽ
पूजाँऽ जीऽ...
भरऽ भादवऽ की रैनऽ अंधेरी
यमुना चढ़ी रह्या पाटऽ
पूजाँऽ जीऽ...
बड़ा भागऽ थारा बाबा नन्दजी वसुदेव उभ्या द्वारऽ
जसुमति करऽ दुलारऽ
पूजाँऽ जीऽ...
काळमुखी गाँव मऽ आनन छायोऽ
कराँ जीव भरी उच्छावऽ
पूजाँऽ जीऽ...

भावार्थ - हे गजानन स्वामी जग में तुम पूजे जाते हो। तुम्हे हम पूज रहे हैं। कंस का काल मथुरा में जन्म ले चुका है। द्वारपालों को मूर्छा छा गई। वसुदेव-देवकी की बेड़ियाँ खुल गई। भर भादव की अंधेरी रात में उफनती यमुना को पार कर वसुदेवजी बालकृष्ण को नन्द बाबा के द्वार पर ले आये हैं। यशोमती मैया बालकृष्ण को दुलार रही हैं। हे गजानन हम तुम्हें पूजते हैं। कृष्ण जन्मोत्सव का आनन्द छा गया है। कालमुखी गाँव में उत्साहपूर्वक उत्सव मनाया जा रहा है। हे गजानन हम तुम्हारी पूजा कर रहे हैं।

खम्ब के निकट स्थापित आसन पर बालकृष्ण के विग्रह की प्रतिष्ठा करने के बाद चौबीस घण्टों के प्रत्येक प्रहर में आरती उतारी जाती है। इस तरह आठ बार आरतियाँ होती हैं। हर प्रहर के गीत अलग-अलग होते हैं। आरतियों के बीच बालकृष्ण द्वारा खेले जाने वाले खेलों में, धेनु चराने और गोचारण के, बंशीवादन के, दध-माखन चुरावन के, भोजन के समय भोग लगाने के, यमुना पर नाग नाथन के और रात्रि में शयन के समय के झोली गीत गाये जाते हैं। प्रत्येक गीत के साथ गायक, वाद्य वृंद और नृत्य करती गोपियाँ घूम-घूमकर गाते और नृत्य करते हैं। भजन गीतों के बीच-बीच मनोरन्जन और ज्ञान वर्धन प्रसंग भी छेड़े जाते हैं। जिसमें गम्मत करते हैं। गम्मत दल होता है, जो किसी एक प्रसंग को छेड़कर इस प्रकार अभिनय और व्यवहार करते हैं कि लोग पेट पकड़-पकड़कर हँसते हैं। स्वांग धरकर लोग समाज में व्याप्त बुराइयों पर भी प्रहसन करते हैं। जैसे नशाखोरी, अशिक्षा, जातिदोष, ठगी आदि। पूरी रात गाँव कृष्ण भक्ति के सरोवर हो डुबकियाँ लगाता है। भोर होते ही प्रभाती गायी जाती है। तत्पश्चात् भगवान् के कलेवा गीत गाकर काकड़ आरती की जाती है।

रासमण्डल, खम्ब चौगान में रहता है। चारों गलियों के लोग गलियों में खड़े होकर काकड़ आरती करते हैं। बड़ा ही अनुपम दृश्य होता है। काकड़ आरती के दीये गाँव में ऐसे जगमगाते हैं, मानों भोर के अकेले एक तारे को आसमान में छोड़कर सब तारे कृष्ण आरती में धरा पर उतरकर दिपदिपा रहे हैं। इस आरती और बालमुकुन्द के जन्मोत्सव की आनन्द वृष्टि में अगर भादव बरसता भी है, तो किसी को उससे क्यों शिकायत। भींजते झूमते गाते हुए पूरा गांव नदी तट या कुँए पर जसुमति माता की गोद में बालकृष्ण के साथ जलवाय पूजन को जाते हैं। रास्ते भर लोग श्रद्धा-आस्था से दध-माखन की वृष्टि करते हैं। जिन लोगों के घर के सामने से बाल मुकुन्द निकलते हैं, समोळा (समूह) पर लोग दध वृष्टि करते हैं। इस समय जलवाय के गीत चलते रहते हैं-

काई बधाई छेऽ जी आजऽ बाबा नन्द घरऽ
देवकी की कूकऽ हरी नऽ जलमऽ लियो छेऽ...
जसुमती पूजऽ जळवायऽ बाबा नन्द घरऽ
एक लक्ष गौआ बाबा नन्दऽ नऽ दीनीऽ
माणी मणासा दियो दानऽ बाबा नन्दऽ घरऽ
दध जो माखन लै के ग्वालिन आईऽ
दूध लोणी को मची रह्यो कीचऽ बाबा नन्दऽ घरऽ
हरवा जो फूलवा लै के मालन आईऽ
उड़ी रह्यो अबीरऽ गुलाल बाबा नन्द घरऽ
जसुमती पूजऽ जळवायऽ बाबा नन्द घरऽ

भावार्थ - बाबा नन्द के घर आज कौन सी बधाई आनन्द लुटा रही है! देवकी की कोख से भगवान् हरि ने जन्म ले लिया है, उसी बालक की जलवाय माता यशोदा पूज रही हैं। बाबा नन्द ने हर्षमय उत्सव में एक लाख गायें दान कर दी हैं। माणी मणोसे सौ हज़ार गाड़ी अन्न और स्वर्णाभूषण दान कर दिये हैं। नन्द के परिवार जनों ने अपने घर के दूध-दही-माखन लुटा दिये। गलियों में उसी का कीचड़ हो गया है। टोकनों, भर-भर कर फूल हार मालन लाई है। गोकुल में अबीर गुलाल के बादल उमड़ उठे। बाबा नन्द घर यशोदा मैया बालकृष्ण की जलवाय पूज रही हैं।

जलवाय पूजन में बालमुकुन्द के विग्रह या अपने ही शिशु को गोद में लेकर प्रमुख यजमान का पत्नी पूजन करती है। सब लोग अपनी श्रद्धा से

यशोदा मैया की गोदी भरते हैं। वस्त्राभूषण अन्न सब कुछ जो मिलता है, वह मन्दिर में या गाँव के प्रमुख पण्डित के घर पहुँचा दिया जाता है। फल-फूल, मेवा और मिष्ठान्न की भेंट बच्चों में वितरित कर दी जाती है।

निमाड़ के प्रत्येक उत्सव-पर्व में लोकाचार का एक विशिष्ट महत्त्व होता है। भगवान् श्रीकृष्ण बाल मुकुन्द की जलवाय पूजन होते ही लोग बाल मुकुन्द के लिए अंगा टोपी और नन्द यशोदा को पीली वागा साड़ी देते हैं। तत्पश्चात् संपूर्ण गाँव की पंगत होती है।

पुरुष झाँझ मिरथिंग पर अति उमंग से बधावे गाते हैं।

गीत -

उड़ी रह्यो अबीरऽ गुलालऽ
नन्द का आँगणऽ मंऽ
मची रहो दध माखनऽ को कीचऽ
गोकुल की गलियन मंऽ
माता जसोदा हरवा लूटावऽ नऽ
नन्द लुटावऽ गायऽ नन्द घरऽ

भावार्थ - अबीर गुलाल को उड़ाकर लोग बाबा नन्द के घर बधाई देने पहुँच गये। माता यशोदा इतने आनन्द में है कि अपने कंठ का हार लुटा दिया और बाबा नन्द ने अपने प्यारे गाय बछड़े लोगों को दान में दे दिये। इतना दूध, दही और माखन लुटाया जा रहा है कि गोकुल की गलियों में उसका कीचड़ मच गया।

महिलाओं के वात्सल्यमय स्वर फूट पड़ते हैं

गीत -

सोन्ना रुप्पा का चेंडू पाटला
कृष्णऽ जी खेलणऽजाय
दूरऽ खेळणाऽमति जाओ कान्हा तुम
मथुरा मंऽ मामा ममसाळ
मथुरा मंऽ कंस को राजऽ

भावार्थ - प्यारे कृष्ण सोने-चाँदी की गेंद और पाट से खेल खेल रहे हैं। माता कहती है- हे बाल कृष्ण तुम दूर खेलने मत जाओ मथुरा में तुम्हारे मामा कंस का शासन है। माता को अपने लाला की सदैव चिन्ता रहती है। इस प्रकार के भावपूर्ण गीत रास मण्डल को रसे सराबोर कर देते हैं।

सभी लोगों का रात्रि जागरण होता है। अधिकांश लोग रास मण्डल में भागीदारी करते हैं, तो कुछ लोग अगले दिन की भोजन व्यवस्था करने में व्यस्त रहते हैं। सैकड़ों लोगों के लिए सुबह दस बजे से ही पंगत शुरु हो जाती है। भोजन में पुड़ की रोटी के साथ तोर (तूवर) की बघरी लगथुगी दाल यानी ऐसी गाढ़ी दाल कि पत्तल पर से फैले नहीं परोसी जाती है। इसके साथ ही गुड़ की थुली (दलिया) और घुंगरी (गेहूँ, आटा और गुड़ से बना मिष्ठान्न) भी परोसे जाते हैं। भोजन प्रारंभ करने के पहले सभी के हाथों में लोणी (माखन), मिश्री और धनिया की पंजरी का प्रसाद दिया जाता है।

रास मण्डल भाव भक्तिपूर्ण लोक नाट्य तो है ही, यह पारिवारिक, सामाजिक और ग्राम्य अंचल की सौहार्द्रपूर्ण उत्सव है। जिसमें धर्म, जाति-पाति, अमीरी-गरीबी की कोई खाई नहीं होती है।

रास मण्डल के साथ मेरी कई सुखद स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। कई गाँवों में रास मण्डल की पुष्ट परम्परा थी। हमारे गाँव कालमुखी के रास मण्डल में शामिल होने के लिए आसपास के कई गाँवों के लोग आते थे। इन गाँवों के दल नृत्य, गायन और गम्मत में सक्रिय भागीदारी भी करते थे। वर्ष 2018 में निमाड़ के गाँवों की एक लम्बी शोध यात्रा में ज्ञात हुआ कि रासमण्डल जैसी कई समृद्ध परम्पराएं अब दुर्लभ हैं। कुछ गाँवों में औपचारिकता मात्र के लिए रास मण्डल, खम्ब या मटकी नाम से आयोजन होता है। लोकगीतों और परंपरागत लोक नृत्य विधाओं के लुप्त होते जाने से इस उत्सव का असली आनन्द क्षीण हो रहा है। आधुनिकता की भ्रमपूर्ण समझ से सैकड़ों वर्षों से निरंतर चली आ रही पुष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं का त्याग करना वास्तविकता में अपनी ही जड़ों को काटने के समान ही है।

संपर्क : 13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेन्शन बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफिसत्रिलंगा, भोपाल (म.प्र) 462039
मोबा. 9424440377

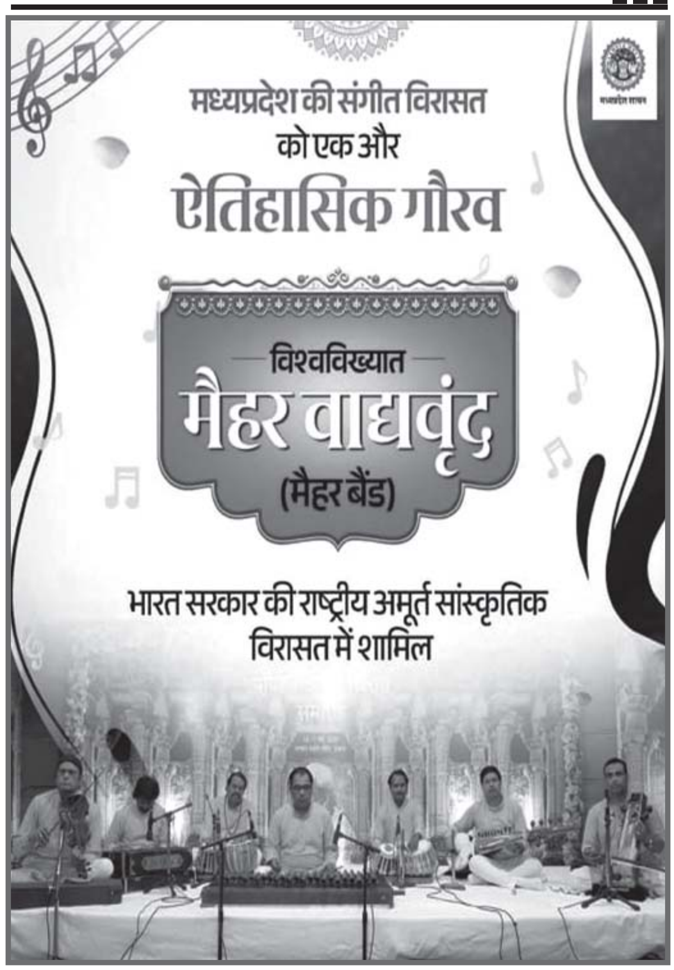

हाडौती में अनुवाद: डॉ. प्रद्युम्न भट्ट, वरिष्ठ लेखक पुरातत्वविद्

भुवाई समाज द्वारा सृजित-मंचित लोक नाट्य

स्तम्भ पूजा

(खाटू श्याम का प्राकट्य)

- डॉ. पूरन सहगल

सूत्रधार- सजो हुआ मंच। महाभारत काल (द्वापर) जुद्ध से पेलां परम्परागत थंभ पूजन को आयोजन। मंच पे एक थम्ब रोपयो गयों छेः। बाजूसे संगीत की सुर लहरी। स्त्री रूप में दो जन्या को नृत्य। थोडी देर नाचता हुयां फेर नृत्य (नाच) रोक कर देखना वालां को अभिवादन।

एक पात्र-

गजानन्द गणपत नमां, खम्मा करां हिंगलाज।
थम्भ पूजा रो करां, ख्याल गाम में आज।।
चित्त लगा ने साम्हलजो, गुणजो ध्यान लगाय।
भुवाई नचावा आवया, जजमाना रे माय।।

दूसरा पात्र-

जजमाना री आस हे, सीतलतां री आण।
भूल न रखसां जाणतां, भुवन भवानी माण।।

दोई पात्तर, दोई जन्या फेर नाच में लीन, थोडी बार और नाच चल्यों, दोई जत्या ने हाथजोड अभिवादन करयों न मचं सु विदाली।

बगल में तुरही, शंख और नगाड़ा बजता रहया, उणी मंच पे जुद्ध की वेश भूषा पेहण हाथ में छोटो (गदा) ले न दुर्योधन ने प्रवेश करयो। मंच पे आता ही उण ने थभं (थाम्बा) ने मायो झुकान प्रणाम करयों।

दुर्योधन- (स्वगत) खुद सूं बोलो थंभ पूजा में नर बलि (मानव बलि) जरूरी है। जीवतो मनख खौ सूं लाऊं। कण की बलि चढ़ाऊं। सभी भाई होण ने बारी-बारी सूं मना करदी। दुशासन तो यां तक बोल्यों कि शकुनी मामा की बलि चढाऊ। कितरा स्वारथी है सब लोग। कई मूं म्हारी खुद की बलि देदू कई?

अगर अस्यो होयो तो जुद्ध ही खतम होयो मानलो। जुद्ध को धारक तो मूँ ही हूं, हस्तिनापुर को होबावालो महाराज भी मूँ। असमंजस में खडो रे जावें। अठी उठी देखे इतरा में उबे एक भिक्षुक (मगंतो) उणकी पत्नी और बेटा के लार आतो दिखें। दुर्योधन दौड़ न उण मगंता (भिक्षुक) ने जबरण पकड न थंभ के पास लावे मगंता (भिक्षुक) की पतनी अणी बात को विरोध करें और रो रो न अपना पति की रगसा की याचना करें। उणाको छोटो बारक भी जोर जोर सूं रोबा लाग्यों पर दुर्योधन ने महिला के ठोकर देण नीचे गिराद्यो और उण मंगता (भिक्षुक) की बलि थंभ देवता के चढा दी। तलवार का एक ही बार सूं मंगता (भिक्षुक) को माथो (मूंड) थंभ सूं नीचे जा पडयो। खून की धार बेह चाली। दुर्योधन ने उन खून की धार सुं थंभ के तिलक काढयो, खुद भी अपना ललाट पे खूनरो तिलक लगायों, और थंभ को वदंन करयो।

भिक्षुक की पतनी विलाप करती री, उणाको बेटो भी डर के मारे मां का आंचल जा दुब क्यो।

भिक्षुक पत्नी- अरे दुष्ट राजकुमार दुर्योधन। तू ने म्हारा निरपराध पति को वध कियो छें, थारो बंस मूल सूं नास हो। दुर्योधन ने तलवार एक ही वार सूं भिक्षुक की पतनी को भी वध कर दियों और उनका बेटा ने भी दूर फेंक दियों छेः। दुर्योधन मंच सूं बिदा हो गयो, बिजली चमकबा लागी, बादरा गरजवा लाग्या, भयंकर तूफान उठ्यो

सूत्रधार- थोणी देर में मंच को वातारण शांत होगयो छेः तभी शांत मंच पे पांचों पाडव और श्रीकृष्णजी को प्रवेश होयो छेः। मंच पर थंभ मौजूद छे। पांडवों ने भी थंभ पूजा करनी छे।

कृष्ण- थंम पे परम्परा के अनुसार नर बलि को विधान छे। कहयो किणरी बलि दी जाय?

युधिष्ठर- मूं हूं ना हाजिर, म्हारी बलि देन थंभ देवता ने तुष्ट करो।

कृष्ण- हे महाराज युधिष्ठर, यो जुद्ध तो थाकां ही अधिकार कारने लड़्यो जाणों छें। हे धरमराज धरम की रगसा और अपणा हक पावा वास्ते ही अणी जुद्ध को आयोजन हुयो छेः। यदि थांकी ही बलि दे दी गई तो फेर यो जुद्ध कणके लिए और क्यूं छेः।

तत्काल अर्जुन सामू आण-खेबे।

अर्जुन हे वासुदेव ! बलि कारने मू खुद हाजिर छू म्हारी ही बलि दे दो।

कृष्ण- हे पार्थ, थारो जैसे धनुर्धर म्हाके पास दूसरों है नई। कूण करेगा। पित्तामह भीष्मजी गुरुद्रोणजी और करण से जुद्ध?

तत्काल भीम सामू आण बोल्यो छेः।

भीम- हे वासुदेव आप म्हारी बलि दे कर थंभदेव नू राजी करो छे, म्हूं राजी राजी हाजिर छूं।

कृष्ण- हे महाबलि भीम, थारो त्याग प्रशंसनीय छेः। लेकिण दुर्योधन और दुशासन सूं छोटा जुद्ध (गदा जुद्ध) कूण करेगा। द्रोपदी का परण को कांई होगा? जदे ही नकूल आगे बढ्यो, लेकिण सहदेव ने उणे पाछे धकेल आगे बढ़ के खेबा लाग्यो।

सहदेव- हे वासुदवे कृष्ण म्हूं तैयार छूं:।आप राजी राजी म्हारी बलि दे के पूजा अनुष्ठान पूरण करों।

कृष्ण- हे नकूल, हे सहदेव थां दोई म्हारी बुआ कुन्तीजी के पास माद्री माता की अमानत छेः। थांरी बलि कतई नी दी जा सकें। उणी टेम भीम खीज ने बोल्यो, हे कृष्ण जब आप म्हा मेसे एक की भी बलि देवा वास्तें राजी नई हो तो खुद की बलि क्यूं नी दे रहया छेः। भीम का असा वचन सुण उण बखत युधिष्ठिर भीम ने टोकतां, डॉट न बोल्या -

युधिष्ठिर- अरे भीम थारे यो कंई होगयो छे, जब देखें तब करोध ने

माथा पे छाया रख्यो छेंः। असा कठोर बचन केहतां थारे थोड़ी भी लाज नहीं आई, संकोच नी होयो ? अरे म्हारा उतावड़ा महाबलि भाई, जदि कृष्णजी की बलि हो गई तो हम जुद्ध लडवा सूं पेला ही हार जावांगा। कदी तो शांत मन चत्त होकर बोल। युधिष्ठिर का बचन सुण भीम माथो नीचे कर ल्यों।

कृष्ण- शांत चत्त तो भीम रो कांधो थपथपा के बोल्या जदि म्हां सब बलि के जोग्य नी हां कई मारग बचे, थंभदेवरी पूजा करू पूरी होवे छेः ?

कृष्ण- हां एक मारग छे, म्हा भी दुर्योधन की तरहा कणी निरीह (अलाय) मनख ऐ ला कर उण की बलिचढा दां।

युधिष्ठिर- हे वासुदेव कृष्ण । थां तो म्हारा मारगदर्सक हो और करणधार भी छो। आपरो विधान कहां तक ठीक छेः ? आप ही बताओ। थां ने ही समझायो है कि सुद्ध और सुभ कारज हेतु साधन भी सुद्ध और सुभ होणो चहिये। म्हा री मंजिल, मेहनत और मनकी बात भी सुम और सुद्ध होणी छावे। फेर आपको असो आसूभ और असुद्ध विधान कहां तक ठीक छेः। म्हारे जीत मिले या हार, म्हां जुद्ध में मर जावां या जीवता बच जावां यह बात बाद की छेंः। थां ने ही अणे धरम जुद्ध कहयो फेर यो अधरम को काम छू?

कृष्ण- युधिष्ठिर भाई, आपको केणो ठीक छें: और यो केणो धरम पथ भी छे और नीतिगत भी छे। लेकिण आप ही बताओ म्हाके कई करणों चहिये?

युधिष्ठिर- हे वासुदेव। म्हांकणी भी जीवता मनख की बलि नी देगां छे। म्हां गार से नर पुतलो बणा के उणकी बलि दांगा और थंभ देवता ने अपना अपना खून से रातो तलक लगां के (तुष्ट) राजी करागा। म्हा का मन की सुद्धता से थंभ देव अवस ही खुसी होगा। कणी भी निरीह जीव की बलि दे न उणकी हाय लेवो अधरम ही छे। उण री हाय सूं म्हाकी जीत भी हार में पलट जावेगी।

सूत्रधार- कृष्णजी युधिष्ठिर का पूजा विधान सूं सहमत होया छे, तभी बगल में संगीत बाजे बगल सूं ही नाचकी ध्वनि (आवाज) झकांर उठी। बादल गरजवा लाग्या छें बिजलियां चमकणे लागी और पताल सूं एक दिव्य धनुर्धर (धनुषधारी) परकट होयो छें।

ऊंचो ललाट, आख्यां में रौद्रभाव, मुख पे सूरज समान तेज सुडोल, सुदरसन सरीर, पीठ पर बाणां सूं भरयो तूणीर (तरकस) कांधा पे दिव्य धनुष और सुन्दर दाड़ी। असा तेजवान युवक वीर ने अचानक पताल सूं धरती पर परगटयो देख सारा ही लोंग असमजस में हो उठया। ततकाल कृष्णजी ने सांत चत्त हो उण युवक सूं कहयो,।

कृष्ण- हे तेजसवी धनुष धारी वीर तुम कूण छों।
अणि तरेह अचानक परगट होण यहां हाजिर होवा को मतलब कई छः।

युवक- म्हूँ पताल लोक की नाग माता अहिलयावती (मौरबी) को पुत्तर बरभ बाव छूं। म्हूं यहां जलदी ही होबा वाला महाभारत का जुद्ध में भाग लेबा सरु हाजिर होयो छूः।

कृष्ण- हे वीर धनुषधारी यहां कण का पक्ष में जुद्ध करना हेतु आया छो ?

बरभवान- म्हूं यहां धरती पर आबा सरु और जुद्ध में भाग लेबा सरु त्यार होयो तब म्हारी माता ने सुझायो कि तू (पुत्तर) कणी ऊंचां परबत की चोटी पर उबो होन जुद्ध को निरीखन कर जो, पकस थारे हारतो दीखें उणका पक्ष में जुद्ध कर जे। सो म्हूं जो माता ने समझयो वई करूगां।

कृष्ण- (स्वगत) यह तेजवान धनुषधारी महाबलि भीम रो पौत्र छेंः। जद अणे या मालम भी पड़ जाप तो बी अपनी माता को आदेस ही मानेगा, इसतरह तो पांडवां की हार पक्की ही छेः।

बरभवान- धरम और अधरम तो हे कृष्णजी थारी धूर्तता को छल छे, म्हें भली भाँती जानू कि तुम कूटनीतिवान, धूरत और छली पुरुष हो। थारी ही धूरतता के कारण दोई भाईयां में यो जुद्ध ठण्यो छेः। म्हूं सब जान लियो छूं।

कृष्ण- तबे तो गंधार नरेस सकुनि रो नाम भी सुण्यो होगा। कई थांके उणकी धूरतता और छलनीति को ज्ञान छेः।

बरभवान- सुण्यो हे, हऊ तरां सुण्यो छे उणरे साथ भीष्मपितामह ने अन्याय कियो छों। जादि वू अपणो अपमान रो बदलो लेण चावे तो कंई गलत करे छेः। लेकिण थांरो अपमान कहां होयो छे ? थां चाहता तो दोईने समझा बुझा के यो विनासकारी जुद्ध टाल ही सकता छा।

कृष्ण- शांत मन सूं कई थां अपणा बलबूता पे जुद्ध को पलडो बदल सको छी। इणबात को परमाण देहो हे तेजवान बरभवान।

बरभवान- म्हूं थांके साथ या कणी भी पांडवा के साथ जुद्ध वारत्ते तैयार छूं।

कृष्ण- ठीक छें। करो धनुषधारण। करो म्हार पे परहार।

बरभवान- म्हूं निहत्या पे वार नी कर सकूं। थां भी सस्तर धरण करो। चावो तो अपणो सुदर्षन भी धारण कर लेवो।

कृष्ण- म्हुंक शस्तर धारण नी करबा वास्ते बचनवद्ध छुं। म्हुं निसस्तर हो के भी सशस्तर छुं। थां करो परहार। म्हुं थारो परहार व्यर्थ करबा की कोसिस करूगा। लेकिन एक बचन देओ-जदि था म्हारो वध करी सक्या तो थारे, मनचाहा पक्स में जुद्ध करण वास्ते कोई रोक नी करेगा। और जदी थां म्हारो वध नहीं कर सक्या तो म्हुं थारो सीरू थंभ देव ने अरपण कर दुगों। इनी बात में कोई बाधा नी होणी और सहज ही अपणी सहमति देवोगा छें।

बरभवान- ठीक छे। म्हूं अपणी माता ने साकसी माण थांका विधान हेतु वचन देऊं छें।

बरभवान- धनुष धारण कर बाण से संधान करे छें। उ जाणे छें कि इण कृष्णजी के पराण सीस में होवे छे यह जाण उ कृष्णजी के सीस पे बाणको संधान करे छे। कृष्णजी जदेई विराट रूप धारणकर लेवे छें। जसूं ई बाण छूर्र वी तत्काल अपणा पहले रा रूप में आजावे छें और बाण उपर उपर निकल जावे छें।

बरभवान- (स्वगत) विचार करे सभी लोग इण माणवी कृष्णजी का चरण पूजै छूं खास रूप सूं दाहिना चरण रो अगुंठो। पक्को है री इनरा पराण उनी अगूंठे छें। वो फेर बाण को संधान करे छें कृष्णजी फेर विराट रूप धारण कर लेवे छे। जसां ही बाण उनरा चरण के अंगूठा रे मेरे ही धरणी में गड जावे छें। बरभवान खुद की हार मजूर कर कृष्णजी रा चरणा रो बन्दन करे छे। अपणों धनुष, तरकस बाण सब कृष्णजी रा चरणां में रख देवे छें।

बरभवान- हे कृष्णजी म्हारे क्षमा करों। म्हां ने थांके परति जो कठोर

बचन बोल्या वा म्हारी अहंकार भरी बात री । म्हुं थांका (रावरा) चरणा में समरर्पित छूं। थां म्हारे सीस थंभ देव ने अरपण करो म्हुं राजी कुसी हाजिर छू।

कृष्ण- हे बरभवान, थूई धन्य छों। थारी सौर्य और बाण संधान अदभुत छें। थूई अण जुद्ध में अधरम करबा रो पाप मोल लेबा वालो छो अणी कारण म्हने या लीला रचाई छें। थूंई ने मालुम होणो छाहिजे, थूई भी पांडव छो, थूई घटोटाकच को पुत्तर और भीम को पौत्तर छो! उणना परणाम करों। अपणा सब वरिष्ठजना ने भी बदंन करों। बरभवान सवने चरण बदंन करयो भीम नें उणे गले लगायो और बलि सारु सहमति दी छू।

कृष्ण- हे बरभवान म्हूं थारो सीस ऊणी थंभ पर थापित करुगां। थूई अमर रहयोगा इणी जगह से सगरा जुद्ध ने देख सकोगा। जुद्ध पूरो होब थांई इणी थंस पे थापित रेहोगा। हे बरभवान, म्हूं थने अपणी सारी सकतियाँ दे रहयो छूं। आज सूं म्हू कृष्ण केहलाऊँगा और थूई श्याम केहलाओगा। थूई म्हारो श्याम औतार मान्यो जाओगा।

सूत्रधार- यूं केहतां केहतां कृष्ण ने अपना तेज सुदर्शन सूं बरभवान को सीस काट ने थंभ पे थापित कर दियो । बरभवान से सीस थंभ पे जुद्ध खतम हो तब तक कायम रियो । फेर कृष्ण ने रूपवती नंदी में (राजस्थान) में परवाहित कर कहयो, हे श्याम जाओ और मुकामी बण जाओ। वो सीस नंदी में तैरतो हुयो सीकर (खाटू अचंल) में जा पोहच्यो। उनी रात में सीकर की रानी नरमदा कुंवर चौहान ने सुपनों आयो । सुपना में कृष्ण ने परकट होण कहयो- हे रानी म्हारो सरूप ही सीस रुपवती नंदी के तट पे कीच में दब्यो पडयो है छें। उणने बारे निकाला कर सम्मान सहित उनरी प्रतिष्ठा कराओ। यो सीस म्हारो (कृष्ण को) ही सरूप छें । उणने श्याम नाम सूं पुकारज्यो और उणको मदंर बणा ने पूजा विधान करजो। रानी ने परभात में उठ न सपणो कहयो, पति महाराज रूपसिंहजी चौहान ने सुपनो कहयो, नंदी तट सूं सीस निकलवायो सम्मान सहित परतिष्ठा करवायी और भव्य मदंर बणवायो। सो सीस ही आगला जुग में खाटू श्यामजी नाम सूं जगत में परसिद्ध होयो।

सूत्रधार- बरभवान को उच्चारण काल के अंतर में बाब्रीक (बब्रूवाहन) नाम सूं अभिसेक करयो गयो उणका मदंर गांव गांव में नगर नगर में आज थापत छैं।

सूत्रधार- सबरा लोग मंच सूं एक एक कर बिदा हो गया। पार्श्व में फेर शांख घडियाल बाज उठया फेर मंच पे एक बार स्त्री पात्र परवेस कियो दोई जन्या नृत्यरत होई। नृत्य थम गयो । दोई स्त्री पातर दरसकां का हाथ जोड ने कमर झुका न अभिवादन कियो।

एक पात्र- म्हा सूं जैसो बण्यो वसो खेल रचायो, गाम में सुख सांति बणी रेवे, सभी तरह से सुम मंगल होवे छे गामधणी को जस बढे, सतियां रो सत कायम देवे रोग, सोक नहीं ब्यापे। अकाल नी पडे सदा सुकाल वण्यो रहये माता सीतला भी राजी रहयै। मरीमाता को कोप नी व्यापे। वरेकण माता राजी रहेये। साकम्बरी मात री किरपा सब पे वणी रहये। भुवन भवानी सब पे किरपा करें। भुवाईयां री थई आसीस छें। दाण पुण्य उराला मन सूं होतो रहये। रोजी रिजक भाईचारों खूब वण्यो रहेये। मचं पे फेर नृत्य होवे छें। पार्श्व संगीत बजतो रहयो छें। दरसक भी धीरां धीरां सब विदा हो जावे छें।

लोक नाट्य प्रस्तोता (डॉ. पूरन सहगल) की कमल से-

विशेष-(अ) भुवाई के खेल में माच की भाँति कोई भी स्त्री पात्र भाग नहीं लेती। पुरुष ही स्त्री वेष धारण करते है।

(ब) यह लोक नाट्य भुवाई समाज द्वारा खेला जाता रहा है। मैंने मंदसौर जिले की तहसील मंदसौर के गांव रीछालाल मुँह के भवाई नायक आशाराम और नन्दलाल द्वारा उस अंचल में मंचित इस लोक नाट्य को एकाधिक बार देखा। तब मैं वहाँ शिक्षक था। (सन् 1963 से 1970) तब इसकी भाषा दशपुर अंचल की मालवी थी। फिर मैंने यही लोक नाट्य हाड़ौती अंचल में भी देखा। तब इसके प्रस्तोता चेताराम भुवाई थे । इसकी भाषा हाड़ौती का प्रदर्शन अधिक मनभावन लगा। लोकऋषि श्री दलेलसिंह जी यादव के सहयोग से मैंने इसका हिन्दी अनुवाद किया। **"इस हेतु मैंने अपने पास वाली हाड़ौती वाली पांडुलिपि डॉ. प्रद्युम्न भट्ट सा. को देकर उनसे इसे शुद्ध हाड़ौती में परिवर्तित करने का अनुरोध किया। वे भानपुरा अंचल और झालावाड़ अंचल (हाड़ौती) विद्वान लेखक हैं। उन्होंने मेरे आग्रह पर इसे मेरे पूर्व लिखे हाड़ौती एवं हिन्दी लोक नाट्यों की पाडुलिपि को समक्ष रख कर इसे हाड़ौती में श्रृंगारित किया है। उनका आभार! वन्दन !"**

स्तम्भ पूजा के ये खेल वागड़ अंचल (डूंगरपुर-बांसवाड़ा), कांठल अंचल (प्रतापगढ़) ढूंढाड़ अंचल (जयपुर-सींकर), मेवाडा, मारवाड, मालवा में थोड़े बहुत अंतर-भेद से खेल जाते रहे हैं।

भाषा बोली का अंतर तो स्वाभाविक रूप से रहा हैं। स्तम्भ पूजा में वे बकरे, मुर्गे की बलि भी देते हैं।

(स) भुवाई समाज कलावंत समाज है। इस समाज का मूल गुजरात हैं। प्रत्येक समाज की अपनी भुवाई होती हैं। भुवाई प्रदर्शन को "भुवाई नचाना" कहा जाता है। यह समाज शीतला माता का आराधक है। शीतला के शमन हेतु यह पूजित माना जाता है। अब शनै-शैन इनके नाट्य प्रदर्शन कम होते जा रहे हैं। बल्कि थम से गये हैं। पहले जैसा सम्मान नहीं रहा। पहले जैसे दर्शक नहीं रहे। सब नीरस हो गया है। हम सब भौतिक दौड़ में बेतहाशा दौड़ रहे हैं। हमारी अमूल्य विरासत नष्ट होती जा रही है। इसे सहेजना आवश्यक है। यह इसी धर्मिता का प्रयास है। इति शुभम् !

(द) पौराणिक मान्यता के अनुसार कृष्ण ने बरभवान (बरबरीक) की परीक्षा हेतु उससे कहा कि, मैं युद्ध से पूर्व तुम्हारा बाण कौशल जानना चाहता हूँ। तब बरभवान ने कहा कि, मैं एक ही बाण से इस वटवृक्ष के सभी पत्तों को भेद सकता हूँ। कृष्ण ने चतुराई से वटवृक्ष का एक पत्र अपने पैर के नीचे दबा लिया। जब बरभवान ने बाण चलाया तब वटवृक्ष के सभी पत्र बिंध गये। कृष्ण ने जब पैर के नीचे दबा पत्र देखा तब उन्होंने पाया कि, वह पत्र भी बिंधा हुआ था। कृष्ण बरभवान का बाण कौशल जान गये और ऐसे स्वयं के साथ युद्ध हेतु वचनबद्ध किया । लोक मान्यता के अनुसार भुवाई समाज ने स्तम्भ पूजा को मान्य कर अपना खेल सृजित किया। भीलांचल में आज भी यही विधान कायम है। लोक की अपनी सृष्टि और स्थापना होती है। उसे भी नकारा नहीं जा सकता।

■■■

वाद्य यन्त्रों के रेखाचित्र

कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

20 शताब्दी के प्रारंभ में कौन – कौन से संगीत वाद्य प्रचलित थे। इन के सुन्दर रेखाचित्र हमें आज से 102 वर्ष पहले प्रकाशित Memory Drawing Elementary and Intermediate Grades, Bombay Presidency में मिलते हैं। इस पुस्तक के रचनाकार उस्मान बाखल खुड़सुडिया, राजकुमार कॉलेज राजकोट (गुजरात) चित्रकला के अध्यापक थे। लेखक ने रेखाचित्रों के साथ उनके अंग्रेजी/गुजराती/हिन्दी/ मराठी नाम भी दिए है।

इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन 1915 में हुआ था। इसका नौवा संस्करण मुझे बालमुकुन्द रामनारायण नार्मल स्कूल, इन्दौर के संग्रह में से प्राप्त हुआ। 174 पृष्ठों वाली इस पुस्तक में 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रचलित अनेक वस्तुओं के रेखाचित्र उपलब्ध हैं। इसमें 40 वाद्ययन्त्रों के रेखाचित्र मैं 'कला समय' के प्रबुद्ध पाठकों हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सम्पर्क: श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान, मन्दसौर मो. 9424546019

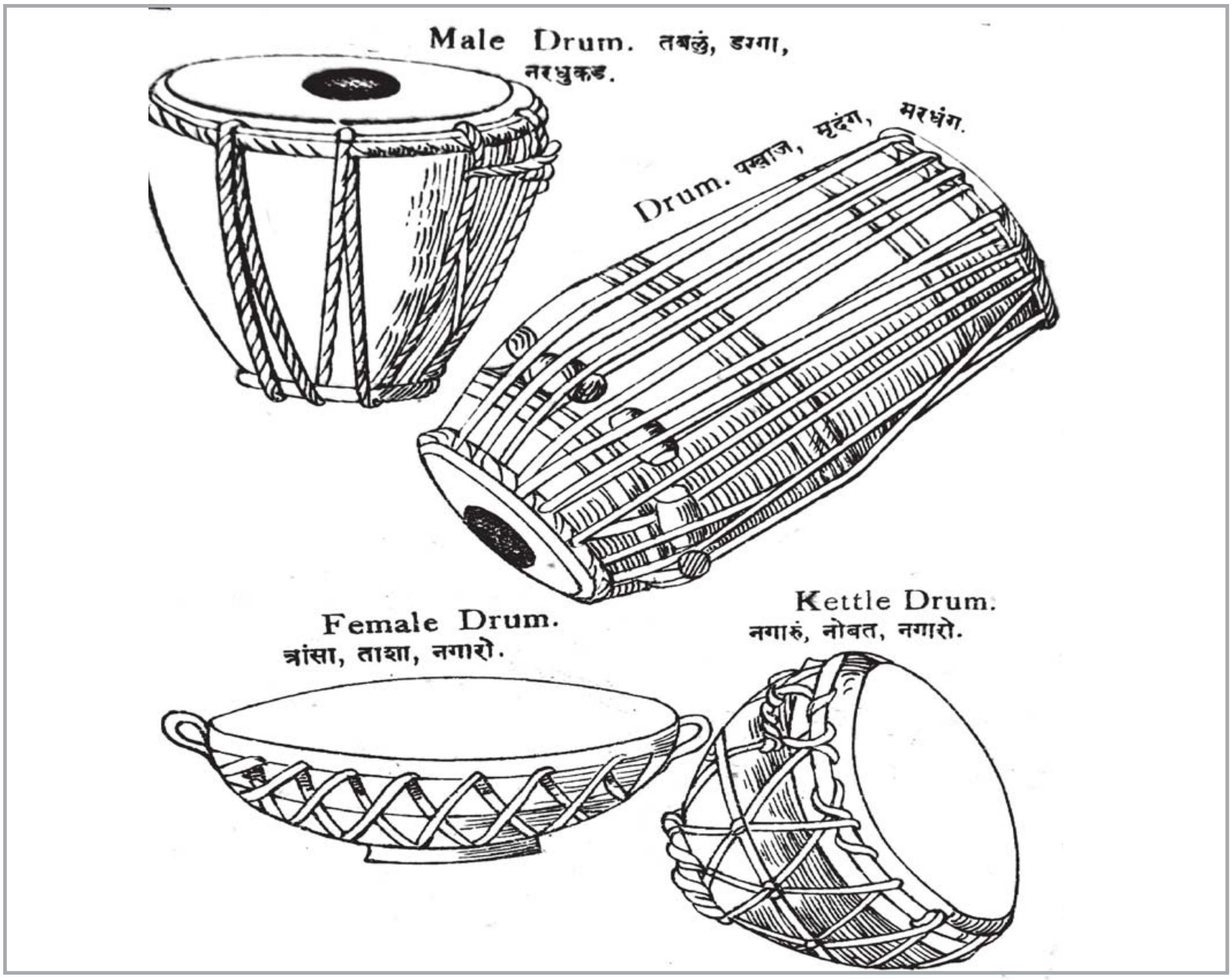

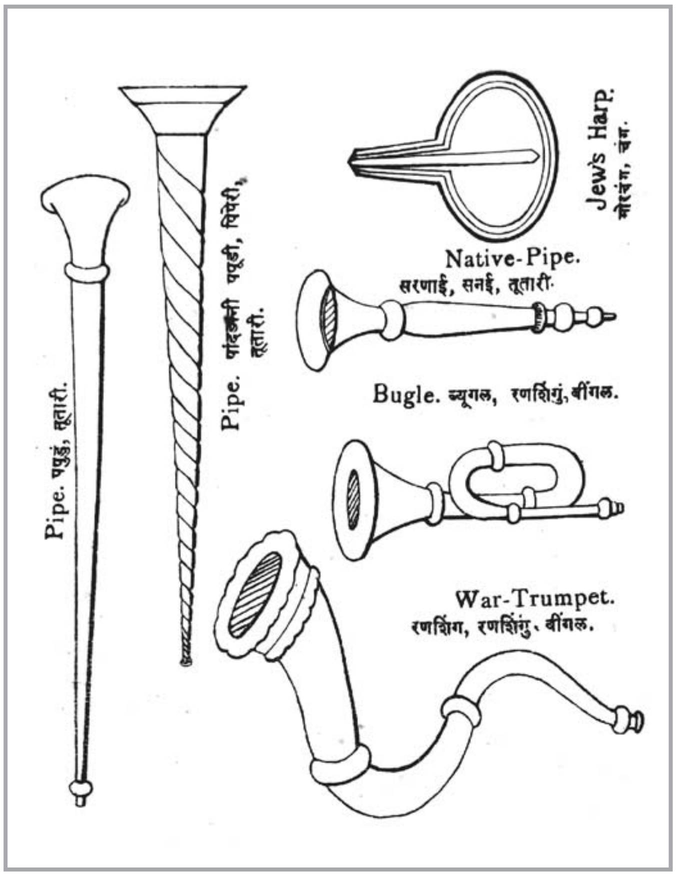
Pipe. पपुडुं, तूतारी.
Pipe. पांदड़ानी पपुडी, पिपेरी, तूतारी.
Jew's Harp. मोरचंग, चंग.
Native-Pipe.
सरणाई, सनई, तूतारी.
Bugle. ब्यूगल, रणशिंगुं, बींगल.
War-Trumpet.
रणशिंग, रणशिंगु, बींगल.

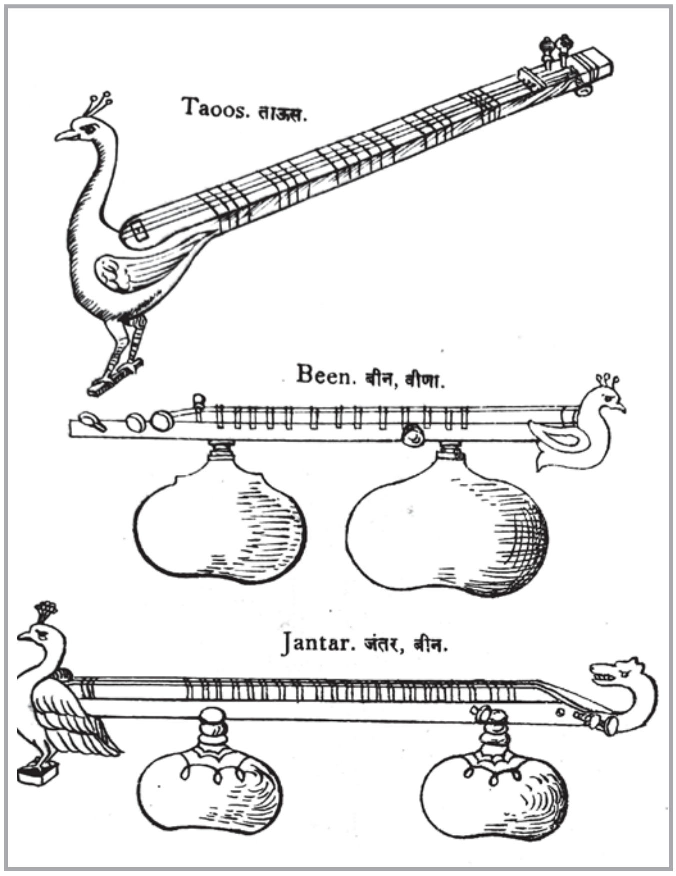
Taoos. ताऊस.
Been. बीन, वीणा.
Jantar. जंतर, बीन.

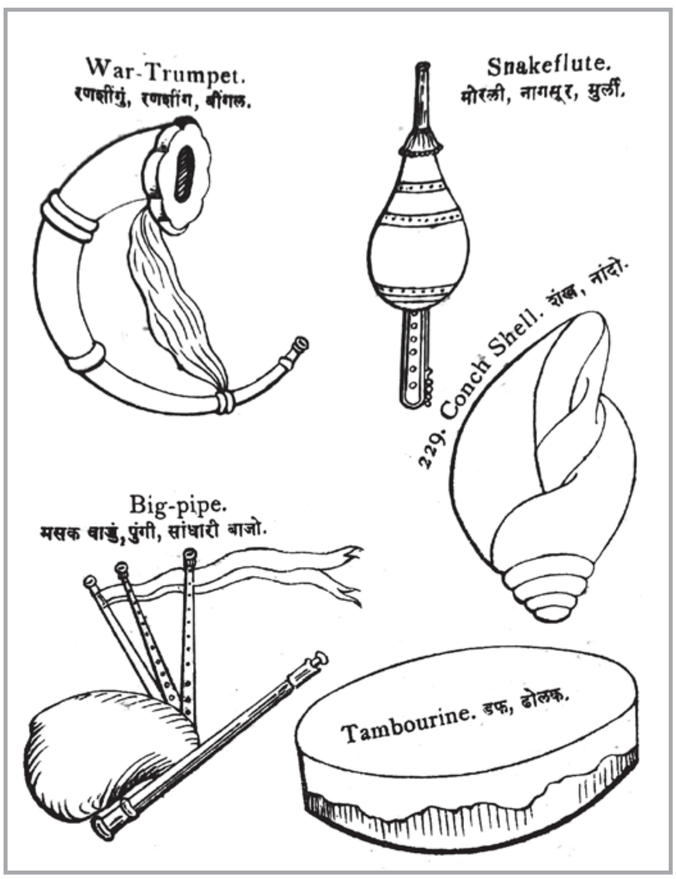
War-Trumpet.
रणशींगुं, रणशींग, बींगल.
Snakeflute.
मोरली, नागसूर, मुर्ली.
229. Conch Shell. शंख, नांदो.
Big-pipe.
मसक वाडुं, पुंगी, सांधारी बाजो.
Tambourine. डफ, ढोलक.

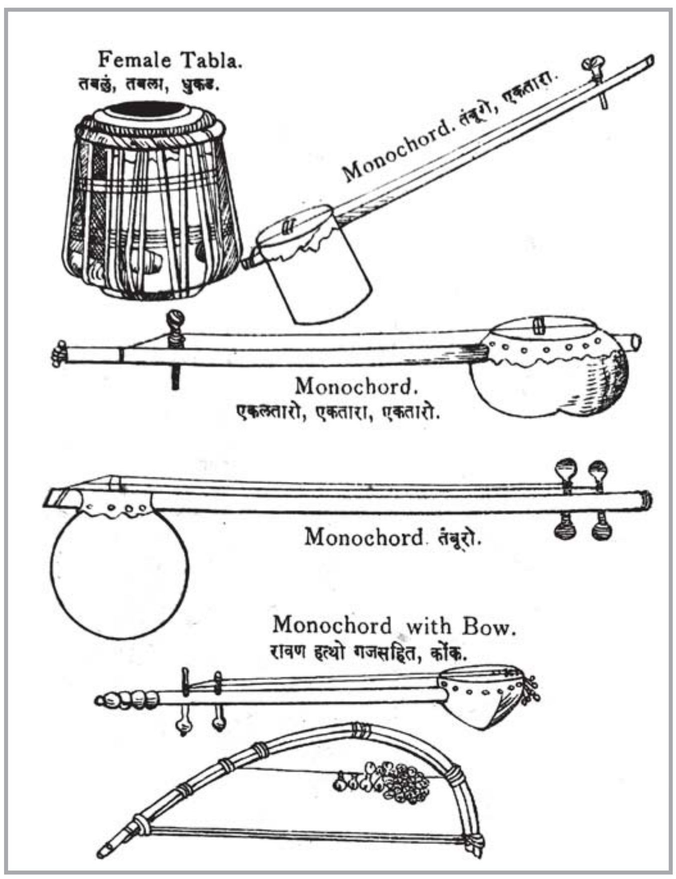
Female Tabla.
तबलुं, तबला, धुकड.
Monochord. तंबूरो, एकतारा.
Monochord.
एकलतारो, एकतारा, एकतारो.
Monochord. तंबूरो.
Monochord with Bow.
रावण हत्थो गजसहित, कोंक.

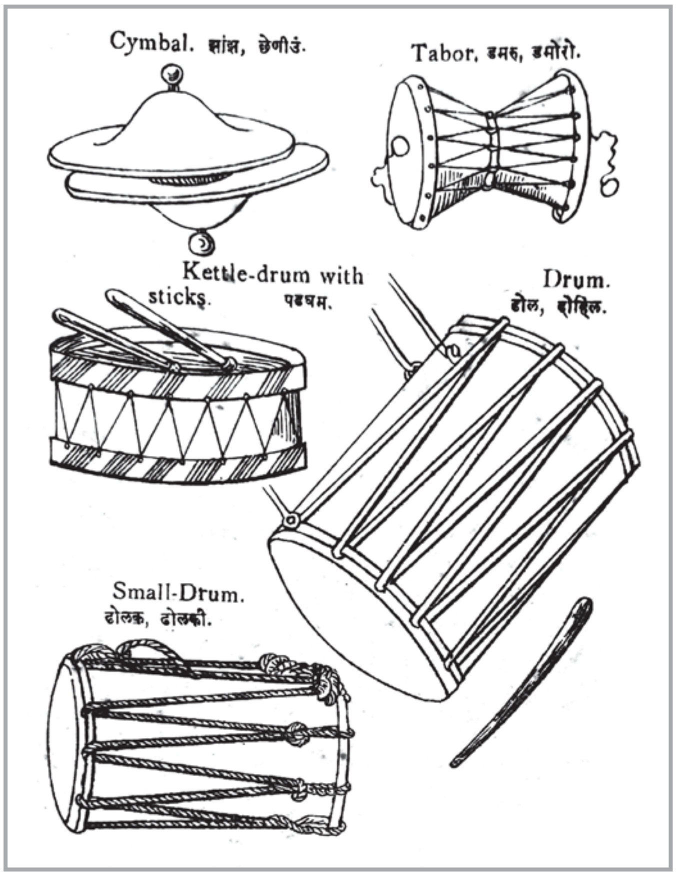
Cymbal. झांझ, छेणीउं.
Tabor. डमरु, डमोरो.
Kettle-drum with sticks. पडघम.
Drum. ढोल, ढोहिल.
Small-Drum. ढोलक, ढोलकी.

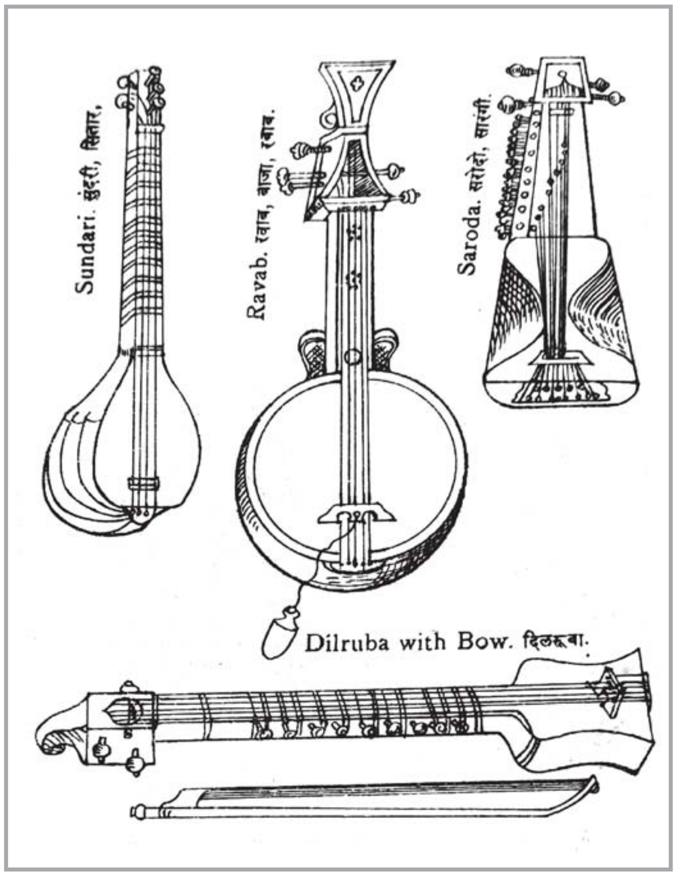
Sundari. सुंदरी, सितार,
Ravab. रबाब, बाजा, रबाब.
Saroda. सरोदे, सारंगी.
Dilruba with Bow. दिलरुबा.

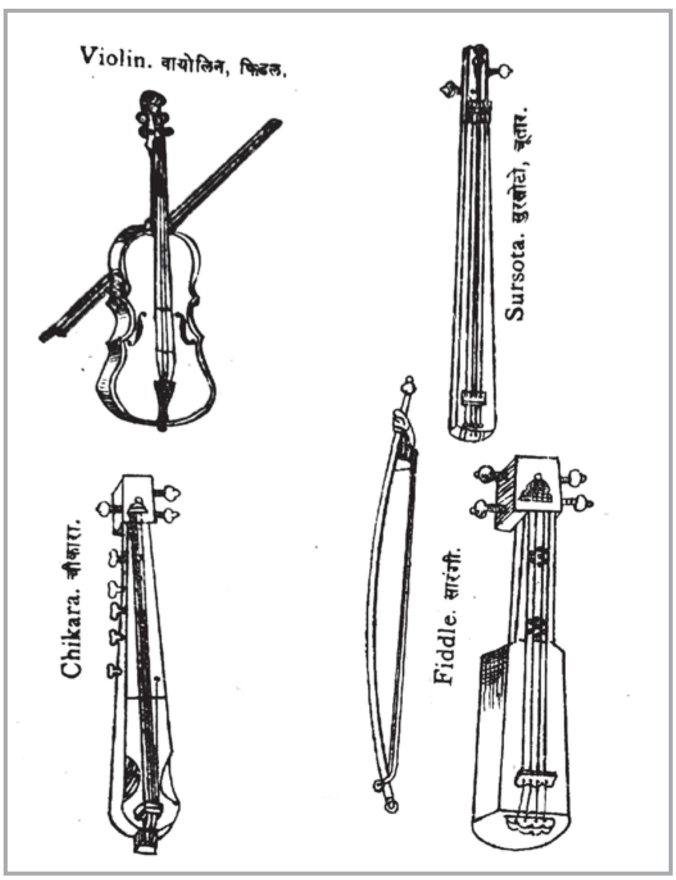
Violin. वायोलिन, फिडल.
Sursota. सुरसोटो, चूतार.
Chikara. चीकारा.
Fiddle. सारंगी.

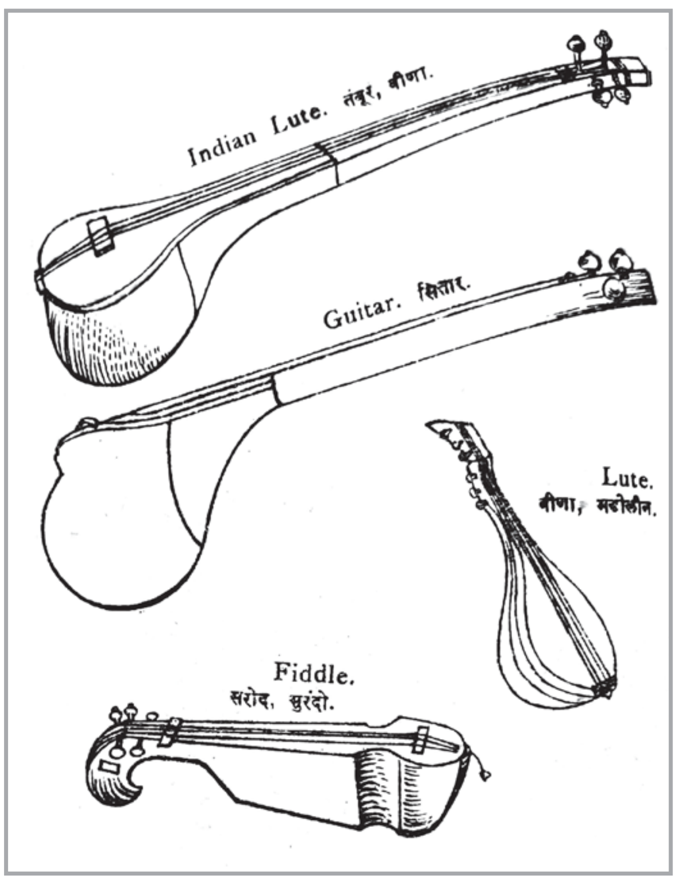
Indian Lute. तंबूर, बीणा.
Guitar. सितार.
Lute. बीणा, मडोलीन.
Fiddle. सरोद, सुरंदो.

Concertina.
कोन्सरटीना, वाजुं, हातबाजा.

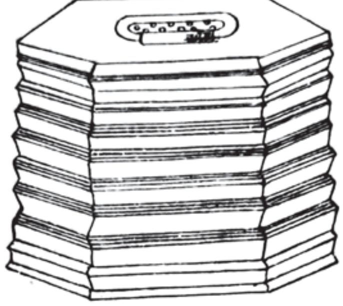

Accordion.
एकार्डियन वाजुं, हातबाजा.

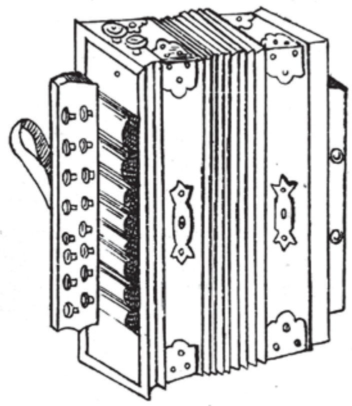

Harmonium.
हार्मोनियम, हार्मोनिओ.

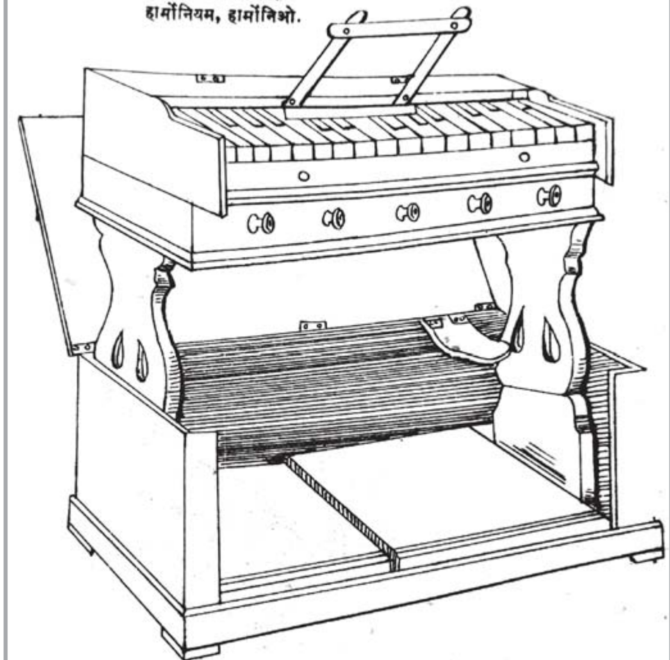

Phonograph.
फोनोग्राफ, स्वरधारण यंत्र.

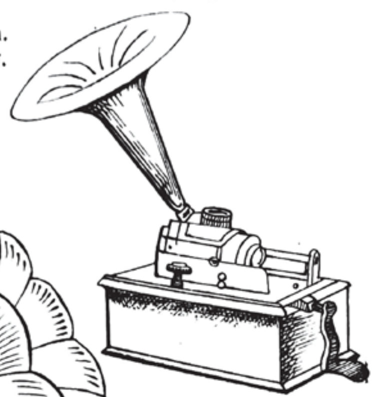

Gramophone.
स्वरधारण यंत्र, ग्रामोफोन.

Piano. पीयानो

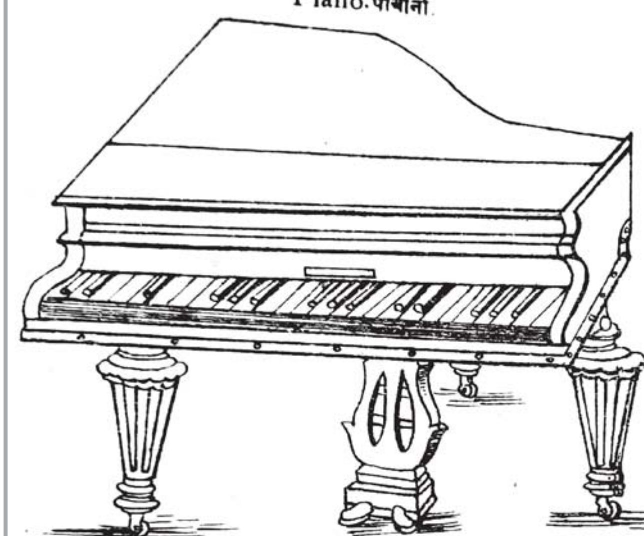

कला-चिन्तन

विलुप्त होती विरासत: राजस्थानी कठपुतली

चन्द्र मोहन
(स्तम्भकार)

राजस्थान की रेतीली धरती केवल किलों और महलों की विरासत ही नहीं संजोए हुए है बल्कि यहाँ की हवाओं में लोक कलाओं का एक जीवन्त इतिहास तैरता है। इन्हीं में से एक सबसे अनूठी विधा है 'कठपुतली'। लकड़ी (काठ) और गुड़िया (पुतली) के मेल से जन्मी यह कला महज निर्जीव काठ का नाच भर नहीं है बल्कि यह मारवाड़ की वीरता, राजस्थानी अस्मिता और सदियों पुरानी मौखिक परम्पराओं का एक चलता-फिरता संग्रहालय है। लगभग 1500 वर्ष पुरानी यह परम्परा आज वैश्वीकरण की चकाचौंध और डिज़िटल क्रांति के शोर में अपनी पहचान और अस्तित्व को बचाने के लिए एक मौन संघर्ष कर रही है।

कठपुतली कला की जड़ें 'भाट' समुदाय के कौशल में निहित हैं, जिन्होंने अपनी अंगुलियों के जादू से इस इतिहास को जीवन्त किया। लोक-कथाओं के अनुसार-इस कला का उदय उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियों के सम्मान में हुआ था। समय के साथ यह विधा राजपूताना के शौर्य को जन-जन तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम बनी। विशेष रूप से नागौर के अमर सिंह राठौड़ की गाथा इस कला का पर्याय बन गई। मुग़ल दरबार में स्वाभिमान की ख़ातिर सलावत खान का वध करने वाले अमर सिंह की वीरता को जब कलाकार द्वारा लकड़ी की पुतलियों के माध्यम से उकेरा जाता है तो दर्शक उस कालखण्ड में पहुँच जाते हैं। खेल की शुरुआत अनारकली के नृत्य से लेकर जादूगरों के हैरतअंगेज करतबों तक, यह मनोरंजन का एक संपूर्ण पैकेज रहा है। ढोलक की थाप और 'बोली' (बांस की सीटी) की तीखी आवाज़ों के बीच जब कलाकार दो पुतलियों के माध्यम से मूँछों पर ताव देते हुए तलवारबाज़ी का दृश्य दिखाता है, तो वह युद्ध-कौशल और मानवीय भावनाओं का चरम होता है।

तकनीकी दृष्टि से देखें तो राजस्थानी 'स्ट्रिंग पपेट' अपनी बनावट में बेजोड़ हैं। अरडू की हल्की लकड़ी को तराशकर बनाई गई इन पुतलियों की बड़ी आँखें और पारम्परिक गोटा-पट्टी वाले परिधान राजस्थान के रंग-बिरंगे जीवन को दर्शाते हैं लेकिन वर्तमान दौर में इस कला के स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव भी आए हैं। जहाँ पहले केवल 'अमर सिंह राठौड़' या पौराणिक कथाएँ ही मंच का आधार थीं, वहीं आज के कलाकार अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए समकालीन विषयों का भी सहारा ले रहे हैं। अब कठपुतलियाँ केवल राजा-रानियों की बात नहीं करतीं बल्कि वे डिज़िटल रूप में साक्षरता, जल-संरक्षण, कन्या-भ्रूण हत्या और स्वच्छता जैसे सामाजिक मुद्दों पर भी व्यंग्य करती हैं। आधुनिक दौर में 'पपेटरी' का उपयोग केवल मेलों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि इसे कॉर्पोरेट इवेंट्स, विज्ञापनों और शिक्षा के क्षेत्र में 'थेरेपी' के रूप में भी अपनाया जा रहा है। स्कूलों में इसके माध्यम से जटिल विषयों को सुगमता से समझाया जा रहा है, जो इस प्राचीन विधा की अनुकूलन क्षमता को दर्शाता है।

हालाँकि इन बदलावों के बावजूद संकट के बादल छंटे नहीं हैं। इस कला को केवल 'म्यूज़ियम शो-पीस' बनने से बचाने के लिए इसे पर्यटन सर्किट का अनिवार्य हिस्सा बनाना होगा। सरकार और समाज को मिलकर कठपुतली-कलाकारों को स्थायी रोज़गार का हिस्सा बनाना चाहिए और साथ ही हस्तशिल्प-मेलों में भी इन पुतलियों को सजावटी वस्तुओं के रूप में प्रमोट कर के कलाकारों की आर्थिक रीढ़ को मज़बूत किया जा सकता है। कठपुतली के वे धागे, जो हमारे गौरवशाली अतीत को वर्तमान की धड़कन से जोड़ते हैं, उन्हें टूटने से बचाना हमारी सामूहिक नैतिक ज़िम्मेदारी है। यदि ये धागे टूट गए, तो हम राजस्थान के एक जीवन्त इतिहास को हमेशा के लिए खो देंगे।

संपर्क : 1140 सेक्टर 21(हुडा मार्केट) पॉकेट सी ,
गेट नं. 2 के बगल में गुरुग्राम - 122016 मोबा. 9811467241

आलेख

लोक आस्था की रामलीला 'प्रेम प्रचारणी राम मंडली'

दिनेश सहगल

ऐसी लोक मान्यता है कि "रामलीला" की प्रथम संरचना रामचरित मानस के लोक महाकवि तुलसीदास जी ने ही की थी। उसके बाद पूरे भारत में रामलीलाओं के प्रदर्शन होना प्रारंभ हो गया। विशेष रूप से शारदीय नवरात्री में रामलीलाओं के प्रदर्शन करने का प्रचलन रहा, जो नवरात्री से प्रारंभ होकर दशहरे पर्व तक चलता था। आज भी यह क्रम निरंतर है भले ही रामानंद सागर की रामायण के पश्चात इसमें कुछ गतिरोध हुआ था किन्तु वह गतिरोध भी अब प्रायः शिथिल हुआ लग रहा है।

ऐसी ही एक रामलीला का प्रदर्शन अविभाजित भारत के पंजाब प्रांत जिला मियांवाली गांव पंचग्राही में होता रहा। उस रामलीला का नाम था 'प्रेम प्रचारिणी राम मंडली" यह रामलीला संवादशैली में प्रदर्शित होती थी। इसकी भाषा पर उर्दू और पंजाबी का मिलाजुला प्रभाव था। यद्यपि मैंने पंचग्राही गांव की उस रामलीला को वहाँ नहीं देखा। मेरा तो जन्म ही मालवा के नगर मनासा में हुआ। मेरे पिता डॉ. पूरन सहगल विभाजन के समय 12-13 वर्ष के किशोर थे किन्तु उन्हें उस रामलीला के विषय में पूरा स्मरण है। वे मुझे उस रामलीला की ख्याति सुना-सुनाकर स्वयं को अत्यंत प्रसन्नचित्त करते हुए कई स्मृतियों में खो जाते थे। आज भी वे उस रामलीला को नहीं भूले। अपनी स्कूली शिक्षा के गणेशोत्सव, विशेष रूप से स्त्री पात्रों में उनकी ख्याति आज भी उनके सहपाठी सुनाकर गद्गद् कर देते हैं।

विभाजन के बाद उस गांव के अधिकतर परिवार मनासा में स्थापित हुए। कुछ वर्षों के बाद जब उन्हें स्वयं के स्थायित्व का बोध हुआ तब उन्हें दशहरा और रामलीला का स्मरण होने लगा। प्रश्न था कि रामलीला को पुनः जीवित कैसे किया जाय? संयोग से उस प्रेम प्रचारिणी राम मंडली के लगभग सभी पात्र मनासा में ही बसे थे।

राम- रमेश छाबड़ा
लक्ष्मण - दिलीप वधवा
वशिष्ठ – डॉ. पूरन सहगल

सबने मिलकर अपने-अपने पात्रानुसार संवादों को याद करना प्रारंभ किया और फिर उसको एक पोथी पर लिखित रूप में दर्ज किया गया।

तब तक हिन्दी का ज्ञान किसी को भी पूरी तरह नहीं हो सका था। इस कारण उसका लेखन उर्दू जबान में किया गया। यह जिम्मेदारी पंडित चोथूराम जी शर्मा को सोंपी गई। इस प्रकार प्रतिदिन की लीला से प्रारंभ कर रावण वध और रामराज्य तक की लीलाओं का लेखा तैयार हो गया। उसके बाद पर्दे, पोशाखों और अन्य आवश्यक सामान सबके सहयोग से दिल्ली जाकर क्रय कर लिया किया।

इस प्रकार "राम कृपा कुछ दुर्लभ नाही" के अनुसार संकल्पवान और निष्ठावान समाज ने एक बार फिर "प्रेम प्रचारिणी राम मंडली" को तैयार कर लिया। पर्दों की चित्रावण कुकड़ेश्वर के प्रसिद्ध कलाधर्मी पेंटर साहब (रतन पेंटरजी) ने किया। वे स्वयं भी रामलीला से जुड़े पात्र थे। रामलीला का पहला मंचन मनासा के गाँधी चौक (मनासा) में किया गया। तब रामलीला के डायरेक्टर श्री लाला खुशराम सचदेव बने। पूर्व काल में इस रामलीला के डायरेक्टर श्री रामलाल जी ग्रोवर हुआ करते थे।

अगले वर्ष से रामलीला का मंचन प्रारंभ किया गया। यह कॉलोनी पंजाबी समाज की ही बसावट की आबादी वाली कॉलोनी है। श्री भगवानदास जी छाबड़ा ने एक कमरा खाली कर दिया। सामने विस्तृत मैदान था। एक वर्ष गाँधी चौक की रामलीला के प्रदर्शन से प्रेम प्रचारिणी की ख्याति खूब फैल गई थी। पूरा मैदान ठसाठस भरा रहता था। नारद मोह से लेकर दशहरा तक प्रेम प्रचारिणी की लीला देखने लोग अपने आसन संध्या से ही लगा जाते थे।

यदि मैं रामलीला के पात्रों के नाम गिनाना शुरु करूँगा तो बहुत लम्बी सूची हो जाएगी। फिर कुछ नाम छूट जाने पर उनकी नाराजगी भी झेलनी पड़ेगी।

"प्रेम प्रचारिणी राम मंडली" केवल मनोरंजन का साधन नहीं थी। उस आयोजन में समाज की आस्था जुड़ी थी। वह एक अनुष्ठान था। एक पूजा थी। एक निष्ठा थी। राम जन्म जब

दशरथ का मेकअप करते "दिनेश सहगल"
निर्देशक - डॉ. पूरन सहगल

प्रेमप्रचारिणी राममण्डली मनासा का मंच
निर्देशक – डॉ. पूरन सहगल (सूत्रधार)
कलाकार - रमेश छाबड़ा (नटी)

होता था तब मंच ही नहीं पूरा दर्शक मैदान "राम महोत्सव" में आनंदित होकर नृत्यमय हो उठता था। घंटे घड़ियालों के और शंख ध्वनियों से पूरा क्षेत्र गुंजायमान हो उठता था। माताएँ मंच पर आकर मनोतियाँ लेती थीं। इसी प्रकार राम राज्यारोहण की लीला के समय नव शिशुओं को राम-सीता की गोदी में डालकर उनकी दीर्घायु और उज्जवल भविष्य के लिए आशीर्वाद लेती थीं। नववधुएँ धोक लगाकर अपने अटल सौभाग्य की कामना करती थीं।

राम जन्म के समय ली गई मनौतियों का चढ़ावा चढ़ता था। इस प्रकार एक आस्था और निष्ठा का दिव्य आयोजन दस दिनों की आस्था अनुष्ठानिक परंपरा का निर्वाह करता हुआ पूर्ण होता था। परस्पर बधाइयों का आदान-प्रदान होता थ। मिठाइयाँ प्रसाद बाँटा जाता था।

एक परम्परा यह भी। जो पात्र राम-लक्ष्मण, सीता और हनुमान का स्वरूप धारण करते थे उन्हें दशहरे तक आयोजन स्थल पर ही निवास करना होता था। वे परिवार में नहीं जाते थे। जब वे स्वरूप वेश में होते तब उन्हें उसी नाम से संबोधित किया जाता था। यथा- रामजी, सीताजी, हनुमानजी, लक्ष्मणजी। मेकप रूम में उनकी उपस्थिति पर अन्य पात्र खड़े ही रहते थे। ऐसा था प्रेम प्रचारिणी राम मंडली का दस दिवसीय अनुष्ठानिक आयोजन। जो अब केवल स्मृति बनकर रह गया है।

एक रात्री लाला खुशीराम जी ने अपने सहायक डॉ. पूरन सहगल को रामलीला प्रदर्शन के मध्य ही डायरेक्टर का भार सौंप कर मुक्ति प्राप्त कर संरक्षक के रूप में अपने को मान्य कर लिया। तब मैं उस मंडली में मेकपमेन की जिम्मेदारी सम्भाल रहा था।

रामानन्द जी की रामायण के प्रसारण के उपरांत धीरे-धीरे रामलीलाओं के प्रति रुचि घटती गई अन्ततः प्रेम प्रचारिणी राम मंडली को भी विराम देना पड़ा। नगर में एक रामलीला और हो रही थी उसे भी विराम दिया गया। दो वर्षो से पुनः नगर की रामलीला पुनः प्रारंभ हो गई है किन्तु प्रेम प्रचारिणी का प्रदर्शन दुबारा नहीं हो पाया। सारे पर्दे व सामान पेटियों में बंद पड़ा है। केवल स्मृतियाँ बाहर हैं। प्रत्येक नवरात्री पर उसके स्वर्णकाल की स्मृति अवश्य हो आती है।

डॉ. सहगल जी स्वयं मंच के मंजे हुए कलाकार रहे हैं। वे स्वयं भी मेकअप करके ही तैयार रहते थे। अचानक यदि किसी पात्र का अभिनय करना पड़े तब सहगलजी तत्काल उसका स्वरूप धारण कर मंच पर उपस्थित हो जाया करते थे।

लोक मंचों पर डॉ. सहगल जी ने कई मंचों पर विभिन्न पात्रों को जीवित किया। अपने युवाकाल में उन्होंने स्त्री पात्रों का भी बखूबी निर्वाह किया। उनके मेकअप वाले स्वरूप पर कई बार शर्ते लगती थी कि, यह तो कोई सचमुच की स्त्रीपात्र ही है। आज उनकी आयु 90 वर्ष हो चुकी है। वे 13 जनवरी 2026 को 91 वर्ष में प्रवेश करा है। किन्तु मंचों से उनका मोह अब भी जुड़ा है। वे यदाकदा ऐसे प्रदर्शनों को देखने अवश्य जाया करते हैं।

लोकमंचों से न सही लोक साहित्य से तो इनका जीवन ही जुड़ा है। वे आज भी अपनी शोधयात्राओं को निरंतर बनाए हैं। प्रतिदिन 5-6 बजे जागकर स्नान-पूजा मंदिर व पाठ-जाप से मुक्त होकर वे अपनी टेबल पर बैठ जाते हैं। प्रतिदिन कुछ तो लिखना ही है। अगले दिन के लेखन का विषय रात्री सोते समय निर्धारित कर लेते हैं।

एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था- "जिस प्रकार कृष्ण की दो माताएँ थी देवकी और जसुमति। उसी प्रकार मेरी भी दो माताएँ हैं पंजाबी और मालवी। उन्होंने इसी साक्षात्कार में स्पष्ट किया था। पंजाबी मेरी मातृभाषा है। मालवी धर्मभाषा है और हिन्दी मेरी राष्ट्रभाषा है। मैं तीनों का समान रूप से सम्मान करता हूँ। यही मेरा धर्म भी है। राम मेरे धर्म में है और कृष्ण मेरे मर्म में। राष्ट्र से बड़ा धर्म नहीं होता। यह सदा स्मरण रहे। राष्ट्र सुरक्षित रहेगा तभी धर्म भी सुरक्षित रह सकेगा।"

अभी इसी सप्ताह डॉ. पूरन सहगल जी की 111 वीं पुस्तक प्रकाशित होकर आई है। लेखन निरंतर है। ईश्वर करे उनका यह क्रम निरंतर बना रहे। उनका आशीर्वाद और मार्गदर्शन हमें मिलता रहे। राम प्रभु से यही प्रार्थना है।

स्वतंत्र लेखक एवं रामलीला के मेकपमेन
श्री राम मंदिर के पास, मनासा
मो. 8839445675

■■■

आलेख

तुर्रा-कलगी लोकनाट्य में नृत्य परम्परा

शिव मृदुल

तुर्रा कलगी लोकनाट्य दक्षिणी राजस्थान की एक गीतिनाट्य की प्राचीन लोकप्रिय परम्परा है, जिसका मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र तक प्रभाव रहा है। मध्यप्रदेश में इसको 'माच का ख्याल' तथा महाराष्ट्र में इसे 'तमाशा' या 'ख्याल' कहा जाता है। जनसमूह इस विधा ख्याल की प्रस्तुति में बहुत ही रुचि के साथ भाग लेता है तथा सक्षम लोग इसमें आर्थिक सहयोग देकर इस कला को जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, जबकि राज्य सरकारें इस कला की ओर उदासीन हैं। विशेष रूप से दक्षिणी राजस्थान की लोकानुरंजन की यह नाट्यविधा विलुप्ति के कगार पर है, जबकि मध्यप्रदेश में राज्य सरकार इस नाट्यकला को जीवित रखने की ओर प्रयत्नशील है। तुर्रा कलगी की इस लोकनाट्य शैली के प्रारम्भिक स्वरूप में नृत्य का स्थान नहीं के बराबर था किन्तु समय-समय पर आये परिवर्तन के साथ यह नृत्यप्रधान कला बन गई, जिसकी आज भी अनूठी पहचान है।

लोकनाट्य की इस परम्परा का शुभारम्भ दक्षिणी राजस्थान (उदयपुर संभाग) में स्थित चित्तौड़गढ़ में सोलहवीं शताब्दी से माना जाता है। इसके संस्थापक अर्थात् जनक श्री तुखनगिरि और शाहअली माने जाते हैं। ये दोनों मस्तमोला यायावर विरक्त और घनिष्ठ मित्र थे। ये चंग लेकर गाँव-गाँव घूमते और सायंकाल अथवा रात्रि में बैठकों का आयोजन करते थे। इनका उद्देश्य जनमानस में शाश्वत जीवनमूल्यों के निर्वाह हेतु सामाजिक सौहार्द की स्थापना होता था। इनके कथानक आध्यात्मिक आस्थाबोध के साथ पौराणिक आख्यानों पर आधारित होते थे। ये आख्यान श्रोताओं में जिज्ञासा उत्पन्न करने की दृष्टि से लोकजीवन से जुड़ी समस्याओं का प्रश्नोत्तर शैली द्वारा निरूपण करते थे। इन आख्यानों के पद्यात्मक और गेय संवाद भरपूर लोकानुरंजन करते थे। अतः इसे गीतिनाट्य की परम्परा कहा जाता है।

ऐसा माना जाता है कि मध्यकाल में उक्त दोनों मित्र, ऊपर वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति में गाँव गाँव में सामाजिक सौहार्द की अलख जगाते हुए, अकबर के दरबार में दिल्ली पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया। अकबर इनकी रोचक प्रस्तुति से बहुत प्रभावित हुआ और उसने तुखनगिरि की चंग में अपने पगड़ी में लगा **'तुर्रा'** तथा शाहअली की चंग में **'कलगी'** का उपहार प्रदान कर दिया। तब से तुखनगिरि तुर्रा के तथा शाहअली कलगी के संस्थापक माने जाने लगे। कालांतर में इस नाट्यविधा के समर्थकों ने चित्तौड़गढ़ में तुर्रा का तथा घोसुण्डा में कलगी का अखाड़ा स्थापित किया, जो आज भी अपनी परम्परा के लिये विख्यात हैं।[1] इनके उस्ताद की परम्परा में चित्तौड़गढ़ में श्री चैनरामजी गौड (तुर्रा) तथा श्री ख्वाजाबेगजी (खाजु उस्ताद कलगी) ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इनके द्वारा रचित लगभग सौ ख्याल होने का अनुमान है। उनके वंशज क्रमशः श्री प्रकाशजी गौड़ तथा श्री अकबरबेगजी आज भी उस यश को ऊँचाई प्रदान कर रहे हैं।

तुर्रा कलगी नाट्यविधा दृश्यकाव्य से सम्बंन्धित है। इसमें मंचसज्जा, कथानक, पात्र-चयन, वेशभूषा, संवाद, विषयवस्तु के अनुसार हावभाव सहित अभिनय तथा समाज में शाश्वत जीवनमूल्यों की स्थापना के किसी विशिष्ठ उद्देश्य के साथ प्रस्तुति की मुख्य भूमिका होती है, जो उद्देश्य एवं कथानक को जीवन्त और श्लाघनीय बना देती है। लोकनाट्य की इस अनूठी शैली का उद्भव और विकास मध्यकाल में जैनाचार्यों के गढ़ रहे दक्षिणी राजस्थान में स्थित चित्तौडगढ़ में जैनधर्म के धर्मप्रचार अभियान में प्रयुक्त प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में 'जननाटक पद्धति रास' की परम्परा से सोलहवीं शताब्दी में हुआ है।[2]

उस समय तक रास की परम्परा 'ताल रास' (श्रृंगार रस प्रधान कथानक पर आधरित रास)[3] तथा 'लकुटरास' (हाथ में लट्ठ लेकर रास) का रूप ग्रहण कर चुकी थी, जिनमें स्त्री और पुरुष भाग लेते थे। किन्तु जैन सन्यासियों ने रास की उक्त प्रचलित पद्धतियों में कुछ संशोधन के साथ जैनधर्म के प्रचार हेतु उपयोग में लिया। 'लकुटरासक' में हिंसा की सम्भावना बनी रहती थी। अतः जैनाचार्य जिनवल्लभ सूरि ने खतरगच्छ मंदिरों में उक्त दोनों रास परम्परा को प्रतिबंधित कर दिया। इनको चित्तौड़गढ़ के महावीर चैत्य में देवभद्र सूरि ने आचार्य पद प्रदान किया था। इन्होंने वि. सं. 1167 में दस सहस्त्र नये श्रावक बनाये थे।[4] अतः जैनाचार्य धर्म प्रचार के लिये जनभाषा में रचना करने लगे थे। वे अपनी प्रस्तुति में प्राकृत, अपभ्रंश, गुर्जरी तथा राजस्थानी मिश्रित भाषा का उपयोग करते थे। इस प्रकार शनैः शनैः बारहवीं शताब्दी तक की इस नाट्यविधा में रास, रासक (हास्यरस एंकांकी), प्रेक्षणक (नृत्यप्रधान एकांकी) तथा हल्लीसक (गीतिनाट्य) का प्रचलन बढ़ गया। तेरहवीं शताब्दी में मुख्यतः गीतिनाट्य की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी, जिनके

कथानकों में हास्य और श्रृंगाररस के साथ लोकजीवन में उदात्त जीवनमूल्यों की संस्थापना का उद्देश्य समाहित था। यह दौर सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चलता रहा।

इस बीच चित्तौड़गढ़ क्षेत्र में तुखनगिरि तथा शाहअली **'तुर्रा'** तथा **'कलगी'** के संस्थापक के रूप में दिल्ली से लौट चुके थे। उन्होंने अपनी बैठकों की परम्परा को हल्लीसक की गीतिनाट्य की रास परम्परा से जोडते हुए लोकजीवन में आध्यात्मिक आस्थाबोध के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण में शाश्वत जीवनमूल्यों के निरूपण का प्रयास द्वारा उसी उदात्त सेवाभाव की ज्योति जलाए रखी और कई स्थानों पर अपने अखाड़े स्थापित कर दिये'[5] और उनके आयोजनों का क्रम चलता रहा। उन आयोजनों के प्रारम्भिक काल में रात्रि में रोशनी के लिये मशाल का प्रयोग होता था तथा चौपाल या किसी बरामदे या दालान में ऐसी बैठको का आयोजन होता था। कालांतर में ये गैस (पेट्रोमेक्स) की रोशनी में होने प्रारम्भ हुए। वर्तमान में इस गीतिनाट्य की प्रस्तुति विद्युत सज्जा और ध्वनिविस्तारक यंत्रों के साथ खुले मंच पर होती है।

इन ख्यालों की प्रस्तुति के लिये तख्तों से बना एक खुला मंच तैयार किया जाता है, जिसे मण्डप की भाँति रंगीन कपड़ों तथा चमकीले कागज की फर्रियों से सजाया जाता है। इस मंच से कुछ दूर प्रांगण की परिसीमा पर कुछ ऊँचाई पर एक रंगभवन (Green room) बनाया जाता है जिसमे पात्र और उनके साथी अपना श्रृंगार करते हैं और उनकी बारी आने पर वे वहाँ से अपने परिचय का संवाद बोलकर नीचे उत्तरते हैं।

इस गीतिनाट्य की विषयवस्तु का चयन सामान्यतया पौराणिक आख्यानों में वर्णित धीरोदात्त नायक नायिका में से किया जाता है, जिसका उद्देश्य उनकी जीवनशैली के माध्यम से अनुचित व्यवहार की उपेक्षा और समाज में प्रचलित उचित सर्वसम्मत शाश्वत जीवनमूल्यों का निरूपण होता है। ये कथानक सामान्यतया प्रेम-प्रसंगों की पेचीदा गुत्थी पर आधारित होते हैं, जो समाज की ज्वलंत समस्याओं, जैसे बालविवाह, बेमेल विवाह, बहुविवाह प्रथा, कुलीन परिवारों में चलने वाले षड्यंत्र आदि की विषवस्तु होती है। इनमें मानसिक उद्वेलन, लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास, युक्तियों पर चिन्तन, बौद्धिक विलास, हँसी-ठिठोली करने, पहेली पूछने, आदि का समावेश होता है, जो दर्शकों और श्रोताओं को कथानक से जोड़े रखता है।

इस नाट्यविधा के पात्रों (कलाकारों) की वेशभूषा परम्परागत ही होती है। प्रधान पुरुष पात्र (नायक) साफा, शेरवानी, और चूड़ीदार पाजामा पहनता है। साफे पर मुकुट होता है। उसकी कमर में कमरबंद और तलवार बंधी होती है। उसके साथियों के हाथ में रंगीन चमकदार कागजों से बनी छड़ियाँ होती हैं। प्रधान महिला पात्र (नायिका) कुलीन महिला की पोशाक पहिने हुए शीश पर मुकुट धारण किये अपनी सखियों के साथ रंगभवन से बाहर आती है। पुरुष और स्त्री (प्रधान नायक और नायिका) पात्र उस रंगभवन से बाहर आकर अपना परिचय देते हैं। उसके बाद वे मंच से उतरते हैं। नायिका की सखियों के हाथ में भी रंगीन छड़ियाँ होती है। सभी पुरुष और स्त्री पात्र मंच पर आकर सबसे पहले अपने अखाड़े के उस्ताद और गुरुजनों के चरण स्पर्श करते हैं। यह एक परम्परा है।

इस गीतिनाट्य का शुभारम्भ रात्रि के नौ बजे के लगभग शुभ चौघडियें में गणपति वंदना के साथ होता है, जिसमें लगभग सभी कलाकार उपस्थित रहते हैं। इसमें गणपति वंदना के साथ स्थानीय देवी देवताओं की, आराध्यदेव एवं गुरुजनों की स्तुति और वंदना होती है। इसे 'भावना' कहते हैं। भावना के कतिपय उदाहरण निम्ननुसार है-

पं. चैनराम गौड कृत 'रूप बंसत' ख्याल की भावना-

करोजी गणराज आज आनन्द, कृपा कर पार उतारो छंद।[6]

श्री रामसुख सोनी कृत 'राजा विक्रमादित्य-चोबोली' ख्याल की भावना-

मनाऊँ गणपति गवरी नन्द, कृपा कर पार उतारो छंद![7]

भावना की प्रस्तुति के बाद रंगभवन के बाहर खड़ा होकर खेल का प्रधान नायक और उसके कुछ देर बाद प्रधान नायिका अपने परिचय की टेर के साथ प्रस्तुत होते हैं। रात्रि के सन्नाटे में यह आवाज दूर-दूर तक सुनाई पड़ती है। उसके बाद वे नीचे उतर कर मंच पर आते हैं तथा गुरुजनों के चरण स्पर्श की औपचारिकता के बाद पात्र उनसे सम्बन्धित प्रस्तुति प्रारम्भ करते हैं और कथानक आगे बढ़ता है। प्रधान नायक जिन पंक्तियों से अपना परिचय देता है, उसे टेर कहते हैं। परिचय की ऐसी टेर के कुछ उदाहरण निम्नानुसार है-

पं. चैनराम कृत 'रूप बसंत ख्याल में राजा चंद्रसेन कहता है-

आये जी हम चंद्रसेन बलवंत, जिन्हों के सुत दो रूप बसंत।

श्री रामसुख सोनी कृत 'राजा विक्रमादित्य चौबोली में विक्रमादित्य अपना परिचय देते हुए कहता है-

आया महाराजा नगर उज्जैन का, विक्रम तपधारी !

'तुर्रा कलगी का विवाह' ख्याल में तुखनगिरि तथा शाहअली दोनों मित्रों का परिचय-

आये हम फक्कड़ दोनों संत, तुखनगिरि शाहअली गुणवन्त ![8]

परिचय की इन टेरों में सामान्यतया सतरहवीं या कभी-कभी उन्नीसवीं मात्रा लघु होती है।

इस सम्पूर्ण कथानक के संवाद पद्यात्मक तथा गेय होते हैं, जिनमें अनुप्रास अलंकार की छटा समा बाँध देती है। ये संवाद इतने चुटीले तथा बहुअर्थी होते हैं, जिनमें सरस आंगिक चेष्टाएं (लटके झटके) चार चाँद लगा देती हैं। दर्शक और श्रोता उल्लासित होकर समवेत स्वरों में दाद देते है।

मंच पर प्रधान नायक के सम्पूर्ण परिचय और विशेषताओं की प्रस्तुति के बाद रंगभवन से प्रधान नायिका अपनी टेर के साथ प्रस्तुत होती है। इन गीतिनाट्यों के कथानक प्रेम-प्रसंग की पेचीदा गुत्थी के साथ विषयवस्तु को विस्तार देते हैं। सामान्यतया ये गीतिनाट्य सुखांत ही होते हैं, किन्तु प्रेम

प्रसंग की यह मनोवैज्ञानिक गुत्थी सभी श्रोताओं और दर्शकों को प्रस्तुति से जोड़े रखती है। नायिका के बोल अधिक संवेदनशील और पेचीदा होते हैं। उदाहरण के लिये 'राजा विक्रमादित्य-चोबोली' ख्याल में विक्रमादित्य की पटरानी अपने परिचय की टेर में कहती है-

हूँ पटरानी नगर उज्जैन की, रहूँ रंगमहल में।'[9]

वह जब बाग में घूमने जाती है और वहाँ आई हुई सेठानी का हार देखकर रानी के मन में आभूषण प्रेम जागृत हो उठता है तथा महल में आकर राजा से वैसा ही हार उसके लिये भी मंगवाने का आग्रह करती है और कहती है-

रानी- मेरा तड़के नाजुक जीव, भूप सुन लीजै।
वह हार अनोखा मुझको मंगवा दीजै ।। [10]

हार के संबंध में राजा सेठ से पूछता है तो पता लगता है कि वह हार चोबोली का था जिसे खापरिया चोर चुराकर लाया था। राजा खापरिया चोर को बुलाकर हार प्राप्त करने की युक्ति पूछता है। इसके बाद रानी राजा से पुनः पूछती है तो राजा कहता है-

राजा- **प्रण लिया दिल ठान, प्यारी हार हजारी लाऊँगा।**
हार पहनने वाली नार को व्याहकर तुझे दिखाऊँगा ।।

रानी- **प्राणनाथ प्राणों से प्यारे, यह क्या वचन सुनाते हो?**
हार लेने जाते हो या नार दूसरी लाते हो?[11]

इस प्रसंग के बाद रंगमहल से वोबोली टेर के साथ प्रस्तुत होती है।

पुत्री हूँ राजा सिंह सुजान की, मेरा नाम चोबोली ![4]

इसी प्रकार 'तुर्रा कलगी के विवाह' ख्याल में तुखनगिरि और शाहअली अपने तुर्रा का तथा कलगी का परिचय देते हुए कहते हैं

शाहअली - **है आदि शक्ति अवतार हमारी कलगी।**
सब सृष्टि रचावनहार हमारी कलगी।।

तुखनगिरि- **है ओम शब्द ओंकार हमारा तुर्रा।**
तेरी कलगी का सरदार हमारा तुर्रा ।।[12]

तुर्रा एक दिन अपने साथियों के साथ कलगी के बगीचे में जाकर विश्राम करता है। उसे देखकर कलगी मोहित हो जाती है और दासी को एक प्रेमपत्र लिखकर देती है,। जब दासी वह पत्र तुर्रा को देती है, तो वह कहता है-

तुर्रा- **तुम कौन घरों की नार यहा क्यों आई?**
यह प्रेम भरा परवाना किसका लाई?

दासी- **यह प्रेम-पत्रिका कलगी ने पहुँचाई।**
इसलिये बुलाने दासी आपको आई।।[13]

श्री जीवणजी दर्जी (निम्बाहेड़ा) कृत भक्त ध्रुव के ख्याल में राजा उत्तानपाद अपनी पटरानी सुनीति से कोई संतान न होने के कारण जब दूसरी शादी सुरुचि से करता है और जब वह उसे डोली से उतरने के लिये कहता है, तो वह कहती है-

मैं कहूँ पियाजी, आप अरज सुन लीजै।
डोली से तब उतरूँ, सौत अलग कर दीजै ।।

कामातुर उत्तानपाद पटरानी को अलग कर अपने बाग में बने महल में भिजवा देता है। उसके कुछ दिनों बाद वह एक रात्रि में उससे मिलने के उस महल में जाता है और पटरानी से द्वार खोलने के लिये कहता है, तो वह लोकव्यवहार और भावी सम्भावनाओं से सचेत होकर कहती है-

ओ लोयणगढ़ के राव, चूक गये दाव, न तुझसे बोलूँ जी!
चल हट दूर यहाँ से, खिड़की न खोलूँ जी!!

ऐसे ख्याल में ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती जाती है, संवाद अधिक सरस और रोचक होते जाते हैं। ख्याल के रचनाकार रात्रि के समय में गाई जाने वाली रागों का ध्यान रखते हुए, अपनी कथनकला में उन रागों को समाहित करते है। इनमें लावणी बड़ी कडी, छोटी कडी, रागिनी, रेखता, रसिया, चुन्दड़ी, मंडावरी, मारवाड़ी, शेर, सिन्धु, तिलौना, बणजारी, खैच आदि रागों का प्रयोग होता है।

सम्पूर्ण कथानक में पात्रों के संवाद की प्रस्तुति के तत्काल बाद शहनाई और हारमोनियम की सुमधुर लय के साथ, ढोलक और तबले की थाप की संगति के साथ उस संवाद की लयात्मक आवृत्ति की जाती है। उस अवधि में पात्रों द्वारा मंच पर नृत्य किया जाता है। सभी पात्रों के पाँवों में घुंघरु बंधे होते हैं। इनके नृत्य को शास्त्रीय नृत्य तो नहीं कहा जा सकता है, फिर भी यह किसी नृत्य से कम नहीं है। संवाद की पक्तियों के आकार, भाव, प्रस्तुति की अन्तर्भावना, उल्लास आदि मनोभावों के साथ यह नृत्य बदलता रहता है। यह बहुत ही सहज नृत्य होता है। स्त्री और पुरुष पात्रों की आंगिक चेष्टाओं में भी अंतर होता है। इस नृत्य में उछल-कूद अधिकतर होती है। पुरुष पात्र कभी अपने स्थान पर ही खड़े-खड़े अपने पाँवों को हिलाते हुए हाथों की छड़ी को घुमाते हैं, कभी गोल घूमते हैं। उल्लासपूर्ण संवाद की पंक्ति के साथ पात्र इतने जोर से मंच पर उछलते हैं कि तख्ते पर धम-धम की आवाज होती है। पाँवों में बंधे घुंघरु इसमें अनूठी झनकार भर देते हैं। कभी पात्र हाथों और बाँहों को फैलाकर उनमें कम्पन्न के साथ अभिनय करते और नाचते हैं। कथानक का प्रधान पात्र हाथ की तलवार को कभी हवा में लहराता है तो कभी दोनों हाथों में पकड़कर नृत्य करता है। उसके सभी सखा प्रधानपात्र की आंगिक चेष्टाओं का अनुकरण करते है। वे कभी दुमकचाल से आगे बढ़ते हैं तो कभी पीछे की ओर पाँवों को हिलाते हुए चलते हैं।

महिला पात्रों के नृत्य में अदा अंदाज के साथ हाथ, कमर, आँख आदि की अप्रत्याशित आंगिक चेष्टाएं (लटके-भटके) सारे माहौल में उल्लास भर देती हैं और जनसमुदाय के समवेत स्वर से पूरा परिवेश आनन्दित होकर गूँ उठता है। नृत्य में नायिका की आंगिक चेष्टाओं का उनकी सखियाँ भी अनुकरण करती हैं। मंत्रमुग्ध दर्शक और श्रोता अपने स्थान से हिलते तक नहीं, वे सारी रात बैठे रहते हैं और सुबह हो जाती है।

अंत में ख्याल समापन की घोषणा के साथ कोई उदार हृदय व्यक्ति सभी पात्रों, सहयोगियो और अखाडे के उस्ताद को अपने निवास पर आमंत्रित करता है। वह उनका यथोचित सम्मान करता है, उन्हें साफा बंधवाता है तथा भोजन करवाता है। इस प्रकार तुर्रा-कलगी की यह अनूठी लोककला दक्षिणी राजस्थान में अपनी पहचान बनाये हुए है।

सम्पर्क: बी 8, मीरानगर चित्तौड़गढ़ (राज.)
मो. 95301 26462 ई. मेल shivmridul@gmail.com

---

[1] चित्तौडगढ़ में गम्भीरी नदी के किनारे रुण्डेश्वर महादेव में तुर्रा का अखाड़ा है. जिसे श्री गब्बूतरालजी गौड़ ने आज से लगभग 450 वर्ष पूर्व स्थापित किया था। इस अखाड़े के अब तक हुए उस्तादों ने जीवन मूल्यों की संस्थापना के उद्देश्य से लोकानुरंजन के कई ख्याल लिखे है और मचित किये गये है। इनमे से चोबाली तथा तुर्रा कलगी की शादी प्रकाशित है। शेष की पाण्डुलिपियाँ अखाड़े में उपलब्ध हैं। धोसुण्डा स्थित कलगी के अखाड़े में ख्याजा अकबरबेग के पास भी कई ख्याल की पाण्डुलिपियाँ है। उन्हें प्रकाश में लाये जाने की आवश्यकता है। ये ख्याल इतनी अधिक संख्या में लिखे हुए हैं कि इन पर कई विधाओं में शोध की विपुल सम्भावना है।

[2] संस्कृत नाटकों के विकास के क्रम में भास के 'बालचरित' नाटक से श्रीकृष्ण और गोपियों के रास की, बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में नायक और नायिका के उदात चरित्र की प्रस्तुति की विकसित परम्परा के बाद महाराज हर्ष ने जीमूतवाहन के आत्मबलिदान की कथा को जनसाधारण में प्रचारित करने के लिये नागानन्द नाटक की रचना की, जिससे 'जननाटक पद्धति रास' का प्रदुर्भाव हुआ, जिसे जैनाचार्यों ने धर्म प्रचार अमियान में अपनाया। देखें हिन्दी नाटक उद्भव और विकास (वि. स. 2011), दशरथ ओझा. पृष्ठ 76 से 79

[3] इसी परम्परा ने बज की लट्ठमार होली का रूप ग्रहण कर लिया है, जो आज तक प्रचलन में है।

[4] देखे वही, पृष्ठ 70

[5] ये अखाड़े आज तक चित्तौड़गढ़, घोसुण्डा, सावा, निम्बाहेड़ा, रानीखेड़ा, कनेरा, जावद, अठाना, रतनगढ़, जाट, काकरिया तलाई, बस्सी, मंगलवाड़, बड़ीसादड़ी, नीमच, मल्हारगढ आदि स्थानों पर चल रहे हैं।

[6] पं. चैनराम गौड कृत रूप बसंत ख्याल मंच पर अनेक बार प्रस्तुत हुआ है तथा अब तक भी होता रहता है। यह खेल अप्रकाशितहै।

[7] कृरामसुख सोनी कृत यह 'राजा विक्रमादित्य चोबोली' ख्याल भी अनेक बार मंचित हो चुका है तथा यह प्रकाशित है। (पृष्ठ 1)

[8] वही तुर्रा कलगी का विवाह (वि. सं० 2044) पृष्ठ 5

[9] वही, पृष्ठ 4

[10] वही, पृष्ठ 9

[11] वहीं, पृष्ठ 17.18

[12] वहीं, पृष्ठ 19

[13] वही तुर्रा कलगी का विवाह, पृष्ठ 8

■■■

पद्म श्री सम्मान 2026

साहित्य, पुरातत्व और समाजसेवा के लिए मध्यप्रदेश के विद्वान सम्मानित

डॉ. नारायण व्यास
(पुरातत्व)

श्री कैलाशचन्द्र पंत
(साहित्य)

श्री मोहन नागर
(समाजसेवा, शिक्षा और पर्यावरण)

कला समय परिवार की ओर से सभी विद्वानों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं !

।। मेवाड़धणी महराणा रो ख्याल ।।

(मेवाड़ स्वामी महराणा का लोक नाट्य)

- डॉ. पूरन सहगल

खुला मच। गाँव का चबूतरा या चौपाल। चाँदनी रात का प्रकाश। दोनों ओर मशालों का प्रकाश। अचानक भोपा-भोपण का प्रवेश। राजस्थानी वेश भूषा। भोपा के हाथ में रणत्या वाद्ययंत्र। दोनों के पैरों में घूंघरू बंधे हुए। मंच पर आते ही दोनों नृत्यरत होते है। कोई अन्य वाद्ययंत्र नहीं। कुछ देर बाद नृत्य थम जाता है। भोपा भोपण झुककर दर्शको का अभिवादन करने के बाद वरदाते हैं।

समरां सदमत सारदा, गवरी नंद गणेश।
हाथ जोड़ हिंगलाजां सुमरां, चूक न रेहवे लेस।।1।।
सबदा आन बराजजो, हिरदै करजो वास।
हात बांद वीनत करां, सुण लीजो अरदास।।2।।

दोनों पुनः दर्शकों का अभिवादन करते हैं भोपा-भोपण बारी बारी से अपने संवाद अभिनय सहित बोलते है। बीच-बीच में कई बार परस्पर पदो को दोहराते भी है। यथा भोपे का पद भोपण और भोपण का पद भोपा दोहराता है तथा उसे रणत्या पर भी बजाता है। पद दोहराने वाला नृत्यरत होकर पद दोहराता है। रणत्ये की मधुर ध्वनि कड़ावों की अभिनय की अदायगी और घूंघरूओं की रणक-झणक वातावरण को जीवंत और उल्लासमय बनाये रखती है।

भोपा- समया री बलहारी मानूँ, समया रो मानूँ परमाणो।
समया राणा ने रंक करे, अर रंक बणा देवे राणो।।3।।
भोपण- समया री राज रजाई ती, कोई भी जीत नहीं पायो।
समया ने पलटो मार दियो, रघवर ने वन में भिजवायो।।4।।
भोपा- समया ती हार्या हरिचंद, रावण बलधारी हार गयो।
समया ती अकबर बादशाह, राणा ती बाजी मार गयो।।5।।
भोपण- समया रे खातर राजकँवर, बीजाँ री रोटी खावे हे।
समयो एसो बदकार हुओ, महाराणा ने कलपावे हे।।6।।
भोपा- समया रो कोई पार नहीं, यो समयो घण लीलाधारी।
समया पे कण को वस कोनी, समयो जाणो सब ती भारी।।7।।
भोपण-जद बी दुरसमयो आ जावे, तद खूँटी हार नगल जावे।
यो राम जसा औतारी ने, वन-वन री भटकण करवावे।।8।।
भोपा-राणा रो आयो बुरो समे, संग राजपाट तक छूट गया।
एसा करड़ा दुरदन आया, खावा रा दाणा खूट गया।।9।।
भोपण- कँवरा-भँवरा, राणीबासो, हगरा भूखा रेह अकलावे।
काचा-पाका वनफल खुटग्या, कँवरा ने कसतर हमजावे।।10
भोपा-जिसतर-तिसतर बनबीजाँ री, रोटी रो साधन जुट पायो।
रोटी रो बटको राणी सा, कँवरा रे हाथाँ पकड़ायो।।11।।
भोपण-धिक रे दुरदन थारी करणी, हूरज रे दुस्ट धिरण लाग्यो।
अणचेत्याँ आयो मीनकड़ो, हाथों सूँ रोटी ले भाग्यो।।12।।
भोपा-समयो तो आखिर समयो हे, समया ने दूर पल्टी मारी।
समया रे आठइ अंग नमुँ, अण समया री घण बलहारी।।13।।
भोपण- यें तो राणो घण अनमनयो, वें आयो दूत अकब्बर रो।
बजर कारजो डगमगयो, राणा प्रताप सीं बब्बर रो।।14।।
भोपण-समय री बलिहारी कही गई है। समया तो कोई बी नी जीत पायो। यें तो राणी सा ने मालबीज री रोटी कुँवर रे हाथ पकड़ाई अने वे आयो मार मीनको। वाह रे वाह! समया। परीकसा री कठिन घड़ी।
भोपा-जद माल बीज री रोटी ने एक मार मीनको ले भाग्यो।
नानकड़ो कँवरो बिलखपड्यो ऊ पग पछीट रोवण लाग्यो।।15।।
भोपण-या खबर मली जद राणा ने, राणा रो रोस घणो जाग्यो।
राणा री बज्जर छाती में, एक जहर बुझ्यो भलो लाग्यो।। 16।1
भोपा-गढ़ गयो बीच में छाती रे, राणा रो हिवड़ो अकलायो।
नस-नस री ताण पड़ी ढीली, माथे परसीनो ढलकायो।।17।।
भोपण-एक आह निकरगी मूंडा सूँ, आखाँ सूँ ज्वाला फट पड़ी।
छाती में अगनी धधक उठी, साँसाँ रे बीचे गाँठ पड़ी।।18||
भोपा-सब सोच-सोच राणा जी रे, हिरदै अवसाद घुमड़ आयो।
भाला रो हाथ पड़यो ढीलो, चेटक बलदान उमढ़ आयो।। 19||
भोपण-मूँ रह्यो घणो, मूँ सह्यो घणो, राजपूती शान बचावण ने।
म्हें पाछी कद्यां नहीं खाई, वैरी रा रगत बहावण ने।।20।।
भोपा-भलो हाथों रो हाथों में, घोड़ा री जीण नहीं छूटी।
मेवाड़ी धरती रे खातर, रजपूती आन नहीं टूटी।।21।।
भोपण-मार-काट अर जुद्ध-जुद्ध, सुख खाण पीण रो भान नहीं।
राणी रणवासो भूल गयो, कंवरा-भंवरा रो ध्यान नहीं।। 22।।
भोपा-मान गयो मरजादा गी, रुतबो अर रोब रुआब गयो।
चित्तौड़ गयो, जण प्राण गयो, राणा पण रो ऊ ताब गयो।। 23।।
भोपण-सब चल्यो गयो पण गई नहीं, मेवाड़ फते री अभलासा।
मर मिटवा रो प्रण नी टूट्यो, नी टूटी जीतण री आसा।। 24।।
भोपा- सब छूट गया, सब खूट गयो, जुझारी हिम्मत नी खूटी।
खांडा री धार अबोठी हे, भाला री ताब नहीं छूटी।।25।।
भोपण- पण कँवराँ रो यो हाल हुओ, हाथ रोटी रो बटको कोयनी।
लीराँ-लीराँ होया गाबा, माथे ढण्ग रो पटको कोयनी।।26||
भोपा- मेहलाँ री मरजादा टूटी, मिजवाना री आगत कोयनी।
मान पान री रीत गई, पकवाना री तागत कोयनी।। 27।।
भोपण- एसो खोटो समयो आयो, राणा री थिरता टूट गई।
लच्छमण के बरछी लागी थी, रघवर री धिरता छूट गई।128।।

भोपा-यूं देख बिलखतो कंवरा ने, हाथां सूं भालो छूट पड़्यो।
धीरज रो बाँधो टूट गयो, आँखाँ सूँ झरणों फूट पड़्यो।।29।।
भोपण-घण बज्जर छाती धड़क गई, आँखाँ में अंधियारो छायो।
जूझण रो रोस पड्यो सीतो, हिरदै हतासड़ो घिर आयो। ।30।।
भोपा-खांडो ढरक्यो, भालो छट्क्यो, कंवरो बैठ बुसकावे हे।
मूं अयां करूँ के वयाँ मरूँ, राणा रो मन भरमावे हे।।31।।
भोपण-मूं जूझ कै बूझ मरूँ, मन अधबीचां झोला खावे।
मूं अकबर ने पाती लिख दूँ, पण लिखूं कयां मन अकलावे।।32।।
भोपा-राणा रो मन बीचार करे, अकबर रो दूत खड़ो हामूं।
अकबर रे कागद रो जुवाब, राणो नी दे पावे सामूं।। 33।।
भोपण-मूं लिखूँ कयां में हार गयो, चित्तौड़ खड़ो हामू न्हारे।
मेवाड़ी धरती परहत्थी, मायूस बणी आँसूँ ढारे।। 34।।
भोपा-एकलिंग रो मान घटे, सतियाँ रो सत मिट जावे ला।
लाग्यो कलकंड़ो माथा रो, हेड़्याँ से नी हिट पावे ला।। 35।।

अतरो गेहरो विचार करतां करतां महाराणा प्रताब रो रजपूती रगत उबल पड्यो। महाराणा सांगा सिमरण कर महाराणा ने हतासड़ो झटक परमौ फैक दियो। कवियाँ ने वरदायो बी हे ?

भोपण-घण टूट्यो, घण झूकियो, होया घणा तबाह।
नी झुक्यो झुक्यो चेटक चढ़्यो, मेवाड़ो नरनाह।। 36।।
नी झुक्यो, नी टूट्यो, करी न काची कूत।
भोपा- प्राण दिया प्रण नी दिया, बप्पा जी रे पूत।।37।।
महाराणा ने अकबर का दूत ती कह्यो-
भोपा- मूंछा पे करी मरोड़, फेर राणा ने हूकम फरमायो।
रे दूत लौट जा पाछां ने, तू बेमतलब ही भटकायो।। 38।।
भोपण-केह दीजे थारा अकबर ने, आमू-हामू आ वात करे।
थारी मुगलानी फौजां ती, सीसोदा हरगज नहीं हुरे।।39।।
भोपा-कह दीजे साह अकबर ने कयां, संधि री वात करे।
थारो सनेसड़ो वाँच लियो, तू छल कपटां री वात करे।।40।।
भोपण-सगलो मेवाड़ पाछो ले लूँ, फेर संधि री वातां करसां।
रजपूतां री तरवारां में, रजपूती रो पाणी भरसां।। 41।।
भोपा-दो चार जुद्ध कई जीत गयो, मदमन्त हुओ क्युं पोमावे।
तू बेठ आगरे मेहलां में, मूछां मरोड़ कई इतरावे।।42।।
भोपण-आमू-हामू आ जा रण में, संधि री वातां कर लेवां।
तरवारां पे तरवार पड़े, जेसो वे निणै कर लेवां।। 43।।
भोपा-निरणे नियावटो संधि रो, रणभूमि में व्हे जावे लो।
कै तो माथो दे जावे लो, कै तो माथो ले जावे लो।।44।।
भोपण-संधि रो कागद अकबर रो, राणा रे हाथां मुरड़ायो।
मूंडा पे हूरज ताब आण, राणा ने कागद पलटायो।।45।।
भोपा-महाराणा प्रताब रो जुआब सुण, संधि रो कागद ले दूत पाछां आगरे आयो। भरे दरबार दूत ने ऊ संधि पत्र मुजरो कर अकबर साह के हाथ में होंप दियो अर इसारा-इसारा में हगरी हालत बयान कर दी। दूत रो हालात जाण अकबर साह घणो मायूस वै उठयो।

भोपण-राणा रो कागद हाथां ले, अकबर री आँखाँ झमक उठी।
होठां पे कुटलाई आई, रग-रग में अजब मरोड़ उठी। ।46।।
मुगल साह री नस-नस में, एक अद्धुत्यो तूफान उठ्यो।
राणो आखिर जंग नी हार्यो, बेमतलब रो गुब्बार उठ्यो।।47।।
भोपा-अकबर रा दरबार में एक तेजवान दरबारी हा। वणा रो नाम हो पीथल राठौर। पीथल राणा परताब रो जस गायक हो। साह अकबर ने पीथल री तेजस्वी आँखाँ में आँखाँ गढ़ा ऊ संधि रो कागद हवा में लेहराताँ कहह्यो-
भोपण-परवाणों हाथां में उठा, दूरां-दूरां ती दिखलायो।
फेर मूंछाँ पे कर दी मरोड़, सेंत मेंत ही इतरायो। । 48।।
भोपा- पीथल ने कागद दिखा-दिखा, अकबर बेअरथो मदमायो।
रे बाँच-बाँच पीथल कागद, थारा राणा ने भिजवायो।। 49।।
भोपण- ए रे पीथल तू बेअरथो, राणा री बिरदा गावे हे।
सबदां री झूठी बिरदावण, तू झूठ-मूठ बिरदावे हे।।50।।
भोपा-थारी बिरदावली बेअरथी, बेमतलब री रजपूती हे।
थोड़ी घण जो राणा में थी, वी बी कांकण जा सूती है। ।51।।
भोपण-घण गेहरो दरयाव अकबर, डूब गया राजा राणा।
जण ने मुगलां ती एठ करी, आखिरदम हगरा पछताणां।। 52।।
भोपा-मूं आज बादसाह धरती रो, मेवाड़ी पाग पगां में हे।
बतला अब किण, रजपूतण रो खून रगां में है।।53।।
भोपण-थारो राणो आड्यां खातो, घुटना रे बल आ जावे ला।
मूंछा रेटी कर ले पीथल, कैयां बिरदावली गावे ला।। 54।।
भोपा-ए रे पीथल अब सुण ले तू, रजपूतां रो जस मत गाजे।
तू अकबर री बिरदा लिखजे, मुगलां रो जस बरदाजे। ।55।।
भोपण-अकबर री तानाकसी, मगरूरी बगवास।
डिगा न पाई तनक बी, पीथल रो बीसास। ।56।।
भोपा-अकबर की बड़बोली सुण, पीथल ने पूरा बीसास ती कह्यो मन ही मन तो पीथल दुखी वैगयो। पण परतख नी झुक्यो। बादशाह अकबर हामू मूछां पे हाथघाल बोल्यो-
भोपण-अकबर री बढ़बोली सुण ने पीथल से हिरदो काँप गयो।
ऊ मुगल साह रे सबदाँ रो, मतलब फोरन ही भाँप गयो। ।57।।
भोपा-पीथल रे हिरदे ज्वाल उठी, तूफान उठ्यो बीजू भलकी।
तन तड़प उठ्यो मुठियाँ कसगी, आखाँ री रगत नसाँ चलकी।।58।।
भोपण-मुगल बादसाह अकबर ने, पीथल रो हिरदो भाँप लियो।
पण पीथल ने चतराई ती, अपणो आवेसो ढाँप लियो।।59।।
भोपा-गाठो मन कर पीथल बोल्यो, हे मुगलपति, हे शहंशाह।
म्हारो बीसास अटल जाणो, राणो हद नी माँगे पनाह। । 60।।
भोपण-यो कागद साबद झूठो हे, कण वैरी ने भिजवायो हे।
राणा रो मान घटावण ने, यो मायाजाल रचायो हे।। 61।।
भोपा-म्हारो बीसास अटल जाणो, आ वात सफा ई झूठी है।
राणा री पाग सदा ऊँची, राणा री आन अनूठी हे। ।62।।
भोपण-जतरे जिव बाकी राणा में अतरे तो आन अटूटी है।
संधी-पाबंदी री वातां, बेमतलब बिल्कुल झूठी हे। । 63।।

भोपा- मेवाड़ो वनराजो मुगलाँ रे, पिंजरे आ जावे बिल्कुल वात अपूटी हे।
असल सिंहनी रो जायो, हुआँ गर्रावे या तो गजब अखूटी हे ।।64।।
भोपण- जतरे हे भालो हाथां में, कम्मर में केलपुरी साजे।
अतरे सिसोदियो नी झूके, मेवाड़पति राणो वाजे । ।65 ।।
भोपा- हूरज आतमणे ऊग सके, नदियाँ री दिसा पलट जावे।
सीसोद बंस रो महाराणो, मुगलां रे ओटे नी आवे।। 66।।
भोपण- राणो रण जूझ सके लेकिन आड्याँ खातो नी आवे ला।
ऊ मेवाड़ो मेवाड़ घणी, कसतर सामंत कहावे ला। 167 ।।
भोपा- वनराज भले भूखो मरजा, ऊ घास-पात नी खावे ला।
हंसो तो बीज चुगे कोयनी, मोती पे चोंच लगावे ला।। 68।।
भोपण-चातकड़ो प्राण भले तज दे, धरती से पाणी नी पीवे।
सिंघपूत राणो प्रताप, मुगलाँ रे हामू नी नीवे। 169 ।।
भोपा-हे आलिराज अकबर सुण लो, पीथल तो मूंछ मरोड़े ला।
कै काट माथ अपणो खुद ई, सगती रे चरणा छोड़े ला।।70।।
भोपा-यो प्रण हे पीथल राजा रो, सगती री अटल जमानत हे।
दरबार भर्यो हगरो सुण ले, पीथल रा सबद अमानत है। ।71।।
भोपण-यूं केह पीथल बाहर आयो, अपणे मेहलां में जा पौच्यो।
फेर सुन्न-मुन्न वें आख मीच, खुद प्रश्न कर्यो खुद ही सोच्यो। 172 ।।
भोपा-यूं सोच समझ ने पीथल झट, राणा के कागद भिजवायो।
एक दूत भेज बिसवासणियों, राणा ती उत्तर मंगवायो।।73।।
भोपण-कागद में लिख्यो असो, अकबर रक चढ्यो रुवाब।
राणा कागद वाँचता, दीजो तुरत जुवाब ।।74 11
भोपा-पीथल ने महराणा प्रताब के कागद कई लिख्यो।
खुद रो हियो खोल ने रख दियो। पीथल ने लिख्यो-
भोपण-पीथल ने पाती कई लिखदी, सबदां-सबदां अंगार भर्यो।
मरयां तक ने जिंदो कर दे, एसो गजबो उद्गार भर्यो। 175।।
भोपा-वनराज कठे सूतो वै तो, वन गज्जाणी हुंकार भरो।
रगत नसां में दौड़ पड़े, गजराजा ज्यूँ चिंघार भरो। 176 ।।
भोपण-जो दूत आप रो काबद ले, अकबर रे हाथों सौंप गयो।
ऊ सबद-सबद बरछी जेसो, म्हारा हिरदा में घौंप गयो। ।77।।
भोपा-में नी भण्यो कागद प्रताब, अकबर रे मूंडे सुण्यो हे।
जे सुण पायो हूँ अकबर ती, वे सो हिरदा में गुण्यो हे।।78।।
भोपण-में असी सुणी राणा प्रताब, अकबर रे कागद भिजवायो।
में असी सुणी के न्हारणो, मुगलां रा पिंजरा में आयो।।79।।
भोपा-में असी सुणी मेवाड़ धणी, मूछां री मूंछ मरोड़ गई।
में असी सुणी हे महाराणा, रजपूती रण ने छोड़ गई। 180 ।।
भोपण-में असी सुणी रजपूताँ री, तरवारां ऊपर जंग चढ़यो।
में असी सुणी हूरज औझक, धरती रे ऊपर टूट पड़यो। 181।।
भोपा-में असी सुणी के चातकड़ो, धरती रो पाणी पीवे ला।
में असी सुणी के नाहरड़ो, अब बण हियारड़ो जीवे ला।।82।।
भोपण-में असी सुणी बप्पा वंशज, मुगलां रो झंडो ढाबे ला।
में यूं सुण्यो के रजपूती, मुगलां रा छाणा छाबे ला। । 83।।

भोपा-में असी सुणी सूरज वंसी, मुगली सांवंत कहावे ला।
में असी सुणी घुटना मरोड़, मेवाड़ी राणो आवे ला।।84।।
भोपण-में असी सुणी राणा प्रताब, मुगलां रा चाकर होवे ला।
में असी सुणी मेवाड़ धणी, सांमती ठाकर होवे ला। 185।।
भोपा-में असी सुणी हूरजवंसी, रावण ती रण में हार गयो।
में असी सुणी मेवाड़ धणी, हूरज ने लकमो मार गयो। 186।।
भोपण-जो ऐसो हे महाराणा, बड़ो गजब व्हे जावे ला।
बप्पा वंसज पे लग्यो कलंक, सदां अटल रेह जावे ला।।87 ||
भोपा-राणा सांगा रो जस जण दन, धूर-धूर मल जावे ला।
कायरपन से अपजस टीको, कण रे माथे, भलकावे ला।।88।1
भोपण-पीथल री अरजी धीरो वै, हुण लीजो हे मेवाड़ धणी।
रण में जूझारा वै जाजो, मति कहिजा थें "खम्माघणी । । 89।।
भोपा-कागद भणता हे दाजीराज, थें होच हमज करजो वचार।
कायर रो मरणो नत दन रो, सूरो रण जूझे एक बार।।90।।
भोपण-मूछां ने रेटां करूँ, कै मूंडे घरूँ रुवाब।
इण दो वातां एक सच, लिख भेजो परताब ।।91 ।।
भोपा-पीथल री असी अंगार भरी पाती भणताई महाराणा रे तन बदन में बीजू कौंध गी। वणां रो हाथ तरवार की मूठ पे कस गयो।
भोपण-मंच पर भोपा-भोपण नृत्यरत वई उठे।
कुछ देर तक नृत्य चले फेर थमे। भोपा ने हाथ उठा कर दर्शकों को अभिवादन कर महाराणा प्रताब को जसबखाण करतां कहयो।
भोपा- कर करवाल जुद्ध में चढ़े, जद नाहर परताब।
हूरज ती चढ़तो फबे, मूंडा ऊपर ताब। 192 ।।
भोपण- एक परताब डगमग करी, मुगलां री सत्ताह।
सगत जो वेतो पीठ पे, कर देता तब्बाह । ।93 ।।
भोपा-हपना में ऊझक पड़े, रेह-रेह अकबर साह।
जाणे छाती आ छड्यो, भालो ले नरवाह।।94 ।।

दर्शक वाह-वाह करि उठे। दर्शकां तक में वीर भाव परगट वई जावे। भोपा-भोपण हाथ उठा दर्शकों ने संयत करे अर महाराणा री पीथल रे प्रति लिख्यो जुवाब से बखाण शुरू करे।
भोपण -पीथल रो कागद भणताँई, राणा रो रुतबो, जाग गयो।
रातड्यो हूरज उग आयो, कारो अंधियारो भाग गयो। 195।।
भोपा-कागद भण राणा ने लिखयो, पीथल मूछाँ पे ताव धरो।
राणो रण में ललकारे ला, थें राणा पे बीसास करो।।96 ||
भोपण-कुण केवे हूरज थाक गयो, एण्डा री छायाँ सोवे ला।
कुण केवे राणा प्रताप, अकबर रा गाबा धोवे ला। 197 ।।
भोपा-कुण केवे के रजपूताँ री, रजपूती घुटना टेके ला।
कुण केवे के राणा राजल, भाला ने परमो फेंकेला। 198।।
भोपण-ऊ दन आयाँ पेलाँ पीथल, माथो म्हारो कट जावे ला।
जोसीली फोज बणा जोधा, करवालाँ ले डट जावे ला।।99।।
भोपा-कुण केवे बप्पा रो वंसज, मुगलाँ रो झंडो ढाबे ला।
कुण केवे के अब रजपूती, मुगलाँ रा छाणा छाबे ला।। 100 ।।

भोपण-थें बीसासा रहिजो पीथल, राणो रण में ललकारे ला।
तन पे माथो रहताँ पीथल, राणो हिम्मत नी हारे ला॥101॥
भोपा-थे ताव धरो मूछाँ ऊपर, मूंडा पे हूरज भलकाओ।
थें एकलिंग री जय बोलो, थें रणवीरों ने वादाओ॥102॥
भोपण- रण में जूझे सुरमा, जूझ माँ सनमान।
जूझण ने मंगल गणे, अटल आन अर बान॥ 103॥
भोपण- पीथल मूछाँ वट धरो, मूंडे राखो आब।
महाराणा ने लिख दियो, उच्छाह भरो जुआब॥104॥

पीथल री पाती रो जुबाव लेऽऽर जद दूत पाछो आयो। पीथल महाराणा रो जुवाब भणताई जाणे नवो जीवन पाई गयो। पीथल के मूंडे हुरज रो ताब चलक उठ्यो। आँखाँ में चमक आईगी। पीथल ने दूत को सम्मान कर विदा करयो अर धज री पाग बाँध, मूंछाँ पे ताव लगा पीथल अकबर रे दरबार जा पौंचयो। पीथल ने एसो उमंगित-उल्लसित देख शाह अकबर रो कालजो धक वई गयो। मूंडा रो ताब मधो पड़ि गयो। पीथल ने बड़ी उमंग ती कहयो-

भोपण- अकबर समद अथाह जहं डूब्या हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण माहि, पोयण फूल प्रताप सी॥105॥

साह केहवे के अकबर अथाह समंदर हे। जण में सब राजा रावल डूब गया। पण एक मेवाणो सिंह राणा प्रताब नी डूब्यो ऊतो कमल की न्याई समंद रेऊपरां गौरव गरिमा ती चलक रहयो हे। अने चलकतोऽज रहवे ला।

भोपा-पीथल रो कवित्त सुणताई दरबार सकपका उठ्यो।
पीथल ने अपणा बोल जारी रखतां कहयो।
भोपण- दूत विदा होयाँ पाछे, पीथल न मूँछ मरोड़ करी।
संगती रे हमे सांस झुका, अरदास करी हाथ जोड़ करी॥106॥
भोपा- फेर पाग बाँध माथे पीथल, दरबार खास हाजर होयो।
आदाब बजा मुजरो कर्यो, अरज करी नाजर होयो॥107॥
भोपण- ऊ कागद साबद झूठ हे, मूँ पेलाँ भी कह चुक्यो हूँ।
रीसा बर्या कण बैरी री, ने हे चाल चली केह चूक्यो हूँ॥108॥
भोपा-यो, कागद म्हारे हाथों में, महराणा ने भिजवायो हे।
संधि रो वीचार कदी, राणा रे मन नी आयो हे॥ 109॥
भोपण-हे जहाँ पनाह जे हुक्म मले, कागद ने बाँच सुणा देऊँ।
जतरा दरबारी हाजर हे, हगरा ने हाँच गुणा देऊँ॥ 110॥
भोपा-अकबर रे हिरदे डबक पड़ी, झट वात पलट ने नाँह करी।
पीथल रे मूँडे चलक देख, अकबर ने ठण्डी आह भरी॥ 111॥
भोपण-भीतर ई भीतर अकबर ने, पीथल पे रोस घणो आयो।
मोको पिछाण मन मार लियो, दरबार छोड़ मेहलाँ आयो॥ 112॥
भोपा- बण्यो बणायो खेल आज, पीथल ने बुरो बगाड़ दियो।
चेटक सवार रे बंधण रो, नज खूटो तलक उखाड़ दियो॥113॥
भोपण- पीथल ने हठ ठाणी कर ली, नाहर पिंजरा में आ जातो।
एक दाण पिंजरा में फस्यो, फेर बाअर कद्यां नी जा पातो॥ 114॥

भोपा-अकबर खीज उठ्यो, रीस उठ्यो अर मूंडो रेटा कर दरबार ती निकर मेहलां में चल्यो गयो। पीथल ने मूंछा पे ताव दे दरबारियाँ पे रोब री नजर डाली अर दरबार छोड़ मेहलाँ में चल्यो गयो।

भोपा-भोपण नृत्यरत वई गया। रणत्या बाज उठ्यो, घूंघरू झणक उठ्या। दर्शकां रा कालजा उमंग-उल्लास ती लेहरां लेवा लागा। खूब देर तक नृत्य चलतो रहयो। फेर ढब गयो। भोपा-भोपण ने हाथ बाँध कमर झुका दर्शकां रो अभिवादन करयो। अण के बाद भोपा ने विरदावली वखाणी।

भोपण-"वसती मां बाप है। वसती में चारी खूंट अमन-चमन रेहवे। दोरम-दुख व्यापे नई। वरखा खूब वेवे। खूब ठाठो-ठठ अन्न नीपजे। अकाल कद्यां बी नी पड़े। सदां सुकाल रेहवे। आपस में भाई चारो बण्यो रेहवे। गामधणी रो जस बढ़े। सतियाँ रा सत अर हुआगणा रो हुआग अमर रेहवे। जणां ने ख्याल देख्यो वणा ने घणी घणी खम्मा। जणां ने नी देख्यो वणा अगली दाण मौके मले। भोपा-भोपण रो आसी रेहवे। भोपा भोपण रो मन राजी रेहवे। दान पुण्य खूब करजो।"

इसके बाद फिर से भोपा-भोपण नृत्यरत होते हैं। रणत्या की मधुर गूँज पूरे वातावरण को आनंदित कर देती है। नृत्य थमता है। भोपा-भोपण फिर एक बार सबका हाथ जोड़ कर अभिवादन करते हैं।
अंत में भोपा दीर्घ निश्वास लेकर यह पर कहता है-

अकबर पाथर अनेक के, भूपत मेला किया।
हाथ न लागो हेक पारसमणि प्रताप सी॥

अकबर ने कई पत्थर (राजा) इकट्ठे किये किन्तु एक पारसमणि प्रताप को नहीं पा सका।

(विशेष टीप- यह लोक नाट्य राजस्थान से आने वाले लोक गायक भोपा परिवार मालवा विशेष कर दशपुर अंचल में दर्शाते रहे हैं। महागढ़ में मैंने पहली बार यह खेल (लोक नाट्य) देखा था। आंतरी में भी देखा, बरथून में भी देखा।)

रात भर चलने वाला यह अद्भुत वीर रस और शौर्य का प्रतिनिधि लोक नाट्य बहुत लोकप्रिय होता था। कड़ावे के साथ अभिनय, फिर परस्पर दोहराव, मनभावन नृत्य रणत्ये पर कड़ावे का वादन ऐसा दृश्य उपस्थित कर देता था मानो मंच पर भोपा-भोपण नहीं अपितु प्रसंगानुकूल पात्र ही आ उपस्थित हुए हों। "पाबूजी की पड" प्रदर्शन शैली का यह लोक नाट्य दशपुर अंचल की मालवी। जिसमें मेवाड़ी का रुवाब मिला हुआ है। स्वयं में अनूठा लोक नाट्य है।

मैंने स्वयं इस लोक नाट्य के कुछ अंशो को कई मंचों पर साभिनय प्रस्तुत कर इसके प्रभाव को परखा है।

पाबूजी की पड़ प्रदर्शन में तो एक चित्रपट भी होता है। इस लोक नाट्य में तो कोई चित्रपट भी नहीं होता। इसकी साभिनय प्रस्तुति ही अपना भाव चित्र बनाकर दर्शकों का मन मोह लेती है। अद्भुत और अनुपम है यह मालवी का लोक नाट्य। इसका प्रदर्शन अजब-गजब होता रहा है।

मैं यह निसंकोच स्वीकार रहा हूँ कि, अब ऐसे कई लोक नाट्य, लोक से गायब हो गये हैं। या होते जा रहे हैं। आधुनिक सहज मनोरंजन साधनों ने इन्हें निगल लिया है। लोक गायको ने अपने वाद्ययत्र खुंटियों पर टाग दिए है और खेती मजदूरी अथवा किसी अन्य पेट भराई के काम में लग गये हैं।

ये लोक नाट्य, (लोक साहित्य) हमारी विरासत है। इसे अब सहेजना और संरक्षित कर लेना हमारी धर्मिता है। कर्त्तव्य परायणता है। इति शुभम्! शुभम् अस्तु!

■■■

आलेख

छत्तीसगढ़ अंचल में लोक नाट्य की समृद्ध परम्परा नाचा, रहस, भतरा और लोरिक चंदा के ठाठ

डॉ. पीसी लाल यादव

लोक नाट्य शब्द 'लोक' और 'नाट्य' दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक शब्द को स्पष्ट करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'लोक, मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है, जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। इसी जन समूह की कृति जब नाट्य रूप में कथोपकथनों के माध्यम से किसी कलावृत को उपस्थित करे तो उसे लोक नाट्य कहकर पुकारा जाता है। अतः लोक नाट्य लोक साहित्य की वह विधा है जो संवादों के माध्यम से किसी रोचक कथा-प्रसंग को प्रस्तुत कर के लोक का मनोरंजन करती है। डॉ. श्याम परमार ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है 'लोक नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्व साधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।'

लोक नाट्यों की लोकप्रियता सर्व विदित है। इस लोक प्रियता का कारण उसका लोक जीवन से जुड़ाव है। लोक नाट्य में लोक के आचार-विचार, रहन-सहन, वेशभूषा और उसकी संस्कृति व परम्पराएं स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती हैं। इसलिए लोक नाट्य में ज्यादा रस और आनंद मिलता है। यह उसकी अपनी बोली में होने के कारण उसके हृदय में बसा होता है। हास परिहास के साथ-साथ समाज के लिए संदेश भी इसमें शामिल रहता है। डॉ. श्रीराम शर्मा के शब्दों में 'लोकनाट्य वास्तव में सहज मानव जीवन से ही जीवन रस प्राप्त करते हैं। इसलिए उनकी आत्मा का लोक दर्शकों की आत्मा के साथ एक ऐसा सहज तादात्मय हो जाता है. जिसमें प्रदर्शन एवं दर्शक का भेद ही समाप्त हो जाता है। लोक नाटयों की रचना लोक रुचि के सर्वथा अनुकूल होती है। इसलिए भी सामान्य दर्शक लोक नाट्यों की प्रवृति में एक रस होकर रुचिपूर्वक सुनता-देखता है। लोक नाट्यों में संगीत का पुट भी आकर्षण उत्पन्न करने में सहायक होता है।

लोक नाट्य लोक जीवन का दर्पण कहलाता है।

नाचा- छत्तीसगढ़ के लोक कला रूपों की जब हम चर्चा करते हैं, तब यहाँ का लोक नाट्य 'नाचा' हमारी आंखों के सामने दृश्यमान हो जाता है। नाचा की प्रस्तुतियों के दृश्य कभी हमारे मन को गुदगुदाते हैं, तो कभी सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध हमें खड़ा करते हैं। यह सब मनोरंजन के साथ-साथ इतने सहज ढंग से हो जाता है कि हमें मालूम ही नहीं पड़ता कि कब और कैसे ? सारी रात यूँ ही हँसते-कठलते बीत गई।

नाचा' नाच शब्द से बना है और नाच नृत्य का बोधक है। चूंकि नाचा पूरी तरह से लोक नाट्य है। तब इसे नाचा क्यों कहा गया ? एक सहज प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। चूंकि इसमें नाट्य या गम्मत प्रदर्शन से पहले नृत्य या नाच होता है। इसलिए इसे नाचा कहा गया। नचा को नाचा-गम्मत भी कहा जाता है। गम्मत का आशय हँसी-ठिठोली से है। नाचा की शुरुआत खड़े साज नाचा से हुई, जिसमें सभी कलाकार खड़े होकर वाद्य बजाते व गम्मत करते थे। चिकारा व तबला नाचा के प्रमुख लोक वाद्य थे। खड़े साज की परम्परा अब विलुप्त हो गई है।

बदलते समय केसाथ नाचा भी बदला। स्वर्गीय मदराजी दाऊ रवेली राजनांदगांव ने चिकारा के स्थान पर हारमोनियम का प्रयोग कर इसे नया रूप दिया। यह लोकप्रिय भी हुआ। तब से नाचा निरंतर लोकप्रियता की ओर अग्रसर है। नाचा विदेशों में भी लोकप्रिय हुआ। नाचा का प्रारंभ नृत्य और गीत से होता है। नाचा में स्त्री पात्र की भूमिका पुरुष द्वारा ही किया जाता है, जिसे परी या डांसर कहा जाता है।

पूर्व रंग -

जय जलनी ज्वालामुखी, हरन सकल भुईभार,
लज्जा मोरि राखिबे दाई, भरे बीच दरबार।
भरे बीच दरबार शारदा, पहिली तोला मनावंव मैं
आके कंठ बिराज दाई, राग छतीसों गावंव में।

होरे होरे होरे होरे होरे हो।
बंगला बारी के रहइया धनी ल दे परेंव गारी रे
नवा मंदिर म कलस नई रे ..
दू दिन के अवइया जोंही के दरस नई है का रे

नचौड़ी -

यह नाचा का पूर्व रंग है। जिसमें नृत्य गीत की लोकरंगी छटा बिखरती है। यह पूर्व रंग ही नाचा के नामकरण की सार्थकता को सिद्ध करता है। नाचा में जोक्कड़ों की विशेष भूमिका होती है। ये अपनी दैहिक गतियों, वाक चातुरी और वेशभूषा से दर्शकों को हँसा हँसा कर लोटपोट कर देते हैं। ये बड़े व्युत्पन्नमति के होते हैं। हाजिर जवाबी इनकी विशेषता है। नाचा के संवाद हास्य-व्यंग्य से भरपूर और धारदार होते हैं। बात से बात पैदा करना जोक्कड़ों की विशेषता है। नाचा के संवाद लिखित नहीं होते।

साखी परम्परा -

जोक्कड़ नचौड़ी धुन में नाचकर 'साखी' और 'जनौला' के माध्यम से गम्मत या तमासा के लिए वातावरण का निर्माण करते हैं। हास्य की धारा यहीं से तरंगित होने लगती है। साखी की एक बानगी-

घर निकलत तोर ददा मरगे,
अधमरा होगे तोर भाई।
आधा बीच में नारी के चोरी होगे।
काम बिगाडे तोर दाई।

नचौड़ी गीत -

नचौड़ी गीत लोक जीवन को रुपायित करने वाले वे गीत हैं, जिनमें हास्य के साथ लोक की अनुभूतियाँ जुड़ी होती हैं-

ये पवन बिन कलगी नई डोलय
ये पवन बिन कलगी नई डोलय
आगू-आगू बइला रेंगय, पालू म नंगरिहा
तरी डाहर आंतर छूटे, देखथे निंदड्या।
ये दे नई डोलय

साज परी -

जहाँ जोक्कड नाचा के जान होते हैं। वहीं साज परी या नजरिया की भी इसमें केंद्रीय भूमिका होती है। साज परी के गीत का रंग भी अलग होता है। जिसे 'नजरिया' गीत कहा जाता है। साज परी की भूमिका पुरुष कलाकार ही निभाता है।

अड़े हो भागे ल हरथे ग मोरो
भागे ल हरथे का मोरो भागे ल हरथे
आय हे विदेसी सगा भागे ल हरथे।

यह आजादी के पूर्व का प्रचलित परी गीत है, जिसमें आजादी रूपी भाग्य को अंग्रेजों द्वारा हरण करने की बात कही गई है। इस प्रकार नाचा केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं था। अपितु यह जनजागरण, राष्ट्र-प्रेम का भी

संवाहक था। आज भी इसका यह रूप जीवंत है। नाचा में मुजरा देने की परम्परा है। दर्शक द्वारा पुरस्कार देने पर इस अदायगी से उसे धन्यवाद दिया जाता है-

इहाँ के रहवइया नोहे गंडई ओखर नाँव ग
बीस रुपिया के नोट दिसे, बंसी ओखर नांव ग।
अउ का फरमाइश करे हे-
लागे रहिथे दीवाना तोरो बर मोरो मया लागे रहि थे।

इसके बाद फिर तो गीतों की झड़ी लग जाती है।

नाचा का सबसे सबल पक्ष उसका तमाशा या गम्मत है। जिसमें परिवार, समाज या गांव में घटने वाली घटनाओं को केंद्र में रखकर कथानक गढ़ा जाता है। नाचा में संवाद लिखित नहीं होते, बल्कि ये आपसी चर्चा के द्वारा तुरंत तैयार कर लिये जाते हैं। इसमें सामूहिकता का भाव बोध समाया रहता है। इसलिए नाचा की प्रभावोत्पादकता दीर्घकालिक होती है। नाचा में हास्य और व्यंग्य का सम्मिश्रण मिलता है और यही इसकी लोकप्रियता व मनोरंजकता का प्रमुख कारक भी है। नाचा कलाकार की संवाद अदायगी और अभिनय क्षमता अनोखी होती है। वे इसमें बड़े पारंगत होते हैं।

नाचा में गम्मत के माध्यम से छूआछूत, शोषण, सामंतवादी प्रवृत्तियों पर लोक कलाकार प्रदार करते हैं। हँसी-ठिठोली में कहीं गई बातें समाज के सच को ही प्रतिबिम्बित करती हैं। मनोरंजन के साथ अर्थपूर्ण संदेश नाचा की विशिष्टता है। नाचा को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचाने व विश्व प्रसिद्धि दिलाने में हबीब तनवीर, मदन निषाद, भुलवाराम, माला बाई, फिदा बाई, झुमुकदास नियाइक दास, गोविन्द निर्मलकर आदि अनकों लोक कलाकारों के अवदान को नहीं भुलाया जा सकता। नाचा की लोकप्रियता आज भी बरकरार है। अनेक नाट्य निर्देशकों ने नाचा की महता और उसके प्रभाव को पहचानकर नाचा शैली का प्रयोग अपने नाटकों में किया है। नाचा लोक नाट्य की सशक्त विधा है।

रहस -

प्राचीन काल से छत्तीसगढ़ नाट्य कला की आदि भूमि रही है। इस

बात का प्रमाण सरगुजा रामगढ़ की सीता बैंगरा व जोगीमारा गुफा हैं। जहाँ नाट्य मंडप विद्यमान है। यहाँ नाटकों का प्रदर्शन होता था। पहाड़ को खोद कर बनाया गया यह नाट्य मंडप ही अद्भुत है। यह नाट्य मंडप इस बात का साक्षी है कि छत्तीसगढ़ में नाट्य कला की परम्परा पुरानी है। वह परम्परा आज भी छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में लोकनाट्य के रूप में विद्यमान है।

छत्तीसगढ़ के लोकनाट्यों में 'रहस' ऐसा लोकनाट्य है जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं के साथ ही गम्मत का भी प्रदर्शन होता है और रास का संबंध सीधे-सीधे श्रीकृष्ण की लीलाओं से है। रहस एक आनुष्ठानिक आयोजन है, जिसमें किसी व्यक्ति या गाँव द्वारा मनौती मनाए जाने पर यह आयोजन होता है। रहस लोकनाट्य 7,9 या 10 दिनों के लिए होता है। रहस का प्रमुख व्यक्ति रासधारी कहलाता है। रहस मंडली में 20 से 25 कलाकार होते हैं। जिनमें रासधारी के अतिरिक्त बाजा मास्टर (हारमोनियम वादक) चिकरहा, तबलची और मंजिरहा शामिल होते हैं। शेष कलाकार लीला के पात्र अनुसार अपना अभिनय करते हैं।

रासधारी को रहस प्रदर्शन के लिए न्यौता दिया जाता है। तब शुभ मुहुर्त देखकर स्थान चिन्हांकित किया जाता है। इसी स्थान पर 'रहस बेड़ा' का निर्माण किया जाता है। रहस बड़ी मुख्य मंच होता है, जहाँ लीला अभिनीत की जाती है। पूरक मंच गांव के चौराहों, देवस्थलों या तालाब के पास बनाया जाता है जहाँ कृष्णलीला से संबंधित प्रसंगों को खेलने में सुविधा हो, जैसे कालिया दमन प्रसंग के लिए तालाब या नदी के घाट को उपयुक्त माना जाता है। 'रहस' लोकनाट्य के प्रदर्शन में छत्तीसगढ़ की मूर्ति कला भी प्राणवान हो उठती है। क्योंकि इस समय 126 देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। जो कृष्णचरित्र से संबंधित होती हैं। भीम की मूर्ति अवश्य ही बनाई जाती है। रहस बेड़ा यज्ञ-मंडप की तरह वर्गाकार होता है। मध्य में कदम वृक्ष के प्रतीक के रूप में कागज निर्मित फूल या पतियाँ लगाकर उसके नीचे श्रीकृष्ण, राधा, रिद्धि, सिद्धि तथा गणेश की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। इन्ही मूर्तियों की परिक्रमा करते हुए कलाकार लीला गायन तथा अभिनय करते हैं। मंच के भीतर चारों कोनों में राजा परिक्षित, शुकदेव, ब्रह्मा तथा शिव की मूर्तियाँ स्थानित की जाती है। मंच के चारों ओर दर्शक बैठते हैं।

प्रतिदिन गणेश व सरस्वती वंदना से लीलाभिनय प्रारंभ होता है। सूत्रधार दर्शकों को प्रसंग की सूचना देता है। रहस के संवाद प्रसंगानुकूल व पात्रानुसार होते हैं। किंतु अलिखित होते हैं। संवाद पात्र स्वयं गढ़ता है। कई प्रसंगों में व्यास केवल सूत्रात्मक वाक्य गाता है। इससे पात्र को संवाद बोलने में सुविधा होती है। रहस लोकनाट्य का आधार 'राधाविहार' तथा 'वृजविलास' पुस्तकें हैं। कुछ लोग बाबू रेवा राम के गुटका को भी आधार मानते हैं। रहस में श्रीकृष्ण चरित्र को क्रमबद्धता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। कृष्णकला की एक रसता को तोड़ने के लिए बीच-बीच में गम्मतों का भी समावेश किया जाता है। जिससे लोगों का मनोरंजन होता है।

रहस में वादक मंडली की वेशभूषा सामान्य रहती है। धोती कुरता, गले में दुपट्टा, सिर पर टोपी या पगड़ी, माथे पर टीका । अन्य कलाकार पात्रानुसार मेकअप करते हैं। आवश्यकतानुसार मुखौटों का प्रयोग भी किया जाता है। चमकदार मुकुट, कोट आदि रहस की शोभा बढ़ाते हैं। रहस में गम्मत प्रस्तुत करने वाली छैला पार्टी में नाचा की तरह जोकड़ व परी होते हैं। स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुषों द्वारा की जाती है। ये कलाकार अपनी साज-सज्जा स्वयं करते हैं। वादक कलाकार अपने-अपने वाद्यों का वादन खड़े-खड़े या जरूरत के मुताबिक केंद्र में स्थापित श्रीकृष्ण की मूर्ति के चारों और परिक्रमा कर वादन करते हैं। यह भी रहस की विशिष्टता है। लोकनाट्य की यही सहजता दर्शकों को प्रभावित करती है।

रहस में प्रस्तुत प्रसंग का अंश

देवकी - मैं कितनी अभागिन हूँ। सात बालक मेरी गोद से अलग हो गए। यह बालक भी मेरी गोद से अलग हो जायेगा।

वसुदेव- मुझे ले जाने दो। मैं अपनी इच्छा से थोड़ी ले जा रहा हूँ। मैं प्रभु की इच्छानुसार इन्हें ले जा रहा हूँ।

देवकी- स्वामी क्या आप नहीं मानेंगे ?

वसुदेव- प्रभु की यही इच्छा है।

देवकी- क्या आप इन्हें ले ही जाएंगे ?

वसुदेव- भगवान की ऐसी ही इच्छा है।

देवकी - (कृष्ण को वसुदेव की गोद में देते हुए) जाओ, जाओ मेरे लाल यशोदा की गोद में पलने के लिए। मेरी गोद के लाल जाओ। यशोदा मुझसे अधिक तुम्हें प्यार करे और तुम्हारे प्यार की माता बने । (वासुदेव जाने लगते हैं)

देवकी- ठहरो प्रभु, एक बार तो मुझे जी भर के देख लेने दो।

रहस में कृष्ण और कंस की भूमिका करने वाले कलाकार स्थायी होते हैं। शेष कलाकारों की भूमिका आवश्यकतानुसार बदलती रहती है। इसलिए संवाद बदल जाते हैं। क्योंकि संवाद स्वयं कलाकार को गढ़ना होता है। इसलिए चरित्र में उतार-चढ़ाव बना रहता है। सबकी अभिनय क्षमता एक समान कहाँ होती है?

हालांकि रहस लोकनाट्य का कथानक पौराणिक है, फिर भी इसमें छत्तीसगढ़ को लोक संस्कृति स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। कथा प्रसंगों में स्थानीय रहन-सहन, आचार-विचार समाहित रहते हैं। रहस का गम्मत छैला पार्टी वाला भाग मनोरंजन के लिए किया जाता है। रहस के आयोजन में काफी धन राशि की जरूरत पड़ती है। अतः रहस की परम्परा सिमट रही है। वर्तमान में टी. वी संस्कृति भी इसका प्रमुख कारण है। फिर भी लोक नाट्य की यह गौरवशाली परम्परा यदा-कदा देखने को मिल ही जाती है। लोक की जीवंतता का यह प्रतीक है।

भतरा नाट - छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्रों में जिस प्रकार नाचा और रहस लोक नाट्य प्रचलित और लोकप्रिय हैं। उसी प्रकार बस्तर अंचल में जो क्षेत्र उडीसा से लगे हुए हैं, वहाँ भतरा नाट नामक लोकनाट्य प्रचलित है। 'नाट' शब्द नट से बना है और नट का आशय स्वांग करने से हैं। स्वांग की जरूरत नाटक करने के लिए पड़ती है। जिसमें कलाकार, नाटक में पात्र के अनुरूप अपने चेहरे-मोहरे को गढ़ता है। उसी के अनुरूप उसकी वेशभूषा होती है। अतः भतरा नाट अपने नामानुरूप लोक नाट्य की एक विधा है।

बस्तर में लोकनाट्यों की परंपरा का प्रादुर्भाव 'ओड़िया नाट' के रूप में दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण उड़ीसा की सीमा से लगा होना है। किसी समय चक्रकोट राज्य के अन्तर्गत बस्तर के साथ-ओडिसा के कोटपाड़ और नवरंगपुर क्षेत्र भी आते थे। इस क्षेत्र की भाषा ओडिया थी, आज भी है। ओड़िया नाट जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है यह उड़िया भाषा में खेला जाता है। नाट गुरु लोकनाथ दास वैष्णव के अनुसार "ओडिया नाट वह है जो विशुद्ध उड़िया भाषा में मंचित होता है, लेकिन जब उसी ओडिया नाट का भतरी संस्करण हो जाता है, तब उसे भतरा नाट कहा जाता है। वस्तुतः भतरा कोई भाषा या बोली नहीं है। यह एक जनजाति है। जो भी हो, लेकिन भतरा नाट की लोकप्रियता आज इस अंचल में शिखर पर है।"

नाचा की तरह भतरा नाट गांव के किसी चौक चौराहे या मैदान पर खुले आसमान के नीचे, चांदनी या शामियाना लगाकर किया जाता है। इसे 'रावटी' कहा जाता है। भतरा नाट के लिए किसी तामझाम की जरूरत नहीं पड़ती। कलाकारों के सजने-संवरने के लिए न ही ग्रीन रूम की आवश्यकता होती है और ना ही नाट्य मंचन के लिए किसी पाल परदे की सहज, सरल और साधनहीन। कलाकार मेकअप पास पड़ोस के किसी घर या कमरे में या यह भी उपलब्ध नहीं होने पर पेड़ों की छाँव में कर लेते हैं नाचा की ही तरह कलाकार दर्शको के बीच से होकर मंच पर प्रवेश करते हैं। चूंकि ये सारे कलाकार इन्हीं दर्शकों के बीच के होते हैं। इसलिए मन में न कोई झिझक होती है, और न ही कोई दुराव-छिपाव। लोकनाट्य की यही विशेषता भी है।

भतरा नाट में कथानकों का आधार पौराणिक आख्यान ही होते हैं। वाद्य के रूप में मृदंग प्रमुख है। किन्तु अब बदलते समय के अनुसार ढोलक, टुड़बड़ी व अन्य आधुनिक वाद्यों का भी प्रयोग किया जाता है। भतरा नाट में लोकपरम्परा अनुसार प्रारंभ गणेश वंदना से की जाती है। फिर कथा प्रसंगानुसार कलाकार सज-धज कर मंच पर आते हैं। इसमें पात्र कलाकारों व वादक कलाकारों का समान महत्व होता है। मुख्य गायक नाट गुरु कहलाता है। वह अपने सहयोगी गायकों के साथ नाटक को गाता चलता है और वादक कलाकार संगत करते हैं। नाटगुरु के साथ पात्र भी इसे गाते हैं। लेकिन इनका गायन गौण होता है। ये बीच-बीच में संवाद बोलते हैं। सूत्रधारक कुछ सहायक होते हैं। सहगायकों को 'पालेया' या 'पाली धरबा लोक' कहा जाता है।

भतरा नाट से जहाँ लोगों का स्वस्थ मनोरंजन होता है, वहीं इससे समाज को सीख भी मिलती है। इसका आयोजन गाँवों में जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कार, मेले-मड़ई व जगार के अवसर पर किया जाता है। इस लोकनाट्य की प्रस्तुति रात्रि 9 बजे से प्रारंभ कर सूर्योदय तक किया जाना है। भतरा नाट में दुआरी अर्थात विदुषक और सूत्रधार की भूमिका स्थाई होती है। क्योंकि ये इस लोकनाट्य के महत्वपूर्ण पात्र हैं। शेष पात्र जरूरत के मुताबिक अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं। नाट में मूलकथा के साथ-साथ अन्य प्रसंग भी किए जाते हैं, जो लोगों में हास-परिहास पैदा करते हैं। इससे दर्शकों का भरपूर मनोरंजन होता है। संदेश के साथ-साथ मनोरंजन बहुत जरूरी है। इस कार्य में 'दुआरी जिसे 'दुतोंबरों' भी कहा जाता है बड़ा कुशल होता है। उसके संवाद और अदायगी से लोग बरबस ही हँस पड़ते हैं। भतरा नाट में भी नाचा की ही तरह स्त्री पात्रों की भूमिकाएँ पुरुष कलाकारों द्वारा की जाती है।

भतरा नाट की अपनी यह भी विशेषता है कि इसमें दर्शक प्रसन्न होकर कलाकारों को उनकी कला अदायगी पर पुरस्कार देते हैं। तब कलाकार या सूत्रधार पुरस्कार दाता की प्रशंसा कर उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता है। भतरा नाट में लोक तत्वों के शामिल होने के कारण इस लोक नाट्य में पूरी तरह से बस्तर की संस्कृति के दर्शन होते हैं। पौराणिक आख्यानों की कराओं से दर्शक परिचित रहते हैं। कथा के प्रति आस्था होती है। इसलिए उनकी रूचि भतरा नाट में बराबर बनी रहती है। भतरा नाट भले ही ओडिया नाट का दूसरा रूप है, किन्तु यह बस्तर अंचल की सांस्कृतिक पहचान है। वैसे भी बस्तर कला और संस्कृति का अक्षयकोष है। इसी कोष का एक मोती है भतरानाट। भतरा नाट लोक नाट्य का वह रूप है, जिससे लोक की भावना सहज रूप में संयुक्त है।

लोरिक चंदा (चंदैनी)-

लोरिक चंदा की कथा से सभी परिचित हैं। यह प्रणय गाथा है।यह

लोक गाथा के रूप में भारत के अन्य प्रदेशों की तरह छत्तीसगढ़ में भी गायी जाती है। लेकिन छत्तीसगढ़ में इस गाथा का लोकनाट्य रूप भी बड़ा लोकप्रिय है। लोरिक चंदा का लोक नाट्य रूप में प्रस्तुत करने वाला यह लोक कलाकारों का दल 'चंदैनी पार्टी' कहलाता है। इसमें 10 से 12 कलाकार होते हैं। नाचा की ही तरह इसमें स्त्री पात्र की भूमिकाएं पुरुष कलाकार ही करते हैं। एक मुख्य कलाकार होता है, जो लोक वाद्य चिकारा बजाता है और सूत्रात्मक रूप में गाथा को गाता है। इसमें तबला वादक व मंजीरा या झांझ वादक भी होते हैं। शेष कलाकार पात्रानुसार अभिनय करते हैं। लोरिक की भी मुख्य भूमिका होती है। चंदा, दौना मांजर, मलनीन डोकरी व अन्य पात्रों की भूमिका होती है।

समय के साथ बदलते परिवेश में अब वाद्यों की दृष्टि से बड़ा परिवर्तन आया है। चिकारा लोकवाद्य दिखाई नहीं पड़ता। इसका स्थान हारमोनियम ने ले लिया है। अन्य वाद्यों में तबला, ढोलक, बेजों, मंजीरा या झुमका प्रमुख है। सूत्रधार का कार्य लोरिक बना कलाकार स्वयं करता है। सूत्रात्मक गीतों का गायन कर वह लोरिक का भी अभिनय करता है। लोरिक यादव जाति का वीर युवा है। यादवी वेशभूषा में सुसज्जित लोरिक के सिर पर खुमरी, हाथों में लाठी व बांसुरी उसका आकर्षण है। इसी प्रकार चंदा, दौना मांजर, मलनीन, आदि की वेशभूषा पूरी तरह आम छत्तीसगढ़ी नारी की वेशभूषा होती है। साड़ी-पोलखा के साथ आभूषण गले में रूपिया, सुर्रा, कमर में करधन, हाथों में ऐंठी, कान में झुमका, पांवों में बिछिया, घुंघरू आदि। चंदैनी के लोक कलाकार साज श्रृंगार के लिए नाचा की तरह मुर्दार शंख, लाली आदि का उपयोग करते हैं। चंदैनी लोक नाट्य के प्रति लोगों में बड़ा आकर्षण होता है। चंदैनी लोक नाट्य का आयोजन नाचा की तरह सहज-सुलभ साधनों में संपन्न हो जाता है। मंच के लिए न पाल-परदे और न ही कोई तामझाम, चार बांस के खंभे गाड़ कर चांदनी (शामियाना) लगा दी और वादक कलाकारों के लिए बैठक व्यवस्था के रूप में तख्त की व्यवस्था, बस इतना ही और लोकनाट्य चंदैनी शुरु।

चंदैनी बड़ा मनोरंजक लोक नाट्य है। इसका कोई लिखित पाठ नहीं है। वाचिक परम्परा द्वारा यह आज भी लोक में व्याप्त है। चंदैनी लोक नाट्य की कथा बड़ी लम्बी है। इसका आयोजन 8 से 10 दिनों के लिए होता था। लेकिन अब अधिकतर एक दो दिनों के लिए ही होता है। एक दिनी आयोजन में अक्सर 'लोरिक चंदा उढ़रिया प्रसंग' को ही प्रस्तुत किया जाता है। गीत गायन के साथ संवादात्मक रूप में कथा आगे बढ़ती है। नाचा की तरह अन्य छत्तीसगढ़ लोकगीतों का इसमें समावेश होता है। संगीत के साथ-साथ इसमें अभिनय पक्ष की प्रमुखता है। चूंकि यह यादव जाति की कथा है। इसलिए मंच पर यादव जाति की लोक परम्परा और संस्कृति उभर कर आती है। चदैंनी का प्रारंभ ईश वंदना से होता है।

जय महामाई मोहबा के वो
अखरा के गुरु बैताले मोर
चौसठ जोगनी पुरखा के ओ
भुजा म होहव सहाय मोर
दाई के मोर दइजारो ओ
ददा के मरी मसान तोर
डुमर के दीदी सतबहिनिया ओ
बोइर के दीदी परेतीन ओ
आखिर म दीदी सनिच्चर ओ
छप्पन कोटि देवता सुमरव ओ
तोर पइंया लागंव दीदी पईया तोर
जा दिन देखे मोर भोजली
मोर बरगना मोर जंवारा ल कबि देबे ओ
जउने समय कर बोरिया में ग
येदे गावत हवय चंदा ये दिन तोर
येदे जावत हवय लोरिक ये दिन तोर
चंदा ये बेटी चंदैनी ये ओ
जा दिन बोले मोर भोजली
मोर जंवारा ल कचि देबे ओ।

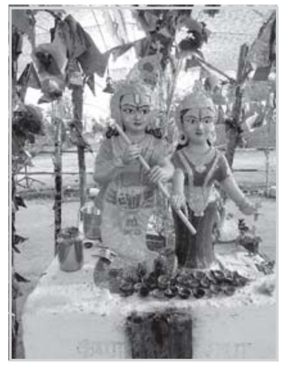

जैसा कि यह पहले बताया जा चुका है कि लोरिक का अभिनय कर रहा कलाकार सूत्रधार की भूमिका में गीत गायन करता है। इसके पश्चात संवादों के माध्यम से सारे कलाकार चरित्रों को अभिनीत करते है और उसे विस्तार देते हैं। चंदैनी लोक नाट्य रात्रि 8-9 बजे से प्रारंभ होकर सुबह 6-7 बजे तक चलता है। इस लोक नाट्य का आयोजन छट्टी (जन्म संस्कार) विवाह व अन्य अवसरों पर होता है। चंदैनी की लोकप्रियता सतनामी समुदाय में अधिक है। अधिकतर चंदैनी के कलाकार इसी समुदाय से जुड़े होते हैं। अतः उनके मांगलिक अवसरों पर भी यह संपन्न होता है। चंदैनी के लोक कलाकारों के पैरों में बंधे बड़े-बड़े घुंघरुओं का वजन पांच-पांच किलो तक होता है। कलाकारों का नृत्य कौशल दर्शकों को अचंभित कर देता है। इतने वजनों के बाद भी ये कलाकार सारी रात नृत्य व अभिनय कर दर्शकों का मनोरंजन करते हैं। किंतु चेहरे पर कहीं भी कोई थकान दिखाई नहीं पड़ती। यही लोक कलाकार की जीवटता है और लोक नाट्य का प्रभाव। छत्तीसगढ़ के लोक नाट्यों में चंदैनी लोकनाट्य एक प्रकार से चंदैनी लोक गाथा का नाट्य रुप है। लोकगाथा में एकरसता होती है। इसे केवल सुनकर आनंद लिया जाता है। जबकि नाट्य रुप में सुनना और देखना दोनों होता है। इसलिए दर्शकों को दुगुना आनंद मिलता है और ज्यादा प्रभावित करता है। चंदैनी का लोक नाट्य रुप इन्हीं कारणों से लोकप्रियता की ओर अग्रसर है। लोक कलाकार परंपरा निर्वहन के साथ प्रयोग के लिए भी आतुर रहता है। चंदैनी लोकनाट्य इसी का प्रतिफलन है। जिसका सुखद परिणाम हमारे सामने है।

संपर्क : 'साहित्य कुटीर' गंडई – पंडरिया
जिला- खैरागढ़-छुईखदान-गंडई (छ.ग.) मो.-9424113122

■■■

नृत्य - अभिनय युक्त मालवी का श्रृंगारपरक मनभावन लोकनाट्य रम्भा

- डॉ. पूरन सहगल

सुन्दर सजा मंच। पार्श्व में संगीत की मधुर धज्जः। समक्ष खुले विस्तृत मैदान में दर्शको की जिज्ञासाभरी दृष्टियाँ। कब शुरू होगा खेल?

तभी नगाड़े की गड़गड़ाहट से गूंज उठा मंच और कुछ ही देर में नगाड़े की मंद होती ध्वनि के साथ पुनः संगीत का माधुर्य तबला, सारंगी, ढोलक, हारमोनियम का सम्वेत स्वर।

मंच के दाहिनी कोण से नृत्यरत नट का प्रवेश। कुछ समय तक दोनों का नृत्य दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। नृत्य बंद हो जाता है।

नट- हाड़ोती का देसती, आया मारव देस।
एक हरीखी बोली चाली, एक हरीखो बेस ।।
खेल देखाता आ पुग्या, थांके गाम मुकाम।
राम सलामी झेलजो, खूब सुण्यो हे नाम ।।
या हे म्हारी रुक्मणी, मूँ हूँ कान्हों भाट।
निरत- नाट्य दोनों करां, खूब जमावां ठाठ।।

नटी- बसती तो माँ बाप हे, भरे सबां का पेट।
हगरां हमजे एक ज्युं, कई गरीब कई सेठ ।।

नट- दातां रो दातार है, ठावो थांको गाम।
कीरत चारी चौकड़े, जाणे तीरथ धाम ।।

नटी- बसती में आणद रहे, रहे न सोग अर रोग।
धरती रो वन्दन करां, नमत लगावां धोग ।।

नट- छई ऋतुआ सरसे उठे, रेहवे सुख अर चैन।
वरखा बरसे छावती, सुभ रा वे दन रैन ।।

नटी- खेल करांगा, अद्भुतो, वेसी खूब आणद।
मन चित्त राख्यां देखजो, साखी सूरज चंद ।।

नट- सरसत वाचा साधसी, भूल न रेहसी लेस।
रिद्ध-सिद्ध संग बिराजसी गवरी नंद गणेस ।।

नटी- पेहलां कथा सुणावसां, फेर रचावों खेल।
ध्यान लगा सुणजो सबै, हगरी वात सुमेल ।।

नट- रम्भा राणी रो करां, खेल घणो मसहूर।
रम्भा ने यूं जाणजो, धरती प्रगटी हूर ।।

नटी- आणद होसी अद्भुतो, उठसी रिदै तरंग।
निरत-किरत दोनों करां, गम्मत गीत रसरंग ।।

ऐसा कहने के पश्चात फिर से नगाड़ा बज उठता है। थोड़ी देर नगाड़ा बजने के बाद नगाड़ा की ध्वनि मंद होती है और पार्श्व संगीत बजने लगत्ता है।

नट-नटी पुनः नृत्यरत हो उठते हैं। कुछ देर तक नृत्य होता है और फिर थम जाता है। नट-नटी झुक-झुक कर दर्शकों का वन्दन करते हैं- दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण सजीव हो उठता है। तभी नट पुकारता है। सुनो सुनो ध्यान लगा कर सुनो-

नटी- नटी कथा सुणासां हाचली, करा नं घट बढ़ वातं
ख्याल रचाया पूर्वजां, गामो गाम विख्यात ।।

नट- गाम-गाम खेलो कर्यो, खूब जमायो रंग।
निरत-गान-कीरत कथी, वियों न रंग में भंग।।

नटी- मन-चित्त हुणजो बापजी, जद आसी आणद।
रगसा राखे सुरसतां, गणपत गवरां नंद।।

नट- भैरव बाबा रगसजो, दीजो गत-मत मान।
सतमत रम्भा रो करां, हाँचो हाँच बखान ।।

नटी- हणुमत ध्वजा बिराजयो, सुभ मंगल रे काज।
विघन न होवे लेस भी, रख लीजो प्रभु लाज।।

नट- एक थी सुघड़ सलोनी रम्भा। जैसा उसका नाम वैसा ही उसका रूप। स्वर्ग की रम्भा तो उसके सामने पानी भरे। रूप का अद्भुत अमूल्य और पावन पुनीत खजाना थी रम्भा सलोनी। आँखे मृगी की आँखो से भी अधिक कटीली, सुन्दर सजीली। कमल कलियाँ शरमा जायें। जिधर भी देखे अजब-गजब हो जाये। हिरनियों चौंक जायें। काली कजरारी आँखों पर धनुष सरीखी भवें। ऐसा लगे मानो भंवरे कलियों का रस पी कर मदमस्त हो उनींदे होकर सो रहे हों। कमर लटकता केश, काली भम्मर वेणी गानो नाग-नागी लिपट्या प्रेम करे।

नटी- दंत पंक्तवलियाँ ऐसी कि, मोती शरमा जायें। जब वह मुस्काए तो आकाश की बिजली मद्धम पड़ जाये। अनार के उज्जवल दानों जैसी आभा की चमकार चकाचौंध कर दे। ठहाका लगाए तो दसो दिशाओं में मधुर संगीत बज उठे। नाद ध्वनि सुनकर मयूर नृत्य करने लगें। कपोत अपनी कपोती की मनुहार करने लगे। कोयल पंचम राग गा उठे। चिड़ियाँ समवेत स्वर में प्रभाती गाने लगे।

नट- निर्मल सरोवर में कमल झलकारें मारे ऐसा लुभावना रूप। चले तो मोरनी जैसी इठ्लाहट और मृगी जैसी कुलाचण। अंग-अंग से रस चू पड़े ऐसा जोबन। सवेरे और सांझ में और। सवेरी काँचली की तणियाँ कसे तो संध्या को तडकने लगें। ऐसी थी रम्भा। मानो काम की कमान थी रम्भा।

नटी- मां बाप ने बालेपन में विवाह कर दिया था। तब वह पाँच बरस की नानकडी थी। बालपन तो फुर्र करता उड़ गया। आ गया जालिम जोबन। नस नस हिलोराँ ले। आगन में चले तो लगे मानो जोबन एड़ी की धमक से बाहर छलक पड़ेगा। परण्या तो पता नहीं कहाँ गहरी नींद में सोगया? न उसने सुध ली

न मां बाप को सुध बंध पा रही।

संग सहेलियों के गौने भी हो गये। संग की बची सहेलियाँ ताने मारने लगी। "अरी रम्भा तेरा परण्या तो अभी बालक है। गुड़ियों से खेलता होगा। जवान होता तो तेरी सुध लेने कभी का आ गया होता।

नटी- रम्भा काग को समाचार भेजती।
उड़ उड़ रे म्हारा वीरा कागला।
कीजे थारा जीजा सां ने झट आवे।
निरमल सरवर कमल खिल्यो हे,
भंवर पिया बिन कुम्हलावे।।

नट- काग तो समाचार पहुँचा भी आया लेकिन परण्या की ती ऊगत ही नहीं उड़ी। रम्भा फिर से अपने कागावीर को समझाकर समाचार भेजती है- अरे परण्या जी चेतो-

नटी- थारा जोड़ा की उड़ावे कारा कागला।
जोबन तो निकरे रे, ऐड़ी की जोर,
सूखे तो घण सूखे, थांकी परणी कामणी।
कांकड़ में सूखे ज्यूँ ऊभी खेजड़ी।
परणी परकोठे ऊबी जोवे थाकी वाट,
एसो क्युँ हिरदा पे भाटो मेल्यो।
नख दीयाँ रस चूवे, परणी एसी वो,
लेवो क्युँ सराप, परणी नार रो।
आओ तो झट आवो, परण्या भम्मर वो,
कंवलां के कंवलास्यां फेर कई आवणों।

नट- अरे परण्या जी आपकी जोड़ी की कामणी मुंडेर पर कौए उड़ा रही है। आप ऐसे पत्थर हृदय क्यों हो गये हो? आपकी परणी ऐसी जोबन भरी है कि, नख लगते ही रस चू पड़े। आप क्यों परणी का श्राप ले रहे हो? परकोटे पर खड़ी खड़ी आपकी वाट निहार रही है। वह वन की खेजड़ी की तरह तुम्हारे विरह ताप से सूखती जा रही है। आप शीघ्र आ जाओ। कंवल मुरझा जाने पर आने से क्या फायदा?

नटी- एक दिन शुभ की घड़ी ब्रह्म मुहूर्त में नणद भोजाई रीते बेवडे लेकर घर से चली अपने खेत। नणद भोजाई की जोड़ी ऐसी फबे मानो स्वर्ग की अपसरा। खाली बेवड़ा माथे। रम्भा दाहिने तो भोजाई बायें। आँखो पर नमता घूंघट। साठ कलियों का घाघरा गोठा किनारी जड़ी चुनरियाँ टुकियों वाली सतरंगी काँचलियाँ। शीश पर हीरे मोती जड़ी रखड़ियाँ, गले में नौसरहार। कम्मर कन्दौरे झलकारा करें। ऐसा लगता था मानो ये कन्दौरे जोबन को कब्जे में रखने की बंधन डोरियाँ हों। कानो में चलक-चलक झुमके सिंदूर सजी और मोतियों भरी मांग। भाल पर सूरज की चमकार जैसे टिकुली। हीरे मोती जड़े बिछूए। पैरों में पैजेपों की रणक-छड़क। शीश पर चमचमाते पीतल के घड़े (बेवड़े)। रम्भा की पोशाख सोसनी और भावज की लाल गुलाबी ईडाणी की लटालूम गजब हिलोरां ले।

नट- खेत पर मकई की फसल कचपचा रही।पक्षी टोचने लगे। खेत भी सम्हालना है और नहा कर पानी बेवड़े भर कर भी लाना है। भावज तो गोफण लेकर चढ़ गई डागरे (मचान) पर और रम्भा जलकुंड़ी की पाल पर बैठकर स्नान करने की तैयारी कर रही। वह कवेलू से एड़ी की मैल उतारने मे तल्लीन। जलकुंड़ी गाँव के मुख्य मार्ग पर स्थित जिसमें निर्मल जल चलकारे ले रहा।

नटी- पदमण रम्भा नार रो, सबदां नहीं बखान।
जाणे कोई अपसरा, असनावे बेभान।।

नट- अध ढक्यो तो डील हे, झलक रहया सब अंग।
रति राणी लाजां मरे, सुध बीसरे अनंग।।

नटी- रम्भा का अध ढका शरीर ऐसे झलमला रहा था कि, उसे देखकर रति भी शरमा जावे। कामदेव भी अपनी सुध बिसर जाय। इतना नाट्य परिचय देकर नट और नटी पुनः नृत्यरत हो उठते है। कुछ देर नृत्य करने के पश्चात दोनों हाथ जोड़ झुककर दर्शकों का वन्दन कर पार्श्व में चले जाते हैं तथा **वहीं से नाट्य निर्देशन एवं पद्यमय संवादों को गद्य में अर्थाते भी हैं।**

नट- तभी वहाँ एक घुड़सवार राहगीर आ पहुँचा। जलकुंड़ी पर स्नान करती रूपवान युवती को देखकर वह सुध बुध भूल गया। वह तो उसके चन्द्र उज्जवल रूप पर मोहित ही हो उठा। वह सोचने लगा "क्या धरती पर ऐसी सुन्दर नारी भी हो सकती है? हो न हो कोई स्वर्ग की अप्सरा जलकुंड़ी का निर्मल जल देखकर स्नान करने के लिए उत्तर आई हो। वह तो बेभान ही हो गया। उसने घोड़े की लगाम खींची और एक टक उस मनमोहक चन्द्रमुखी के रूप को निहारता खड़ा रहा। तभी घोड़ा हिनहिना उठा। घोड़े के हिनहिनाने की आवाज सुनकर रम्भा सावचेत हुई उसने देखा कोई घोड़े सवार राहगीर उसे एक टक निहार रहा है तब वह एकदम मछली की तरह रपस कर जलकुंड़ी में बैठ गई। निर्मल जल के बाहर केवल उसका मुख ही दिखलाई दे रहा था।

नटी- रम्भा रे मुख झलमले, अद्भुत अजब उजास।
जाणे पदमण खिल गई, सूरज रे परगास।।

नट- रम्भा के सुरूपित मुखमंडल ऐसा चमचमा रहा था मानो सूर्य के उदित होने पर पदमण खिल उठी हो।

नट- लाज लजाणी कामणी, आँखाँ में सरमाय।
ना तो भीतर रह सके, ना बाअर आ पाय।।

नट- रम्भा कामणी लाज से लजा रही थी। वह न तो जलकुंड़ी से बाहर आ पा रही थी और न ही भीतर बैठ पा रही थी। बाहर भी कैसे आये। देह तो अधढकी। सामने खड़ा घुडसवार राहगीर। बड़ी विकट स्थिति।

नटी- राहगीर ऐसो फबे, जाणे उग्यो भान।
जुबन भर्या सब अंग हे, मुखड़ो सुजस सुजान।।
बदन गठीलो रंगरचो, जोबन जुबन उमंग।
बारीक मूंछां रेख अर, नयणा उठे तरंग।।
मुखमंडल पे अद्भुतो, हूरज हरखो ताब।
भुज बिसाल, नाहरकटी, सिंह स्कध रुआब।
होठों मुलकाणी सुभे, आँखाँ भर्यो नेह।
जाणे बलती धरणी पे, झर असाढ़ी मेह।।

नट- राहगीर ऐसा सुशोभित था जैसे सूर्य उदित हो गया हो। उसके भर जवानी

से सुगठित अंग- अंग शोभित थे। बारीक सी मूछों की रेखा और नयनों में एक मोहक तरंग निकल रही थी। मुखमंडल पर सूर्य जैसा ओज था। विशाल गुजाएँ, सिंह कटी और सिंह स्कंध तेजस्विता प्रकट कर रहे थे। होठों पर मधुर मुस्कान और आँखों में स्नेह झलक रहा था। ऐसा लगता था मानो जेठ की धूप से तपी धरती पर आसाढ़ की वर्षा ने शीतलता पहुँचा कर सौंधी सुगंध विस्तारित कर दी हो।

नटी- तणियाँ वारो अंगरखो, पचरंग माथे पाग।
रम्भा मोहनी रूपती, नस नस वई सुजाग।।

राहगीर युवक ने तणियो वाला अंगरखा पहन रखा था और सिर पर पचरंगी पाग सुशोभित थी। रम्भा उस मोहन रूप पर मोहित हो गई।

नट- मोवित तो दोनई विया, रम्भा अर राहगीर।
पण रम्भा घण लाजणी, राख्यो संजम धीर।।
जोडी तो एसी फबे, जाणे राधिका कान।
चरकलियाँ करवा लागी, दोननई रो गुणगान।।

नटी- कुछ क्षणों में तो मोह में बेभान रहने के पश्चात राहगीर युवक चेतमान हुआ और बोला-

पंथी- "पाताल पाणी मुख साँवरो वो गोरी।
एड़ी रगरड़ती नार।
किण हंसा री थें हंसणी वो सांवल,
काई तमारो नाम जी।"

पार्श्व से नट- हे साँवली सलोनी गोरी, हे एड़ी का मैल रगड़ती नार, तुम किस हंस की हंसनी हो और तुम्हारा नाम क्या है?

नट- राहगीर की ऐसी बेशर्मी देखकर रम्भा को क्रोध तो आया किन्तु उसने धैर्य रखकर उत्तर दिया-

रम्भा- पियु हमारे जोड़ के रे पथी,
बसि रह्या अपणे देस।
उणी हंसा री मूं हंसणी रे पथी,
रम्भा म्हारो नाम जी।

पार्श्व से नट- अरे पंथी ! मेरे पियु मेरी जोड़ के हैं। वे अपने देश में बसे रहे हैं। मैं उसी हंस की हंसनी हूँ। मेरा नाम रम्भा है।

पार्श्व से नटी- रम्भा ने सोचा जवाब मिलते ही पंथी अपनी राह चला जायेगा। पंथी तो मोहित हो रहा था। वह तो सुध-बुध भूल चुका था। वह जाता कैसे? उसने फिर प्रश्न करे उससे पहले रम्भा ने सतर्क होकर पंथी को सचेत करते हुए कहा-

रम्भा- एकली मति जाणजो ओ पंथी मार में,
न्हारडी भावज हे हामू डागरे,
गोफण्यो भाटो तो पंथी नी चूकसी।
अतरा में हमज लो पंथी बावरे।।
चल्या तो जाओ थांकी वाट वो।।

पार्श्व से नट- अरे पंथी मुझे यहाँ मार (जंगल) में अकेली मत समझ लेना। सामने डागरे (मचान) पर सिंहनी मेरी भावज खड़ी है। उसका गोफण का निशाना अचूक है। इतने में समझ लो और अपनी राह चले जाओ।

पंथी तो फिर भी रुका रहा। रम्भा ने उसके मुख पर मोहक मुस्कान और धैर्य देखकर अपने क्रोध पर संयम किया और जवाब दिया-

रम्भा- "कणी देस ती आया बटोड़ा कणी देस में जाणो हे। चल्या जाओ ऊबी गडार वो बटोड़ा। मति करो रोर अर रार।"

पार्श्व से नट- अरे पंथी कौन देश से आये हो और कौन से देश में जाना है। चुपचाप खड़ी गडार (राह) चले जाओ। व्यर्थ का न तो विनोद करो और न विवाद बढ़ाओ। (रम्भा का जवाब सुन पंथी ने कहा)

पंथी- मी परदेसी पांवणा ओ गोरी,
नी देख्यो, जाण्यो थांका गाम।
भूल्या ने वाट वताड़ो ओ पदगण,
ऊँची करि ने बाँह।

पार्श्व से नट- रम्भा पंथी की चतुराई समझ गई। यदि बाँह ऊँची करके मार्ग बताऊँगी तो मेरा जोबन नंगा होगा। पंथी की चतुराई का जवाब तो चतुराई से ही देना होगा।

रम्भा- ऊँची पाल तराव की रे पंथी,
आगे चन्दन चौक।
जी के नीचे गेलो निकर्यो रे पथी,
दूखे म्हारी बाँह जी।

पार्श्व से नटी आगे तलाब की ऊँची पाल दिखेगी। फिर आगे चन्दन चौक है। उसी के नीचे से गाँव का रास्ता जा रहा है। मैं बाँह नहीं उठा सकती मेरी बाँह दुख रही है।

पार्श्व से नट- पंथी तो बाँवला हो रहा था। रम्भा के जवाब से वह संतुष्ट नहीं हुआ बल्कि उसकी जिज्ञासा और भी बढ गई।

पार्श्व से नटी - पथी की ऐसी निर्लज्जता देखकर रम्भा की आँखें लाल हो उठीं। भौवे तन गई उसने सोचा इस राहचलते बटोड़े की यह मजाल कि, मुझसे ऐसी निर्लज्जता पूर्ण बात करे।

पंथी- जल बिच जोबन कस्यो वो कामणा।
केजी करांजी को छाव।
भुलो ने गेलो वताड़ो जी सांवल।
ऊँची करी छनिक बाँह जी।

पार्श्व से नट- हे कामनी तुम्हारा यौवन जल में कसा हुआ है। मैं तुझ पर छाया भी कैसे करूँ? भूले पंथी को तनिक बाँह उठा कर संकेत से मार्ग बतला दो।

रम्भा- भूले तो पड़यो थांको हीवडो रे पंथी।
घोड़ला ने मति देओ दोस।
वचे, काछे, कामणो, सुद्ध बुद्ध देओ सार जी,
थांकी आँखाँ ने राखो तनिक नीमती।

नटी- रे पंथी तू मार्ग नहीं भूला और न तेरा घोड़ा भूला है। मार्ग तो तेरा मन भूल गया है। वचन से, चरित्र से, कर्म से दृढ़ रहा, सावधान रहो और अपनी आँखे तनिक नीची रखो।

नट- इतने में भी घोड़े सवार वहाँ से नहीं गया तब रम्भा ने फिर से सावधान

करते हुए कहा-

रम्भा- म्हारी भाभी ऊबी हे डागरे रे पंथी।
गोफण वण का हाथ जी।
अत्तरी वात में हमझ जाओ वो पंथी।
चल्या जाओ थांके देस जी।

पार्श्व से नटी - पंथी समझाने पर भी वहाँ से नहीं गया तब रम्भा ने उसे दोबारा चेतमान किया-उधर अच्छी तरह देख लो। मैंने पहले भी चेताया मेरी भाभी गोफण हाथ में लिए खड़ी है। इतने में समझ जाओ और अपनी राह चले जाओ।

पार्श्व से नट- घुड़सवार तो फिर भी नहीं गया तब भी नहीं गया मीठे और समझाइश के बोल उस पर प्रभावित नहीं हो रहे थे तब रम्भा को कड़वे बोल बोलने के लिए बाध्य होना पड़ा।

रम्भा- दीखो तो दीखो मुख सोबणा वो पंथी,
ऊँचो तो दीजे थांको खानदान जी।
एकली जाण रोर करतां वो पंथी,
नी आवे थांने लाजजी।

पार्श्व से नटी- अरे पंथी, तुम मुख मुद्रा से तो तेजवान लगते हो। किसी ऊँचे खानदान के लगते हो। तुम्हें अकेली नारी को इस तरह देखकर बाते करते लज्जा नही आती?

पंथी- थे लाजां कुंवारी रूप नगर की।
मूं सांजलगढ़ रो राजकुमार।
ए सांवल चालो म्हरे देस जी।
ले चालूं घुड़ले असवार।

पार्श्व से नट- पंथी की ऐसी हिमाकत और बेशर्मी देखकर रम्भा का आवेश बढ़ गया।

रम्भा- रे निलज्ज पंथी रे पापी बदकार।
बोलो बोल कुबोलणा, गैर मनख की नार।।
घुड़ला ने झट मोड़ लो, ऊबी देख गडार।
लाज छोड़ रणचण्डी बणतां नी लागण री वार।
थें रूप नगर का पांवणा, नी छेणण री रार।
केहणो सुण्यो वै चुक्यो, अरे पापी बदकार।

नटी- पर पुरुष की स्त्री से ऐसे निर्लज्ज बोल बोलते तुम्हे लाज नहीं आती? अब तुम्हारी भलाई इसी में है कि, अपना घोड़ा घुमालो और अपनी राह चले जाओ। अन्यथा मुझे लाज छोड़ कर रणचण्डी बनते देर नहीं लगेगी। तुम रूप नगर के पांवणा हो तो तुमसे रार छेड़ना ठीक नहीं है। कहना सुनना खूब हो चुका। अब चुपचाप अपनी राह चले जाओ।

पार्श्व से नटी- रम्भा के सीधे सपाट बेलाग उत्तर से पंथी का मन नहीं भरा उसने धैर्य नही खोया और कहा-

रम्भा- "चाँदी-सोना अनन्त घणा वो प्यारी,
मोत्यां ती भरजो मांग।
मेहलां बेठ मजलस करजो वो सावल,
चाबजो नागर पान।"

पार्श्व से नट- अरे गोरी, मेरे पास सोने-चाँदी का अनन्त भंडार है। मेरे साथ चलो, मोतियों से मांग सजाना। खूब मनोरंजन करना और महलों में बैठ आनद से रहकर नागर पान खाकर मुख सुवासित करना।

पार्श्व से नटी - पंथी की ऐसी निर्लज्जता देखकर रम्भा की आँखें लाल हो उठीं। भौंवे तन गई उसने सोचा इस राहचलते बटोड़े की यह मजाल कि, मुझसे ऐसी निर्लज्जता पूर्ण बात करे। उसने उत्तर दिया-

रम्भा- चाँदी-सोना जर्जरा रे पंथी,
नी भएँ मोतियन मांग,
मूं हंसा के री हंसणी रे पंथी,
तु कागा सो गवारा।"

नट- अरे पंथी तेरे सोने-चाँदी मेरे लिए व्यर्थ हैं। मुझे मोतियों से मांग भी नहीं सजानी है। मैं तो हंस की हंसणी हूँ और तु कौए जैसा गंवार।

पार्श्व से नटी - पंथी तो हठ पर ही आ गया वह बोला-

पंथी- चाँदी-सोना सिंणगार दूँ वो गोरी,
जल कंवलां करजो असनान। रतना करूँ निछावरी वो सावल,
मेहलाँ में रचाजो रुवाब।

पार्श्व से नट- अरे पदमण तुझे सोने चाँदी से श्रृंगारित करके सजा दूँगा। कंवल जल से स्नान करना। तुझ पर रत्न निछावर कर दूँगा। मेहलों में राजरानी बनकर शासन करना।

पार्श्व से नटी - रम्भा ने बात बढ़ाना उचित नहीं जाना। उसने पंथी की ओर से मुँह फेर लिया। पदमण रीस गई है। उसने घोडा पलटा लिया। इधर तो घोड़े का पलटना हुआ और उधर अवसर का लाभ उठा रम्भा अपने वस्त्र सम्भाल खेत पर बनी झोंपड़ी में घुस गई। उसने वस्त्र बदले पहले जैसे श्रृंगारित हुई और डागरे पर जा चढी। भाभी को नीचे उत्तार कर स्वयं गोफण सम्भाल कर पक्षी उड़ाने लगी।

भावज जलकुंड़ी पर आकर स्नान करने जा बैठी। तभी पंथी ने घोड़ा पलटा कर देखा तो जलकुंड़ी पर रम्भा के ही जैसी रूपवान दूसरी युवती बैठी है। वह जान गया और यही है पदमण की भावज। उसने डागरे पर देखा, पदमण तो गोफण फटकारती वहाँ खड़ी है। उसने घोड़ा खेत की ओर घुमा दिया और डागरे पर खड़ी रम्भा से बोला-

पंथी- ऊँचो डागरो डगमगो वो सावल,
कचपच पाक्यो खेत।
एक दो भुट्टा म्हने ई देओ नी रूपण।
कद आवांगा थांके देस जी।

पार्श्व से नट- रम्भा बेशर्म पंथी की दो अर्थ वाली बात समझ गई। उसने जवाब दिया-

रम्भा- "काचा भुट्टा कचपचा रे पंथी, नख दीयां रस जाय। घर धणी नी चाख्या रे बटोडा, पर घर कसतर जाय?"

पार्श्व से नटी- अरे पंथी अभी ये भुट्टे कचपचे है। नख लगते ही रस चू पड़ता है। अभी घर स्वामी ने भी इन्हें नहीं चखा। पर घर (दूसरे के हाथ) कैसे जा सकते

हैं? (रम्भा का जवाब सुनकर पंथी बोला)
पंथी- घर घणी सो तो माल घणी वो कामणा,
मन धारे जद खाय।
हम परदेसी पांवणा वो गोरी।
चल्या जावांगा म्हाके देस जी।
नटी- घर स्वामी तो माल स्वामी है। जब चाहे उपभोग करले। हम तो परदेसी मेहमान हैं। अपने देस चले जायेंगे।
पार्श्व से नट- पंथी की बेशर्मी देख रम्भा रीस में आकर बोली-
रम्भा- "हुड़ा के लगाऊँ गोफण कांकरा वो पंथी,
मांगू तो मांगू तीखी चोंच।
गाड़ी तो गडार हामूं देख लो पंथीड़ा।
फोरन तो पधारो थांकी वाट जी।"
पार्श्व से नटी- अरे पंथी गोफण के कंकरों से तोते की तीखी चोंच तोड दूँगी। आप सामने गाड़ी गडार (राह) देख लो और अपनी राह चले जाओ। पंथी रम्भा की रीस भरी चेतावनी समझ गया और उसने मन ही मन कहा
स्वगत पंथी- चाला पाछां बावडी, जठे पीपरी छाँव।
गोरी रणचंडी बणी, नी, लागण दे दाँव ।।
पार्श्व से नट- पंथी चुपचाप अपनी राह चला गया। नणद भोजाई ने स्नान कर वस्त्र सजा बावड़ी से अपने-अपने घड़े भरे और घर की ओर चल पड़ीं। घर पहुँच कर जब दोनों ने देखा कि, वह पंथी तो घोड़े सवार उनके द्वार पर खड़ा है। दोनों समझ गई। यह पंथी और कोई नहीं, यह तो इस घर का जमाई है। अब क्या हो?
रम्भा- "धोरो घोड़ो मुख हंसलो वो भावज।
पंचरंग्यो असवार।
किण घर का ई पांवणा वो भावज।
किण का कहिये भरतार जी।"
पार्श्व से नट- यह जानकर रम्भा कर दशा तो बेदशा हो गई। मुख पर पसीना छलक आया। मैंने भी कैसा व्यवहार किया अपने परण्ये के साथ। वह सोच-सोच पछताती खड़ी रह गई। अब क्या होगा?
कहीं यह रूठ कर वापिस न लौट जाये।
रम्भा-हे अम्बा पत राखजो, करजो सुभ रा साज।
अवरा-संवरा संवारजो, सुभ-सुभ करजो काज ।।
पार्श्व से नटी- हे अम्बे माता लाज बचा लेना। बिगडे कारज संवार देना। आज मेरी लाज बचा लेना। भावज ने झट अपना घूंघट व्यवस्थित किया। रम्भा का बेवड़ा उचकाकर उसका भी घूंघट निकाला। दोनों घर के भीतर गई। बेवड़े परेंडी पर रखे।

भावज ने जंवाई पांवणा की आगवानी कर आरती उतारी। घर में प्रवेश करवाया। रम्भा का सोलह श्रृंगारों से श्रृंगारित किया। रम्भा पूरे मान पान सहित अपने परण्ये के साथ ससुराल पहुँची। रम्भा की खूब आवभगत हुई। उसकी नणद ने आरती उतारी। सेज सजी। जिसकी अमानत उसी को मिल गई। रम्भा और उसका परण्या सेज चढे। बाहर स्त्रियां मंगलगीत गाने लगी।
परण्ये ने उल्हाना देकर कहा-
परण्या- "थें तो हंसा की हंसणी ओ प्यारी में कागा सो गंवार।
पार्श्व से नटी-रम्भा ने अत्यंत विनीत भाव से उत्तर दिया-
रम्भा-"कागा कहयो म्हने वाट चलंता वो पियु जी
हंसा कहयो तोय।
बीती बातां बिसार दो जी कता
गले लगा लो मोय।।" दोनों की चुलहबाजी समाप्त हुई।
पार्श्व से नटी- भंवरो लोभी बास को, कलियाँ रो रस लेय।
पदम फूल पे बैठतां, मन चायो सुख लेय ।। भंवरे ने पदमण का रस पान कर लिया। दोनों के तन-मन पुलकित हुए। आनंद ही आनंद हो गया।
पार्श्व से नट- कथा सुणाई हाँचली, सुभ मंगल रो ख्याल।
मैं तो राजी वैगया, थें भी विया निहाल ।।

नगाड़ा बजता है। कुछ देर बाद नगाड़ा मंद हो जाता है। पार्श्व संगीत बज उठता है। नट-नटी मंच पर प्रवेश कर नृत्यरत हो उठते है। बड़ी देर तक नृत्य चलता है। नृत्य रुकने पर दर्शक तालियाँ बजाकर आनंद प्रकट करते है। नट वरदाता है-खूब आनंद वयो, खूब ख्याल जम्यो। गाम में अमन-चमन रेहवे। ठाठोठाठ धान निपजे। सतियाँ से सत कायम रेहवे। सुहागणरा सौभाग अमर रीजो। बहनारा भाई जींदा रेहवे। जामणा रा पूत चिरंजीवी वीजो।
"रोग-सोग व्यापे नहीं, वेवे सुभ अर लाभ।
भांटा रो आसीस हे, रहवे सदा सुखाभ।।"
नटी- धरम धरा रेहवे अटल, चारी पगां सबूत।
रामधणी किरपां करें, सदमत वे मजबूत ।।
देवत हगरा गाम रा, लूर-लूर करां सलाम।
मेहर रखजो बाप जी, आरंद रेहवे गाम।।
नट- अकाल कद्यां पड़े नहीं, रेहवे सदां सुकाल।
भाटां री पत राखतां, करजो माला माल ।।

पार्श्व में नगाडा बज उठता है। थोडी देर में नगाडे की आवाज थम जाती है। पार्श्व संगीत बजता है। नट-नटी पुनः नृत्यरत होते हैं। कुछ देर नृत्य के थमने पर नाट्य समाप्त हो जाता है।

(**टीप-** रम्भा की यह काव्य गाथा संधारा के लोक मनीषी श्री दलेलसिह जी यादव की पोथी से मैंने सन् 2000 ईस्वी के जून माह में उतारी थी। जिसे मैंने उनकी अनुमति से मार्च 2011 में पुस्तकाकार प्रकाशित भी किया। इस गाथा का नाट्य रूपातर श्री जींदाराम भुवाई ने किया था। और अपने भुवाई खेलों में हाड़ौती और मालवा में मंचित किया। फिर उनके शिष्य काना भाट ने इसे अपने स्तर पर मंचित किया। मैंने इस लोक नाट्य को भी श्री दलेलसिंह जी की पोथी से उतारा और उनकी अनुमति से मालवी गद्य हिन्दी रूपांतर किया। मालवी पद्य में कोई परिवर्तन मैंने नहीं किया। अब यह जून-जुलाई 2026 को पुनः प्रकट होने को आतुर है। इति शुभम्।)

■■■

आलेख

गुस्साड़ी लोक नृत्य (तेलंगाना)

डॉ. एम. भास्कर शर्मा

तेलंगाना की संस्कृति एवं संप्रदाय के दर्पण दिखाने वाले नृत्यों में गुस्साड़ी नृत्य अत्यंत प्रसिद्ध है। यहाँ प्रदर्शन करने के लिए कई अलग-अलग लोक नृत्य हैं। पेरिणी शिवतांडव, गुस्साड़ी, लंबाडी, ढिम्सा, दप्पू नृत्य, चिंदु भागवत, कोया नृत्य और ओग्गु कथा तेलंगाना के कुछ महत्वपूर्ण लोक नृत्य रूप हैं। ये मुख्य रूप से त्योहारों, शादियों और आदिवासी समारोहों के दौरान किया जाते हैं।

तेलंगाना के लोक नृत्यों का विवरणः

पेरिनी शिवतांडवः- काकतीय राजाओं के समय (11वीं शताब्दी) से चली आ रही यह नृत्य परंपरा पुरुषों द्वारा भगवान शिव की स्मृति में किया जाने वाला एक "युद्ध नृत्य" है। इसे तेलंगाना का आधिकारिक नृत्य माना जाता है।

लम्बाड़ी (बंजारा) नृत्यः यह लम्बाड़ी जनजाति की महिलाओं द्वारा त्योहारों और फसल कटाई के मौसम में किया जाने वाला नृत्य है। यह एक जनजातीय कला रूप है।

डप्पू नृत्य / डप्पुला कोलाटमः- यह एक जोशीला नृत्य है जो 'डप्पू' (फ्रेम ड्रम) की लयबद्ध ताल पर किया जाता है। तेलंगाना में इसे 'तप्पेटा' भी कहा जाता है।

चिंदु भागवत :- यह एक कला रूप है जिसमें गीतों, नृत्य और चिंदु (उछलने-कूदने वाली हरकतें) के मेल से पौराणिक कथाओं का मंचन किया जाता है। कोया नृत्य / कोम्मू नृत्यः- यह कोया जनजातीय समुदाय द्वारा त्योहारों और शादियों के अवसर पर किया जाने वाला नृत्य है। इसे 'बाइसन-हॉर्न' नृत्य के नाम से भी जाना जाता है।

ओग्गु कथाः- यह एक नृत्य-कथा कला रूप है जिसमें भगवान शिव (मल्लिकार्जुन स्वामी) की कहानियों को गायन के माध्यम से सुनाया जाता है, जिसके साथ वाद्य यंत्रों की गूंजती हुई ताल भी बजती है।

धिमसा नृत्यः- यह एक पारंपरिक जनजातीय नृत्य है जिसकी मुख्य विशेषता इसके जोशीले पैरों की थिरकन (फुटवर्क) होता है।

गुस्साड़ी

अंतर्राष्ट्रीय बीज सम्मेलन में भी गुस्साड़ी कलाकारों की प्रदर्शनी हुई थी। दीपावली के समय यह नृत्य किया जाता है। तेलंगाना के आदिलाबाद जिले में गोंड लोग यह नृत्य करते हैं।

दंडारी उत्सव भोगी से शुरू होता है। भोगी के दिन, देवी एत्मासुर की पूजा की जाती है और दंडारी नृत्य में बजाए जाने वाले वाद्ययंत्रों, जैसे कि गुम्मेल, पर्रा, वेट्टे और कोडाल की भी पूजा की जाती है। लोग गुस्साड़ी पोशाक पहनते हैं। वे मोर के पंखों से बनी टोपी पहनते हैं और उसके ऊपर फूल लगाते हैं। वे कंधों पर बकरी की खाल का धारण करते हैं। वे अपने हाथों में गंगाराम सोट नामक एक छड़ी भी रखते हैं। इसके साथ ही, चाचोई नृत्य करने वालों को डियूर कहा जाता है। वे धोती और पगड़ी पहनते हैं। प्रत्येक डियूर का एक विशिष्ट नृत्य होता है। महिलाएं पुरुषों से अलग नृत्य करती हैं। महिलाओं द्वारा किए जाने वाले नृत्य को "रेला" नृत्य कहा जाता है और नृत्य करने वाली

महिलाओं को डीयांग कहा जाता है।

डंडारियों का एक समूह एक गाँव से दूसरे गाँव जाता है। वे गाँव पहुँचकर ढोल बजाते हुए प्रवेश करते हैं। गाँव वाले भी ढोल बजाकर उनका स्वागत करते हैं। त्योहार के अंतिम दिन कोलाबोडी उत्सव के साथ त्योहार का समापन होता है। यह नृत्य राष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिप्राप्त कलाकार पद्म श्री कनकराज़ द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

कनकराज़ ने 1982 में दिल्ली के लाल किले में आयोजित गणतंत्र दिवस समारोह में पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, जैल सिंह और पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम की उपस्थिति में गुस्साड़ी नृत्य प्रस्तुत किया था।

केंद्र सरकार ने गुस्साड़ी नृत्य में उनके योगदान को मान्यता देते हुए 2021 में कनक राजू को पद्म श्री पुरस्कार से सम्मानित किया। उनका निधन 25 अक्टूबर, 2024 को हुआ।

तेलंगाना के कुमुरमभीम जिले के मारलवाई गांव के 60 वर्षीय गुस्सादी कनकराजू को पद्म श्री से सम्मानित किया गया है। पारंपरिक आदिवासी गुस्साड़ी नृत्य के उस्ताद राजू को गुस्साड़ी राजू के नाम से जाना जाता है। 1981 में, राजू ने तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के सामने, बाद में दिवंगत राष्ट्रपति अब्दुल कलाम की उपस्थिति में और दिल्ली के लाल किले में गणतंत्र दिवस समारोह में गुस्साड़ी नृत्य प्रस्तुत किया था। 'राजू', जो

55 वर्षों से गुस्साड़ी नृत्य का प्रदर्शन और शिक्षण कर रहे हैं। उन्होंने इस नृत्य को देश भर में पहचान दिलाई है। पद्म श्री के साथ-साथ, कनकराजू को आठ राज्यों में गोंडी आदिवासी नृत्य के लिए रसोइया के रूप में उनके काम के लिए भी पद्म श्री से सम्मानित किया गया है। आज-कल पीएम श्री जवाहर नवोदय विद्यालयों में भी गुस्साड़ी नृत्य का प्रदर्शन किया जा रहा है।

संपर्क : लेखक सेवानिवृत्त अध्यापक कवि, लेखक
राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित कालेश्वरम् (पोस्ट) महादेवपुर मंडल
जिला : जयशंकर भूपालपल्ली, तेलंगाना राज्य – 505504

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email: bhanwarlalshrivas@gmail.com I kalasamaymagazine@gmail.com
मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 300/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

मालवा की लोक नाट्य कला ख्याल

- डॉ. पूरन सहगल

भारत हमें अनेक अंचलों में अलग-अलग स्वरूपों में दिखलाई देता है। ठीक उसी तरह जिस तरह अनेक रंगों वाली 'गुलक्यारियाँ' दिखलाई देती है। इसी सुन्दरवन में मालवा एक सुन्दर सुवासित एवं मनभावन गुलक्यारी है।

प्रत्येक अंचल की अपनी-अपनी उत्सव धर्मिता है। अपना-अपना लोकरंजन विधान और परम्पराएँ है।

जिस प्रकार अनेक सरिताएँ पहले अपनी-अपनी दिशा में बहती है। अपनी-अपनी मौज मस्ती मे इठलाती है। अपने अपने तटवर्ती अंचलों को रस प्लावित करती है और फिर एक महासमुद्र में जा मिलती है।

इसी प्रकार लोक रंजन के समस्त आयोजन वे ख्याल हों, रम्मत हों, गम्मत हो, ढारा-ढारी हों, स्वांग या नकल हों अथवा ऐसे ही अन्य अनेक लोक रंजन आयोजन हों सबका उद्देश्य लोकरंजन करना भी होता है और समाज में समरसता, संस्कृति, सहभागिता, जीवंतता का भाव उत्सर्जित करना भी होता है तथा लोक जीवन में रसज्ञता का संचार कर उसे तनावमुक्त बनाए रखना भी होता है।

यदि ध्यान दिया जाए तो सभी लोकरंजक माध्यम अलग-अलग होकर भी एक जैसे और एक ही लक्ष्य के लिए आयोजित होते रहे हैं। अन्ततः ये सब एक दूसरे से प्रभावित भी होते रहे और एक दूसरे के अच्छे तौर-तरीकों को आत्मसात भी करते रहे है।

ख्याल को यदि हम लोकरंजन का एक प्रकार का खेल' भी कह दे तो बहुत बड़ा अन्तर नहीं पड़ता। यही ख्याल आगे चलकर माच के रूप में परिवर्तित हो गया। माच के उस्ताद माच का खेलों, ख्यालो को 'तुर्रा का ख्याल और कलंगी का ख्याल कहकर अभिहित करते रहे। मेरी दृष्टि में ख्याल ने अपने पूर्ववर्ती एवं समवर्ती लोकरंजन के प्रदर्शनों को स्वयं में आत्मसात कर लिया और फिर स्वयं माच का विकसित और लोकप्रिय स्वरूप धारण कर लिया। इस प्रकार ख्याल को माच का पूर्व रूप अथवा उद्भव कहा जाना गलत नहीं होगा।

लोक नाट्य के स्रोत-

लोक जीवन के सहज संस्कार ही लोक नाट्यों के सहज स्रोत होते हैं। आपसी हेलमेल, धार्मिक अनुष्ठान, मेले-ठेले, वार त्योहार, फसल के प्रारम्भ अथवा समाप्ति की सुखदत्ता आदि लोकानुरंजन के ऐसे मूलभूत बिन्दु है जिनसे लोकनाट्यों की अन्तःसलिला प्रस्फुटित होती है। गाना, बजाना, नाचना सामूहिक जीवन की सरलतम प्रवृत्ति रही है इसलिए जहाँ कहीं भी कोई जाति, वर्ग अथवा समुदाय एकत्र होता है वहीं कई संस्कृतियों की विराट परम्पराएँ अपने चैतन्य को आत्मसात करती हुई अपनी आत्मा का विस्तार पाती है।

आत्मा का यही विस्तार धीरे-धीरे सामूहिक अभिव्यक्ति का ऐसे आडम्बरहीन जनमंच प्रस्तुत कर पाता है जहाँ जन संस्कृति और जन-मंगल के समस्त क्रिया-कलाप, मान्यताएँ, विश्वास, धर्म और श्रुतियाँ अपने जनपदीय लोक रंजक कलाओं को अपने अनुकूल ढालती हुई उसे अपने में सहज पचा लेती हैं।

इनके प्रणयन में प्रकृति का योग भी असीम रहता है। नृत्य, गीत, कथा, संवाद, अभिनय, संगीत आदि का सजृन प्रकृति की विशाल गोद में अनायास ही होता रहता है। प्रकृति नटी के समग्र क्रिया कलापों में नाट्य-तत्त्व के अकुर दृष्टिगोचर होते हैं। बादलों का उमड़ना-घुमड़ना, बिजली का चमकना-कड़कड़ाना, पवन का सरसराना, झिरमिर-झिरमिर बरसात होना, मधुर मधुर मोर नाचना, पतझड, वसंत, हेमन्त आदि ऋतुओं की चर्याएँ, उगती उठती लहलहाती फसलों की अनजान क्रियाएँ अपने सहकार, संदेश, सत्व और सीख के सोपान लुटाती हुई सहज लगती हैं। प्रकृति का यही अनन्त, असीम और अखूट योग नोक नाट्यों के उद्गम एवं विकास का मूलधार कहा जा सकता है।

लोक नाट्यों के लिए सदैव एक सी भूमि अनुकूल नहीं रहती है। एक सी भूमि में लोक नाट्यों की विविधता के दर्शन नहीं होते। भूमि का एक रूप नाट्य रूप को सीमित तथा सकीर्ण बनाता है। नाट्यों की विविधता तथा विकासशीलता के लिए भूमि की विविधरूपता आवश्यक है। इस दृष्टि से मालवा और राजस्थान की भूमि बड़ी अनुकूल रही है। यही कारण है कि नाट्यों के जितने विविधरूप यहाँ दृष्टिगोचर होते है उतने अन्यन्त्र नहीं।

सामान्य परिचय-

लोक नाटयों को एक प्रकार ख्यालों के रूप में जाना जाता है। इनकी गणना मंचीय नाट्यों में की जाती है। लोक नाट्यों का यह अति आधुनिक रूप है। इसका इतिहास सत्रहवी शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। इस सबंध में देवीलाल सामर और अगरचन्द नाहटा के मतव्य द्रष्टव्य है-

(घ) अभिनय में अनेक पात्र अनेक रूपों में मंच पर उतरकर आला दर्जे का अभिनय प्रस्तुत कर सकते हैं।

(अ) सत्रहवीं शताब्दी में आगरा के निकट ख्यालों की एक लोकधर्मी नाट्य विधा सृजित हुई। जो कालांतर में ख्यालों के रूप में परिवर्तित हुई जो आज अनेक रूपों में जनजीवन को आल्हादित कर रही है। यह ख्याल

सर्वप्रथम कल्पना और विचारों से उत्पन्न कवित्व रचना का ही दूसरा नाम था परंतु जब से वह रंगमंच पर खेल तमाशे का रूप धारण करने लगा, यह खेल का ख्याल कहलाया।

(ब) जन साधारण में जो मध्यकाल में रास, चर्चरि, फाग रमे व खेले जाते थे, वे ही कालांतर में रमत, रामत, खेल, ख्याल के रूप में प्रगटित हुए।

वे ख्याल खेल, ख्याल, तामासा, सांग, स्वाग, नौटकी, माच, रमत, रम्मत, रामत, रासधारी आदि के रूप मे प्रसिद्ध रहे है। यथा-

(क) ख्याल, खेल, तमासा आदि ख्यालों के नाम हैं। ख्यालों को खेल तमासे अथवा ख्याल-तमाशे भी कहते हैं। ख्याल पुस्तकों का नामकरण भी इन्हीं के आधार पर मिलता है। यथा-

(1) ख्याल वीरमसिंह नौटंकी का (चुन्नीलाल), विक्रम राजा और चन्द्रकला का ख्याल (उजीरा तेली)।

(2) खेल राजा केशरसिंह और रानी फूँलादे (प. शेषदास), मूमल म्हदरे का खेल (तेज कवि)

(3) "विक्रम को नयो तमासो" पीरू सोनी।

(ख) सांग, स्वांग, संगीत, सांगीता आदि नौटंकी के विविध नाम है। कहीं-कहीं नौटंकी के ख्याल को नौटकी का स्वांग भी कहते है। यथा-

त्व पद पंकज राखि उद, करूँ स्वांग प्रारम्भ
दास गणेश चिरंजी तौ नैंटकी स्वांग बनावें।

नौटकी का एक नाम भरत या भारत भी मिलता है।

मंच, वाद्य, कथावाचन, अभिनय समय आदि के अनुसार भी ये ख्याल विशेष सरणियों में विभक्त हुए और होते-होते इनकी कई रंग-शैलियाँ बन गई। यथा-

(ग) अभिनय में अनेक पात्र अनेक रूप में मंच पर उतरकर आला दर्जे का अभिनय करने लगे।

(क) मंच के अनुसार ये ख्याल प्रायः मंदिर के पास होते है। मंदिर पर चढ़कर सूत्रधार स्तुति परक छंद गाता है जिसे अभिनेता मंच पर खड़े दुहराते हैं। इनकी प्रचलन दशपुर के पड़दा तथा मनासा आंतरी में खूब रहा है। ये वीर, प्रेम और भक्तिपरक होते हैं। वीररस के ख्याल हमीर, प्रेम के अन्तर्गत पचफूला, आभलदे खेमजी, मूनारानी, ढोला मारवण, हीर राझा तथा भक्तिरस में मोरध्वज, प्रहलाद, रामायण, धनुष यज्ञ, नागलीला आदि के ख्याल उल्लेखनीय है।

(ख) वाद्य के अनुसार जैसे कड़ा शैली के ख्याल। वीर रस से पूर्ण शैली है जिसमें एक व्यक्ति किसी लोककथा का गायन करता है और पूरा समूह उसकी प्रमुख पंक्तियाँ दुहराता है। टेक झेलने के लिए नगाड़ों की किड़किड़ाहट देखते ही बनती है। इसी किडकिडाहट से नाट्यों की यह शैली आगे जाकर कड़ा नाम से जानी गई। यह नौटंकी से बिलकुल भिन्न होता है।

(ग) कथावाचन में अकेला कथावाचक अनेक मुद्राओं के विविध रूप लिए होता है। वाचन टुकड़े-टुकड़े करके होता है। इसी कथावाचन की शैली पर संवादात्मक प्रेम कथाओं और वीरगाथाओं के रूप मे देवनारायण, रामदेव, ढोला मरवण, रतना रेबारी, पाबूजी, वीर तेजाजी आदि महालोक नायकों का पाठ होता है। इनमें घटना वैचित्र्य और प्रेमजन्य आवेशों की बहुलता मिलती है। ढोला मरवण पाबूजी इनमें विशेष प्रसिद्ध है।

(घ) अभिनय में अनेक पात्र अनेक रूपों में मंच पर उतर कर आला दर्जे का अभिनय करते हैं। अभिनयात्मक संवादों का एक अलग प्रकार और है। इसके संवाद नौटंकी के आधार पर होते हैं। इनमें तेजाजी, डूंगजी, जवारजी, गोपीचंद भरथरी आदि विशेष प्रचलित है।

(ङ) इनकी प्रस्तुति नाटकीय परम्परा रामलीला से मिलती-जुलती है। इसमें वाद्य, गीत और नृत्य का तीव्र उफान मिलता है। स्थान विशेष के अनुसार भी इन ख्यालों ने नामकरण पाया और किसी क्षेत्र विशेष से पुकारे जाने लगे। यथा-

यहाँ तक कि ख्याल लेखकों की लोकप्रियता के साथ-साथ उनके द्वारा रचे जाने वाले ख्याल भी उन्हीं के नाम से चलने लगे। यथा-

अलीबक्ष द्वारा लिखित अलीबक्ष ख्याल अलवर की ओर विशेष प्रचलित रहे है। उनके नाम पर तो ख्यालों की एक रंगत ही चल पड़ी जो अलीबक्ष रंगत के नाम से लोकप्रिय हुई। अन्य लेखकों ने भी इस रंगत में अपने ख्याल लिखे।

इस प्रकार ख्यालों की यह चलत कई रंगशैलियों में प्रगटित हुई। शैली, रंगत, बहर, गायकी, छाप, पट्टी, बनावट, बणघट तथा चाल के अनुरूप यहाँ के ख्याल कई रूपों में देखे, सुने और समझे जाने लगे।

ख्याल की परिभाषा-

लोक नाट्य का वह रूप जो परम्परागत बंधीबंधाई रंगशैली में लोकजीवन में प्रचलित आख्यानों का प्रदर्शन कर सामान्य जनता का मनोरंजन करता है, ख्याल कहलाता है।

ख्याल की इस परिभाषा से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं-

(1) लोकनाट्य के ये परिष्कृत रूप होते हैं।

(2) इनका प्रदर्शन परम्परागत बंधीबधाई रंगशैली में किया जाता है। रंग से तात्पर्य राग, रंगत, धुन एवं गायकी तथा शैली से तात्पर्य रूप, प्रकार, चाल, छंद योजना व तन्त्र विशेष से है।

(3) इनकी विषय सामग्री लोकजीवन में प्रचलित कथा-आख्यान होते हैं।

(4) लोक जीवन का मंनोरंजन करना इनका मुख्य लक्ष्य रहता है।

ख्यालों का उद्भव एवं विकास लोक रंजन के उद्देश्य से पूरे अंचलों में अलग-अलग स्थितियों और स्थानीय सुविधाओं के स्तर पर होता रहा। इसका विकास आगरा से लगाकर राजस्थान-मालवा के दशपुर अंचल तक क्रमिक स्तर पर हुआ इसका प्रारम्भ हम 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मान सकते हैं। पूर्व में पारंपरिक रम्मते, चर्चरियाँ, फाग ही आगे चलकर नाट्य शैली में बाँधे गए। इसमें वीर नायकों, लोक देवताओं, प्रेम कथाओ और भक्ति

परक पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर ख्यालों का सृजन किया गया।

बाद में ख्याल के लिए आलीशान मंच बांधे जाते थे। ये मंच आठ-दस, फीट ऊँचे होते थे। नीचे तख्ते रहते थे। बाँस-बल्लियों के द्वारा इन खेलों की महीने-महीने तक खूब तैयारी की जाती थी। इनकी मंच सज्जा के लिए सारा गाँव उमड़ पड़ता था। शौकिया लोग इसमें खूब पैसा खर्च करते थे। इससे उनकी नामवरी भी खूब होती थी और वे लोग प्रतिष्ठा की निगाहों से देखे जाते थे। फलियों और कौर-किनारियों से मंडप सजाये जाते थे। चंदोवा ताना जाता था। गर्मी की लम्बी लम्बी रातों में इन ख्यालो की शरद पूर्णिमा की भाँति खिल उठती थी।

इन ख्यालों का मंचन बहुत ही उत्साह से किया जाता था। तब लोकरंजन का यही सधा सधाया साधन था। शानदार ख्यालों के प्रदर्शन के लिए अति सुन्दर मंच बनाया जाता था। इसलिए लगभग 8-10 फुट ऊँचा होता था जिससे दूर बैठे दर्शक भी ख्याल का मंचन देख सकें। पूरा गाँव बल्कि आसपास के गाँवों के लोग भी इसकी व्यवस्था और प्रदर्शन के लिए पूरे मन से सहयोग करते थे। इन ख्यालों के प्रदर्शन को कलाकार भी पूरे जोश से अपना अभिनय प्रस्तुत करते थे।

ख्यालों के प्रदर्शन में गीत, अभिनय, नृत्य-संगीत और वाद्य लोक कलाकारों द्वारा पूरी तैयारी के साथ प्रस्तुत होते थे।

विषय वस्तु-

विषय वस्तु की दृष्टि से इन ख्यालों को चार भागों में बाटाँ जा सकता है (1) ऐतिहासिक (2) श्रृंगारिक (3) सामाजिक (4) धार्मिक।

ऐतिहासिक ख्याल-

इन ख्यालो का विषय लोक जीवन के ऐतिहासिक धरातल पर पूर्णतया कसा हुआ होता था। इनके नायक वीर, पराक्रमी, साहसी, दृढव्रती तथा शुभचिंतक होते है। वे समाज को अपने साथ लेकर चलते हैं और वक्त आने पर समाज के लिए अपने आप को खपा देते हैं। उनका व्यक्तित्व विराट, व्यवहार निश्छल, आदर्श अनुकरणीय और कार्य चमत्कारिक होता है। यही कारण है कि लोक-गाथाओं में वर्णित नायक ऐसे ख्यालों के सर्वाधिक प्रिय विषय बन जाते हैं। उनमें राजा विक्रमादित्य, अमरसिंह राठौड़, गोगाजी चौहान, पाबूजी, देवनारायणजी, तेजाजी, डूंगजी जवारसिंह, बलजी, दूला धारड़ी, दयाराम धारड़ी आदि के ख्याल विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रृंगारिक ख्याल-

लोक जीवन में प्रेमाख्यान लोकप्रिय रहे है, उन्ही को आधार मानकर श्रृंगारिक ख्यालों की रचना प्रारम्भ हुई। इनमें प्रेमी- प्रेमिकाओं की जिन्दादिली अपने जीवंत ध्येय के साथ अपना मार्ग प्रशस्त करती रहती है। एक दूसरे को पाने की बलवती जिज्ञासाएँ दृढ़तर होती हुई देखी जाती है। कठिन से कठिन घड़ियों में वे अपने सात्त्विक प्रेम की दीपशिखा प्रज्वलित किये निरंतर गतिमान होते रहते हैं और अंत में उनका ध्येय, उनकी लगन, उनका विश्वास, उनका साहस और उनकी साधना फलीभूत होती हुई नजर आती है। सामाजिक एवं धार्मिक ख्याल भी इन्हीं के अनुसार खेले जाते है।

वर्गीकरण-

उपर्युक्त आधारों में केवल शिल्प-प्रक्रिया के आधार पर ही लोक नाट्यों का वर्गीकरण उचित जान पड़ता है। मेरी दृष्टि में लोक नाट्य निम्नांकित तीन रूपों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। इन ख्यालों को हम तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं-

भाषा-

भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित लोक नाट्य वहाँ की स्थानीय लोक भाषा, बोली अथवा वाणी में प्रदर्शित होते है। मालवी ख्यालों की भाषा मुख्यतः मालवी ही रही है। इनमें मालवी, मेवाड़ी, मारवाड़ी, मेवाती, हाड़ोती, जयपुरी, ढूंढाड़ी ये ख्याल अपने-अपने अंचल की लोक भाषाओं में लिखे गए और वहीं की लोक बोली में ही अभिनीत किए गए। उर्दू का प्रभाव तो सर्वत्र बना रहा।

राग तथा रंगत-

मालवा के ख्याल दोहा, कवित्त, छप्पय, शेर, आल्हा, दौड़, चौपाई, झड़, गजल, झेला, सवैया आदि में लिखे गये।

ये ख्याल मुख्यतया टोड़ी, लावड़ी, कालगंड़ा, माढ़, चन्द्रायणी, कव्वाली, झड़, तिझड़ी, रेखता, घूमड़ी, थियेटर, वराड़, तिपदी, दुलाणी, तिलाणी, चौझड़ी, पहाड़, झेला, लंगड़ी, रासड़ो, आरसी, हिंड़ोली, तरवो, जानकी, कव्वाली, बोझड़ी, खड़ी, पारकी, भैरवो, कैरवो, चलन, हरियाना, कहरवा, रसिया, झाड़शाही, कड़ी, खेंच, घूमर, सोरठा, वियाग, डेडकड़ी, आसावरी, सोहनी, ठुमरी, दादरा, शकीस्ता, तवील, शकील, द्रोण, बिरुदन, बिकट, विरूदन, दिलबहार, जिगरी, एजन, जुल्मार, दिलपसंद, वशीकरण, पदमावत, सिंगाविलोचन, बहरतावील, झिझौड़ी, जैजैवंती, भरविलावणी, काफी, देश, घनाश्री, कानड़ो, करनीमारू आदि रागों तथा रगतों में लिखे मिलते है।

इन ख्यालों में भारतीय परम्परा के मूल सिद्धांत की पालना देखी जाती है। यद्यपि इनका कथानक उतना सुगठित नहीं होता। कई बार चरित्र अपना पूर्ण उत्कर्ष दिखाये बिना ही लुप्त हो जाते हैं। कभी-कभी घटनाएँ भी उद्देश्यविहीन लगती हैं, परंतु फिर भी ये मुखर होते हैं और अपने पीछे अपना विराट संदेश छोड़ जाते हैं। कवियों का कल्पवृक्ष राजा भोज, सत्य पर डटा रहने वाला हठिला हमीर, भरे दरबार में अनुचित सम्बोधन के लिए सलावतखां को समाप्त करने वाला अमरसिंह, बादशाह से बदला चुकाने वाला छोटी सी जागीर का स्वामी दूल्हा धारड़ी, शीश का दान देकर सिद्धराज को झुकाने वाला, न्यारे-न्यारे अखाड़े, दल, फड़ अथवा मंडली बनाकर प्रदर्शन देना आरभ कर दिया।

इन ख्यालों के विशाल मंच पर एक महीना पहले एक थंबा गाढ़ कर उस पर अपने अखाड़े की झंडी लगा दी जाती है। इससे सर्वत्र परचम हो जाता है। वहीं पर सारी जानकारी ख्याल की लिख दी जाती है। ख्याल का नाम।

अखाड़े का नाम। खेल प्रारंभ करने की तिथि मिति भी लिख दी जाती है। लोगों में उत्साह जागृत हो जाता है। तिथि की प्रतीक्षा होती रहती है। लोग मंच के सामने वाले मैदान में अपने-अपने आसन बिछाकर अपना स्थान तय कर लेते हैं। ये खेल मुर्गे के सोने पर शुरू होते हैं और प्रातः मुर्गे की बांग पर समाप्त होते हैं।

यदि कहा जाय तो कहना होगा प्रारभ में इनके प्रदर्शन, अभिनय व संगीत परिपक्व नहीं होते थे। धीरे धीरे इनमें सुधार होता गया। इन खेलों में गोपीचन्द, आभलदे, पचफूला, खेमरा, ढोला मारू, मीर गाफरू, सदाव्रच्छ, सारंगा, प्रहलाद, हरिश्चन्द्र, अमरसिह राठौड़ आदि ख्याल प्रसिद्ध हुए। इनके साथ सारंगी, तबला तथा ढोलक बजाई जाती थी। पहले कलाकार गाते और तब वादक संगत करते, टेरिये टेर झेलते और कलाकारों के पाँव अभिनय के लिए थिरक पडते। उस्ताद हाथ में प्रदर्शित होने वाले ख्याल के लिए प्रत्येक अभिनेता के पीछे-पीछे घूमता और उसके हिस्से का बोल उसके कान में कहकर ढाई कड्ये, चौकड् दोहो का समा बाधा जाता।

ख्याल प्रारंभ होने के पहले और समाप्त होने के बाद हाथी, घोडे और ऊँठ पर शाही सवारी का भव्य आयोजन किया जाता था। प्रारंभ में गणपति की स्तुति होती थी-

सिमरो तो सिमरौं सदगुरु, जिन दीयो आदेस।
सदा भवानी दाहिने, सन्मुख रहे गणेस।।
तीन देव रक्षा करे, ब्रह्मा विष्णु, महेश,
गणपत रक्षा कीजो हमारी।।
रक्षा कीजे हमारी गजानन वर मांगू मूँ तोसे।
जो कोई तेरा ध्यान धरे तो बुद्धि जौगुणी होसे।।
खेलन जाऊँ ख्याल जो दीजो आज्ञा मोहें।
पारवती का पुत्र गजानन पहले सुमरू तोहें।। गणपत...।।
खेलन जाऊँ अमरसिंह लेकर तेरा नाम।
ध्यान तुम्हारो पहले धरस्यूं पाछे धरस्यूं पांव।।
सिद्ध मतदीजो देवजी सुरसत सिमरौ नांव।।
विगन हरण मंगल के करता अष्ट पहर तोये सवरूं।
बावन भेरू चोंसठ जोगनियाँ हाथ बजावे डमरू।।
जौसठ बाजा बाजती सजी और बाजता घुंघरू।
खेल हमारो पार उतारो आठ पहर तोये संवरूं।। गणपत...।।
गाँव आतरी के माइने सजी गेरी थांकी धाम।
घाट बड़ीली ऊफरे सजी गेरी थांकी धाम।।
चार खम्भ की छतरी कहिये ऊपर बड़ की झाम।
खेल हमारो पार उतारो तीन लोक में नाम।। गणपत...।।

यही ख्याल कालक्रम से विकसित होकर माच के रूप में सर्वप्रिय लोकरंजक बनते गए दशपुर पहुँचे। पश्चात ये ख्याल गोपाल गुरु द्वारा उज्जैन पहुँचे और वहाँ पर इनका समुचित विकास हुआ। जिस प्रकार उज्जैन में गोपाल गुरु ने ख्याल को माच के रूप में विकसित किया उसी प्रकार दशपुर अंचल में मनासा के निकट पड़दा के लक्ष्मणगिरि उस्ताद के ख्यालों का लेखन भी किया और कालातर में माच के रूप में भी विकसित कर परवान चढ़ाया। चूंकि पड़दां अरावली के तल में बसा गाँव है इस कारण इस पर मेवाड़ी नाट्य संस्कृति का प्रभाव सर्वप्रथम हुआ था।

इस प्रकार नीमच के लक्ष्मीनारायण नागदा ने कई ख्याल लिखे और मंचित किए। इनमें भक्त ध्रुव, भक्त पूरणमल, दानवीर कर्ण बहुत प्रसिद्ध हुए।

इस ख्याल नाट्य परम्परा का प्रभाव जनजीवन पर सदा-सदा बना रहा। नाट्य प्रेमी इन नाट्यों को बार-बार देखने के लिए उमंगित और उत्साहित बने रहे थे। एक समय केवल इस प्रकार के नाट्य, चौपालें, मंदिर आदि ही लोकरंजन के प्रमुख स्थान होते थे। लोक गायक गाँव-गाँव जाकर भी किसी चौंतरे पर खुले आकाश के तले अपनी गीत-नृत्यमयी अभिनय कला का प्रदर्शन करते रहे हैं। आज ये सांस्कृतिक परम्परा शनैः शनै लुप्तप्राय होती दिख रही है। इसका स्पष्ट कारण है लोक रंजन के अनेक विविध सहज साधन। यथा सिनेमा, टी.वी. आदि। तथापि रंगमचीय परम्परा अभी भी जीवित है। इसे सामाजिक प्रोत्साहन की बहुत नैतिक आवश्यकता है। ये लोक नाट्य हमारी सांस्कृतिक परम्परा के मुँह बोलते प्रवक्ता और हमारी विरासत है। इन्हें सुरक्षित रखना होगा।

■■■

श्रद्धांजलि...

कला, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में अपूरणीय क्षति...

तीजन बाई
(वरिष्ठ पंडवानी गायिका)

श्री केशरी चंद मालू
(वीणा म्यूजिक के प्रबंध निदेशक एवं 'स्वर सरिता' के प्रधान संपादक)

बशीर बद्र
(वरिष्ठ साहित्यकार, शायर)

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि !

लोकनाट्य स्वाँग

शिशिर उपाध्याय

मानव प्रवृत्ति है कि वह अपने में दूसरे को ढूंढता है, वह किसी की नकल कर उसकी प्रतिकृति बनना चाहता है, वह किसी अन्य की तरह बनकर सबका मनोरंजन करना चाहता है या फिर आदर्श बनकर प्रस्तुत होना चाहता है। किसी अन्य को अपने स्वयं के माध्यम से प्रस्तुत करना ही स्वाँग है।

प्राचीन काल से स्वाँग का लोक में प्रस्तुतीकरण होता आया है, जिसके माध्यम से हास्य व्यंग मनोरंजन किया जाता रहा है। स्वांग मनुष्य के नकल करने की सहज प्रवृत्ति से उत्पन्न हुआ है।

स्वांग एक लोकनाट्य है जिसमें कोई कथा नहीं होती बल्कि प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाओं में से कोई एक विषय को लेकर उसे समाज के सामने हास्य व्यंग्य के माध्यम से रखा जाता है, ताकि मनोरंजन भी हो और बुराइयाँ - अच्छाइयाँ पाखंड सामयिक विषय कलाकार की कला द्वारा सभी को दृष्टिगोचर हो सके। इस तरह स्वांग एक संगीतमय लोकनाट्य है जिसमें लोग समाज में प्रसिद्ध किसी प्रसिद्ध चरित्र की नकल की जाती है, चरित्र के अनुरूप वेशभूषा धारण कर उसी की तरह संवाद किए जाते हैं. उसकी चाल ढाल भाव भंगिमा को कलाकार मनोरंजक तरीके से प्रस्तुत करता है। स्वांग चरित्र पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक होने के साथ-साथ समसामयिक और अपने आसपास के भी हो सकते हैं।

स्वाँग मूल रूप से हरियाणा, उत्तर प्रदेश राजस्थान, मालवा और निमाड़ का लोकनाट्य है। राजस्थान की सहरिया जनजाति अपने स्वाँग के लिए प्रसिद्ध है इन स्वाँगों में नृत्य नाट्य के साथ-साथ, गीत, लोक-गीत और लोक-भाषा के संवाद होते हैं, जो लोक को आनंद और रस से भर देते हैं। निमाड़ के लोक-संस्कृति पुरुष पंडित रामनारायण उपाध्याय कहते हैं कि स्वाँग गतिमय होते हैं. स्वाँग में 10-12 पुरुषों का समूह होता है, जिसमें पुरुष ही मोती, मालाएं, घुंघरू और साड़ी दुपट्टा पहनकर महिला पात्र का स्वाँग रचते हैं. स्वाँग में समूह (दल) संगीत के लिए लोक वाद्य यंत्रों का उपयोग करते हैं जो कि, डफ, ढोलक, तोनक्या, हारमोनियम (पेटी), झांझ, आदि, होती है अधिकांश संवाद हास्य व्यंग के माध्यम से बोले जाते हैं, यह संवाद गेय और श्रृंगारिक छंद होते हैं।

अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में होली और विवाह उत्सव पर स्वाँग रचे जाते हैं.

निमाड़ क्षेत्र में होली से रंग पंचमी तक टोली बनाकर पुरुष महिलाओं का स्वाँग बनाकर हँसी-मजाक, ठिठोली करते हैं।

निमाड़ के विवाह उत्सव में जब दूल्हे को लेकर बारात चली जाती है, तब महिलाएं पुरुष का स्वाँग बनाकर हँसी-मजाक करती हैं. इसे "ठोटया खेलना कहते हैं। इसी तरह मालवा में भी होली पर स्वांग रचे जाते हैं।

यह मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय और मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक संदेश भी देते हैं। निमाड़ की माटी के गायक लोक नाट्य कर्मी, श्री प्रभाकर जी दुबे ने अपने प्रसिद्ध स्वाँग 'दारू कुट्टा' 'नाग और मोर "सेठ-सेठानी" अनपढ़ 'जैसे कई स्वाँगो के माध्यम से ज्वलंत सामाजिक समस्याओं को रखकर उनके निदानों को भी प्रस्तुत किया है।

श्री जानकीलाल भांड राजस्थान के एक प्रसिद्ध स्वाँग (बहुरूपिया) कलाकार हैं. जिन्होंने देश-विदेश के महोत्सव में प्रतिनिधित्व कर स्वाँग को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पारंपरिक लोक-कलाओं में स्थान दिलाया है। हरियाणा में स्वाँग 'सांग' के रूप में प्रचलित है हरियाणा के श्री किशन लाल भाट ने मंचों पर स्वाँग की परंपरा प्रारंभ की। पंडित दीपचंद तो स्वाँग का शेक्सपियर या कालिदास माना जाते है। हरियाणा के प्रसिद्ध स्वाँग हैं, 'गोपीचंद' भरथरी 'राजा भोज', "हरिश्चंद्र" हीर रांझा

आदि। कुछ जातियां और जनजातियों का तो कार्य स्वाँग (बहुरूपिया) रचना ही है वह प्रतिदिन विविध वेशभूषा में निकल पड़ते हैं और बच्चे बड़ों सभी का मनोरंजन करते हैं, नृत्य, संगीत, संवाद के साथ-साथ स्वाँग में अभिनय बहुत महत्वपूर्ण होता है। अभिनय हाव-भाव से अधिक नाटकीय और मनोरंजक बनाते है। स्वाँग की शैली ओपेरा शैली ओपन थिएटर से मिलती है। स्वाँग में होने वाले नवाचारों के साथ यह ग्रामीण क्षेत्र से लेकर देश-विदेश तक चारों दिशाओं में अपनी प्रसिद्धि का परचम लहरा रहा है।

देश के सुप्रसिद्ध फिल्म कलाकार, निर्माता-निर्देशक स्वप्न दर्शी राजकपूर साहब ने वर्ष 1970 में अपनी फिल्म मेरा नाम जोकर में स्वाँग कला का बेहतरीन प्रदर्शन किया है, उसमें जोकर वाला स्वाँग हँसाता है, गुदगुदाता है और रुलाता भी है। वह अनेक संदेश देता है जिसमें वो जिंदगी को तीन घंटे का सर्कस बताता है, वो कहता है पहला घंटा बचपन है, दूसरा जवानी तीसरा बुढ़ापा। वो प्रेम के अनेक रूप दिखाता है। वो कहता है के मसखरे जोकर से दिल न लगाना। वो माँ के प्रेम और अटूट रिश्ते को दिखाता है। वो जिंदगी का बड़ा संदेश देते हुवे कहता है, के ये दुनिया एक सर्कस है जिसमें व्यक्ति अपना किरदार निभाता है और चला जाता है, वो कहता है जीना यहाँ मरना यहाँ इसके सिवा जाना कहाँ। प्रयोगवादी राजकपूर साहब ने जोकर के माध्यम से बड़ी आदर्शवादी बाते कहीं हैं। उनके आदर्श चार्ली चैप्लिन थे. वे उनके संदेश पर चले भी, यह एक कार्टून था जिसमें एक हँसता और एक दुःखी रोता चेहरा था। राज साहब का कहना था कि सबसे अच्छा हास्य खुद पर हँसना

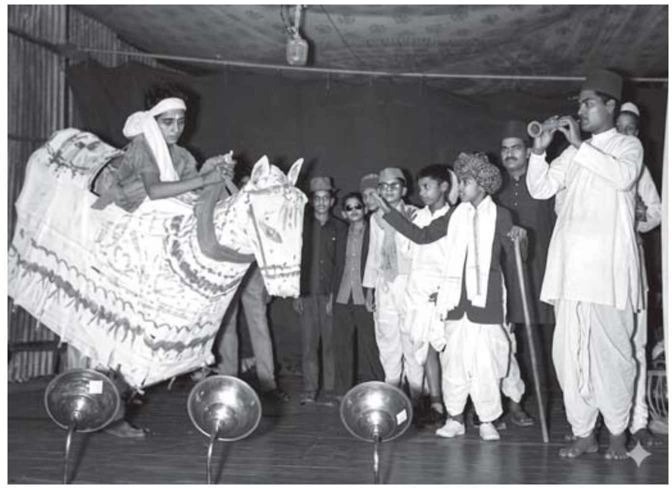

और सबसे बुरा हास्य किसी का उपहास करना है। स्वाँग का निर्वाह कपूर साहब ने नर्गिस जी के साथ वर्ष 1956 में आई फिल्म चोरी चोरी में भी किया था. 'कठपुतली'का पूरा गीत "जहां मैं जाती हूँ. वहीं चले आते हो 'उन दोनों ने स्वाँग शैली में ही किया।

स्वाँग जीवन के इर्द गिर्द अनेक संदेश देने वाला पुरातन लोक नाट्य है.. जिसमें जीवन के लोक संस्कृति अनेक रंग घुले हैं..

संपर्क : 22 ए सृजन विशाल नगर,
अन्नपूर्णा मार्ग (प्रतीक सेतु) इंदौर – 452021
मोबा. 9926021858

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ●आकर्षक गेटअप
●नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है- चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ- साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि में समन्वय करना।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा में समन्वय करना।

– भँवरलाल श्रीवास
निदेशक

आप स्वयं पधारे या सम्पर्क करें...

0755-2562294, 9425678058
kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आलेख

महाराष्ट्र का लोक नाट्य तमाशा

प्रो. संजय स्वर्णकार

'ये क्या तमाशा लगा रखा है?' या फिर 'छोटी-सी बात का तमाशा बन जाता है' या 'खेल-तमाशा देखने खड़ा हो गया था। ये तमाम दिन-प्रतिदिन के बोले जाने वाले वाक्यों में तमाशा एक महत्वपूर्ण शब्द बन जाता है। दरअसल 'तमाशा' शब्द मूल फारसी भाषा का है, जिसका अर्थ है 'मजे करना या खेलना'। आज, इस शब्द का प्रयोग आमतौर पर हिंदी, मराठी, कन्नड़ और उर्दू भाषाओं में दीर्घकाल से हो रहा है। हालांकि कुछ विद्वान् अपने शोध के आधार पर 'तमाशा' शब्द की उत्पत्ति तुर्की भाषा से मानते हैं। वहाँ से यह शब्द तुर्की आक्रमणकारियों के माध्यम से भारत आया तथा बाद में इसे उर्दू भाषा के विकास के दौरान इस भाषा में अपना स्थान मिला और फिर उर्दू भाषा ने अन्य भाषाओं को यह शब्द प्रदान किया। 'तमाशा' शब्द जेहन में आते ही बस एक ही अनुभूति होती है और वह है 'मनोरंजन' की अनुभूति।

'तमाशा' शब्द भारत के एक बड़े राज्य में बड़े पैमाने पर उपयोग में लाया जाता है और वह राज्य है महाराष्ट्र। वहां तमाशा एक पारंपरिक मराठी लोक कला रूप में विद्यमान है और उसकी सांस्कृतिक धरोहर है। इस धरोहर में गायन और नृत्य, दोनों ही रूप शामिल हैं। मराठी भाषा में 'तमाशा' शब्द का अर्थ है "विशिष्ट प्रदर्शनों का एक मिश्रण, जिसमें नृत्य, संगीत, महिलाओं या लड़कियों द्वारा विभिन्न भूमिकाओं का अभिनय, महिलाओं की सक्रिय भागीदारी और 'लावणी' गीतों का गायन शामिल होता है।" इस राज्य में 'तमाशा' का विभिन्न नाट्य समूहों एवं मंडलियों द्वारा व्यापक रूप से मंचन अथवा प्रदर्शन किया जाता है। यह मंडलियां एक चलित रंगमंच है, जो महाराष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग समय पर अपने पड़ाव डालता है और वहां पर 'तमाशा' का मंचन करता है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि फारसी या तुर्की भाषाओं से आये इस 'तमाशा' शब्द ने मराठी सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना ऐसा स्थान बनाया कि महाराष्ट्र राज्य के कोने-कोने में अपनी एक पहचान बना ली है और एक लोक कला रूप का स्वरूप धारण कर लिया।

अब बात करते हैं कि 'तमाशा' का लोक नाटय रूप महाराष्ट्र में कब अस्तित्व में आया? हालांकि यह तय करना अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी ऐसा माना जाता है कि मध्यकाल में इसने महाराष्ट्र के भौगोलिक अंचल में कहीं अपना अस्तित्व तलाशा और फिर वहां अपनी जड़ें जमाता चला गया। यह भी माना जाता है कि आदिलशाही के दौर में 'तमाशा' एक विधा के रूप में विकसित हुआ और शीघ्र ही इसने मनोरंजन के नाम पर स्थानीय लोगों के दिलों में अपनी जगह बना ली और दक्षिणी महाराष्ट्र से प्रारंभ हुआ यह लोक नाट्य धीरे-धीरे महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में विस्तार करता चला गया। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो तेरहवीं शताब्दी (1290 ईस्वी) में संत ज्ञानेश्वर साहित्य में तमाशा का उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं इसे गम्मत या मनोरंजन या हंसी ठिठोली के रूप बताया गया है, जो बाद में तमाशा का ही एक अंग बन गया।

'तमाशा' को महाराष्ट्र के शहरी क्षेत्रों में अथवा संभ्रांत वर्ग में 'लोक नाट्य' के रूप में पुकारा जाता है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह आज भी इसे 'तमाशा' के नाम से ही जाना जाता हैं। इस लोक नाट्य कला रूप में गीत, संगीत एवं नृत्य सभी विधायें विभिन्न वाद्य यंत्रों सहित सम्मिलित होते हैं। हालांकि समय के साथ अब इसमें कथक नृत्य, भजन, कीर्तन, गजल एवं शायरी ने भी अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। 'तमाशा' के प्रारंभिक स्वरूप में मुख्य रूप से दो भाग थे। प्रथम भाग 'ढोलकी बारी' और द्वितीय भाग 'संगीत बारी' कहलाता है। इनके माध्यम से नृत्य और संगीत की विशेष रूप से प्रस्तुति की जाती थी और नाट्य का प्रदर्शन गौण था। बाद में धीरे-धीरे इसमें नाट्य का प्रचलन बढ़ता गया तथा अन्य विधायें भी शामिल होती गई। तमाशा का एक और अंग शामिल होता है, जिसे 'गम्मत' कहा जाता था, मुस्लिम शासकों के बीच विशेष रूप से लोकप्रिय हुआ था।

जहां तक तमाशा लोक नाट्य के सांगठनिक स्वरूप का प्रश्न है, इसे दीर्घकाल की परंपराओं, प्रथाओं, प्रस्तुतिकरण एवं व्यवस्थाओं के विकास के दौर में एक संगठित रूप प्रदान किया गया। तमाशा लोक नाट्य के लिये जहां रचनाकार की आवश्यकता होती है, वहीं कलाकार भी उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं। इसकी व्यवस्था के लिये प्रबंधक होते हैं तथा श्रमिकों की एक फौज भी होती है, तम्बू बांधने वाले, वायरमेन, रसोइये आदि शामिल होते हैं। इस लोक नाट्य की स्क्रिप्ट लिखने वाले अर्थात् रचनाकार को शाहीर कहा जाता है। तमाशा

कला की स्क्रिप्ट पर उर्दू भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। तमाशा में प्रस्तुति देने वाले कलाकारों को 'तमाशागी' बोला जाता है, इसमें अभिनेता, अभिनेत्री, नर्तक, नर्तकी, वादक, गायक एवं विदूषक, मसखरे आदि रूप शामिल होते है।

तमाशा के आयोजन को सफल बनाने के लिये इसकी मंडली अथवा फड़ में 100 से 150 सहकर्मी अथवा श्रमिक होते हैं, जो आमतौर पर उत्तरप्रदेश अथवा बिहार के निवासी होते हैं और दलित होते हैं। इनकी आयु 15 से 45 के मध्य होती है। इन्हें अपनी मंडली के साथ सितंबर से मई तक, तमाशा के आठ महीने के सीजन के दौरान कम-से-कम 210 बार तमाशा का आयोजन कराना होता है। अन्य सहकर्मियों की तुलना में इन्हें कम पारिश्रमिक मिलता है, लेकिन आठ माह तक वेतन में स्थिरता उन्हें कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। विपरीत परिस्थितियों में तथा अपने राज्य को छोड़कर अन्य राज्य में लंबे समय तक कार्य करना एक चुनौती तो होता है, लेकिन यह लोग मंडली अथवा फड़ के साथ एक बार जुड़ जाते हैं तो उसके साथ दीर्घकाल तक कार्य करते हैं।

तमाशा की मंडली में आज मंचन करने वाले कलाकारों में लिंग भेद, जाति भेद और स्थान भेद दिखाई नहीं देता है, किंतु यदि हम इसके प्रारंभिक दौर की बात करें तो तमाशा के मंचन में मुख्य रूप से निम्न जाति माहेर एवं मांग समुदाय के लोगों को शामिल किया जाता था। माहेर और मांग समुदायों के बच्चों को इस कला में प्रशिक्षित किया जाता था, और वे त्योहारों के दिनों में अपनी प्रस्तुति दिया करते थे। महाराष्ट्र में, हर गाँव में ग्राम देवता की पूजा-अर्चना का उत्सव मनाया जाता है, और इन उत्सवों के दौरान, पूरे समुदाय के लिए 'तमाशा' का आयोजन किया जाता था। शुरुआत में, केवल पुरुष और लड़के ही यह प्रस्तुति देते थे। धीरे-धीरे, उनकी जगह महिलाओं ने ले ली। अन्य दिनों में भी, वे अपनी आजीविका कमाने के लिए प्रस्तुति देते हैं। वर्तमान में यह लोक नाट्य एक महिला-प्रधान कला रूप बन चुका है, फिर भी मंच पर पुरुष कलाकारों की उपस्थिति भी दिखाई देती हैं। प्रारंभ में तमाशा मंडलियों में अन्य स्थानों के लोगों को शामिल नहीं किया जाता था, अब इस तरह की कोई वर्जना नहीं है।

तमाशा की उत्पत्ति से लेकर लंबे समय तक इसका लुत्फ उठाने वाले दर्शक भी अधिकांशतः निम्न जाति समुदाय से संबंधित होते थे। क्योंकि ऐसा बताया जाता है कि उच्च और कुलीन वर्ग के लोग इस कला रूप को शायद ही कभी देखते थे। यहाँ तक कि तमाशा देखना उस समय एक प्रकार का 'पाप' माना जाता था। यही नहीं, तमाशा में प्रयुक्त होने वाले वाद्ययंत्र, जैसे कि 'ढोल', 'ढोलकी' और 'तुनतुने', का प्रयोग भी उच्च जाति के लोगों द्वारा नहीं किया जाता था। यह भी मान्यता है कि ऊँची जाति के लोग इन वाद्य यंत्रों को बजाना नहीं चाहते थे और न सीखना चाहते थे। अगर कोई ऊँची जाति का व्यक्ति इन वाद्य यंत्रों को सीखना भी चाहता था, तो उसे सीखने की इजाजत नहीं थी। यही कारण है कि 'ढोल', 'ढोलकी' और 'तुनतुने' बजाने वाले आज भी अधिकांशतः वही ही लोग मिलेंगे।

महाराष्ट्र के लोक नाट्य तमाशा में महिला और पुरुष कलाकारों के परिधान बेहद रंग-बिरंगे, पारंपरिक और आकर्षक होते हैं। ये परिधान न केवल राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक पहचान को दर्शाते हैं बल्कि प्रदर्शन के दौरान कलाकारों की गतिशीलता को भी सहज बनाते हैं। तमाशा में कला प्रदर्शन करने वाली महिला कलाकार, जिन्हें मुरकी कहा जाता है, चमकीले लाल या हरे रंग की पारंपरिक साड़ी पहनती हैं, जिसे महाराष्ट्रीयन शैली में 'काची' कहा जाता है। यह नौवारी साड़ी यह 9 गज लंबी पारंपरिक साड़ी होती है। इसे पैरों के बीच से पीछे की ओर लांघ मारकर 'काष्टा' शैली में बांधा जाता है। यह शैली नर्तकियों को मंच पर आसानी से थिरकने और तेज गति से नृत्य करने में मदद करती है। साड़ी के साथ चमकीले और गहरे रंग की कढ़ाई या जरी वाली ब्लाउज (चोली) पहनी जाती है। अपने बालों का जूड़ा बनाकर उसे वेणी या फूलों के गजरे और सोने के पिन से सजाती हैं, ढेर सारी रंगबिरंगी चूड़ियाँ पहनती हैं, और पैरों में घुंघरू (भारी पायल) बाँधकर लोक संगीत की थाप पर इस कला का प्रदर्शन करती हैं। महिलाएं सोने और मोतियों के भारी गहने पहनती हैं। महाराष्ट्रीयन 'नथ' (मोतियों और लाल-हरे नगों वाली नाक की बाली) महिलाओं द्वारा पहना जाने वाला एक महत्वपूर्ण आभूषण है। गले में पहना जाने वाला छोटा और भारी सोने के मोतियों का चोकर हार, बाजुओं और कलाई पर पहने जाने वाले कड़े महिलाओं की सुंदरता में चार चांद लगा देता है।

पुरुष कलाकारों ढोलकी वादक, शाहिर, या हास्य कलाकार 'सोंगाड्या' के पृथक् पृथक् परिधान होते हैं। पुरुष कलाकार आमतौर पर सफेद, क्रीम या केसरिया रंग की सूती धोती पहनते हैं, जिसे पांच जगहों से मोड़कर पारंपरिक तरीके से बांधा जाता है। ऊपर पहनने के लिए ढीला-ढाला कुर्ता या बगल में बांधने वाला 'बारबंडी' (एक विशेष प्रकार का कुर्ता) पहना जाता है। सिर पर चमकीले रंग (जैसे गुलाबी, भगवा या पीला) का पारंपरिक महाराष्ट्रीयन फेटा या साफा बांधा जाता है, जो उनकी शान का प्रतीक होता है। कुछ नाटकों में मुख्य गायक (शाहिर) कुर्ते के ऊपर चमकीली या कढ़ाई वाली बिना आस्तीन की जैकेट पहनते हैं। कंधे पर एक रंगीन सूती या रेशमी गमछा दुपट्टा डाला जाता है।

तमाशा का हर एक प्रस्तुतिकरण अमूमन पांच भागों में बंटा हुआ होता है। गण-गवळण, बतावणी, सवाल-जवाब, वग और लावणी। **गण-गवळण** तमाशा की शुरुआत हमेशा ईश्वर की आराधना से शुरू होती है। कलाकार बताते हैं कि "हम कला के कद्रदानों की सेवा करने के लिए तैयार हैं और हमें तेरा आशीर्वाद चाहिए"। यानि ये अपनी बात ईश्वर तक पहुंचाने के बाद ही तमाशा शुरू करते है। इसे गण कहते हैं। ये गणपति से आया है। **बतावणी -** इसमें विदूषक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विदूषक यानि मसखरे, जिसे

'नाच्या' कहा जाता है, द्वारा कोई भी एक मजेदार घटनाक्रम निर्माण कर के हास्य पैदा किया जाता है। दोहरे संवाद और हावभावों से भरपूर बतावणी का सबसे अहम किरदार होता है 'नाच्या'। **सवाल-जवाब** इसमें मुख्य महिला और पुरुष किरदारों के बीच शाब्दिक जुगलबंदी हुआ करती है। अक्सर इसमें एक-दूसरे के आगे पहेलियां रखी जाती हैं। संगीतमय पहेलियां। एक-दूसरे को नीचा दिखाती शाब्दिक नोंकझोंक भी होती है। हालांकि ये पूरी तरफ स्क्रिप्टेड होता है, लेकिन मजेदार होता है। **वग-वग** तमाशा का सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला हिस्सा है। ये दिखाता है कि कैसे लोककलाएं अपने अंदर संस्कृति को, इतिहास को समुचित जगह दिए हुए हैं। इस हिस्से में मुख्यतः एक लघु नाटिका होती है। तमाशा के शुरुआती दिनों में ये अक्सर पौराणिक कथाओं पर आधारित हुआ करती थीं। वक्त बीतते-बीतते इसमें सामाजिक विषयों को चुना जाने लगा। समाज की कुरीतियों को नाटक के रूप में पेश किया जाने लगा। **लावणी -तमाशा** का वो हिस्सा, जिससे दर्शकों में बड़ी उत्सुकता और उत्तेजना उत्पन्न होती थी। लावणी के लिए पागल दर्शकों के सामने एक से एक उम्दा गीतों पर नर्तकियां नाचती हैं।

तमाशा के प्रति कलाकार का समर्पण देखने लायक होता है। बताया जाता है कि महाराष्ट्र के नारायणगांव की एक मशहूर एवं महान तमाशा कलाकार विट्ठाबाई एक बार तमाशा के दौरान गर्भवती होने के बावजूद दर्शकों की अत्यधिक मांग पर मंच पर अपनी प्रस्तुति दे रही थीं। इस दौरान उन्हें प्रसव पीड़ा शुरू हो गई और उन्हें मंच के पीछे ले जाया गया। उन्होंने एक बच्चे को जन्म दिया, लेकिन प्रसव के तत्काल पश्चात् पुनः मंच पर आकर अपनी कला का प्रदर्शन जारी रखा। ऐसे कलाकारों की मौजूदगी ने तमाशा लोक नाट्य को महाराष्ट्र में जीवित बनाये रखा।

वर्तमान समय में आधुनिकता, वैश्वीकरण और डिजिटल मनोरंजन के प्रसार ने महाराष्ट्र के पारंपरिक लोक नाट्य तमाशा के स्वरूप, प्रस्तुतीकरण और प्रासंगिकता को गहराई से प्रभावित किया है। आधुनिकता के इस प्रभाव के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पहलू सामने आए हैं। पहले तमाशा मंडलियां (फड़) बैलगाड़ियों पर यात्रा करती थीं। आज वे बड़े प्रोडक्शन हाउस की तरह काम करती हैं, जो आधुनिक वाहनों, साउंड वैन और वाटरप्रूफ तंबुओं (टेंट) से लैस होती हैं। तमाशा की परंपरागत प्रस्तुतियों में आज आधुनिक विषय-वस्तु, गद्य, संगीत, वाद्य यंत्र (इलेक्ट्रॉनिक कीबोर्ड, ड्रम पैड और सिंथेसाइजर का प्रयोग) और साउंड सिस्टम को शामिल कर लिया गया है, और पारंपरिक 'सरदार' (सूत्रधार) की भूमिका पूरी तरह से लुप्त हो गई है। इसके अलावा, तमाशा ने सिनेमा को प्रभावित किया है, और सिनेमा ने तमाशा को, यानी दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया है। पहले तमाशा या दशावतार के प्रयोग पूरी रात (रात-रातभर) चलते थे। आधुनिक जीवन की व्यस्तता और सरकारी नियमों (जैसे रात 10 बजे के बाद लाउडस्पीकर पर रोक) के कारण अब ये प्रदर्शन 2 से 3 घंटे में सिमट गए हैं।

आधुनिकता ने महाराष्ट्र के लोक नाट्य को तकनीकी रूप से समृद्ध और व्यापक तो बनाया है, लेकिन इसके कारण इसकी अस्मिता और पारंपरिक सौन्दर्य कहीं खोता जा रहा है। वर्तमान में 'महाराष्ट्र तमाशा परिषद' और सरकारी सांस्कृतिक विभाग इन कलाओं के मूल स्वरूप को बचाए रखते हुए इन्हें आधुनिक समाज के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

तमाशा पर प्रतिबंध तथा नये नियमों का निर्माण:

एक समय ऐसा भी आया, जब महाराष्ट्र के प्रथम मुख्यमंत्री श्री बालासाहेब गंगाधर खेर के कार्यकाल (1947 से 1952 ई.) के दौरान इस कला रूप पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। यह प्रतिबंध उन शिकायतों के आधार पर लगाया गया था, जिनमें कहा गया था कि तमाशा में अत्यधिक अश्लीलता का प्रयोग किया जा रहा है। इस प्रतिबंध के लागू होने के कारण, तमाशा के कई 'फड़' (समूह) और 'कलाकार' (कलाकार) भारी संकट में फँस गए, क्योंकि उनके पास आजीविका कमाने का कोई अन्य साधन नहीं बचा था। इसके परिणामस्वरूप, कलाकारों और उनके परिवारों को अपनी आजीविका के लिए अत्यंत कठिन संघर्ष करना पड़ा। समाज के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों, जैसे ओबासाहेब मजूमदार, बापूसाहेब जितिनकर, पोपटलाल साहा और अन्य लोगों ने, इन कलाकारों की दयनीय स्थिति को देखते हुए, महाराष्ट्र सरकार से 'तमाशा- पर लगे प्रतिबंध को हटाने की अपील की।

प्रतिबंध हटने के बाद, कलाकारों ने 'तमाशा सुधार समिति' का गठन किया और तमाशा के मंचन के लिए कुछ नियम और कानून बनाए।

- **चूंकि यह कला मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा प्रस्तुत की जाती है, इसलिए सबसे पहला नियम यह बनाया गया कि मुख्य कलाकार या प्रस्तुतकर्ता प्रवेश द्वार के सामने बैठकर प्रचार नहीं करेंगे।**
- **गीतों की रचना तथा प्रस्तुतिकरण अश्लील भाषा वाले या दोहरे अर्थ वाले नहीं होने चाहिए।**
- **संवाद भी अश्लील भाषा वाले या दोहरे अर्थ वाले नहीं होने चाहिए।**
- **दर्शकों पर मुख्य प्रतिबंध यह लगाया गया कि वे प्रस्तुति के दौरान कलाकार को स्पर्श नहीं करेंगे।**
- **इन कलाकारों और उनकी प्रस्तुति का सम्मान सभी लोग करेंगे, जिसमें स्वयं कलाकार और दर्शक दोनों ही शामिल हैं।**
- **दर्शक महिला कलाकारों पर जबरदस्ती, ब्लैकमेल या उनका शोषण नहीं करेंगे।**

हालांकि, कला को सुरक्षित रखने के लिए नियम बनाए गए थे, लेकिन कलाकारों को प्रस्तुति देने में बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा क्योंकि दर्शक अश्लील भाषा के इस्तेमाल की मांग करते थे। 1953-55 के बीच, इस कला को लोक रंगमंच के तहत पहचान दिलाने के लिए संस्कृति मंत्रालय के पास भेजा गया था और इन व्याघ नाट्यों की परफॉर्मेंस स्क्रिप्ट और कंपोजिशन को जांच के लिए सेंसर बोर्ड के पास भेजा गया था। इसके बाद, इस कला के प्रस्तुतिकरण एवं प्रदर्शन में काफी बदलाव हुए हैं।

महाराष्ट्र में तमाशा लोकनाट्य सदियों से प्रसिद्ध है, इसलिये इस लोक नाट्य के मंचन के लिये सैकड़ों मंड़लियों अथवा फड़ का गठन भी हुआ, यहां हम कुछ महत्वपूर्ण मंड़लियों का उल्लेख करना प्रासंगिक मानते हैं। तमाशा

सम्राज्ञी स्वर्गीय विठ्ठाबाई नारायणगांवकर का नाम इस लोक कला के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में दर्ज है। उनके नाम से संचालित फड़ विठ्ठाबाई भाऊ मांग नारायणगांवकर लोकनाट्य तमाशा मंडल पारंपरिक ढोलकी फड़ कला के लिए आज भी प्रसिद्ध है। मंगला बनसोडे करवडीकर लोकनाट्य तमाशा मंडल वर्तमान में महाराष्ट्र का सबसे लोकप्रिय और बड़ा फड़ है। रघुवीर खेडकर सह कांताबाई सातारकर लोकनाट्य तमाशा मंडल, काळू-बाळू (कृष्णराव और बालाराम) लोकनाट्य तमाशा मंडल काळू और बाळू की जोड़ी महाराष्ट्र में अपने बेहतरीन कॉमिक टाइमिंग और श्वाग नाट्यश् (लोक नाटक) के लिए बेहद मशहूर रही है, भिका-भीमा सांगवीकर लोकनाट्य तमाशा मंडल, दत्ता महाडिक पुणेकर लोकनाट्य तमाशा मंडल आदि फड़ों ने अपने अनूठे अभिनय और बुलंद आवाज से तमाशा को एक नई ऊंचाई दी थी।

कुछ अन्य सक्रिय एवं लोकप्रिय तमाशा मंड़लियां आनंद लोकनाट्य तमाशा मंडल, पांडुरंग मुळे मांजरवाडीकर (आविष्कार मुळे) लोकनाट्य मंडल, मालती इनामदार लोकनाट्य तमाशा मंडल, हरिभाऊ बडे-नगरकर लोकनाट्य तमाशा मंडल, संभाजी राजे जाधव अंजली नाशिककर लोकनाट्य तमाशा मंडल, लेखणीसम्राट बाबुराव बोरगावकर सह शिवराम बोरगावकर लोकनाट्य तमाशा मंडल हैं जिनके बिना महाराष्ट्र के लोकनाट्य तमाशा का उल्लेख किया जाना संभव नहीं है।

फिल्मों में लोकनाट्य तमाशा का फिल्मांकन

20वीं और 21वीं सदी में मनोरंजन के क्षेत्र में फिल्मों का ही जोर रहा है। दर्शक परंपरागत लोक मनोरंजन के स्थान पर थियेटर की ओर भागते नजर आते हैं, इसके बावजूद इन लोक नाट्यों के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है। फिल्मों में भी लोक नाट्य तमाशा को भरपूर स्थान मिला है। कितनी ही फिल्में हैं जिनमें तमाशा, उसकी गतिविधियां, उन कलाकारों का जीवन वगैरह पूरी शिद्दत से दिखाया गया है। ऐसी ही एक फिल्म है वी शांताराम की 'पिंजरा', जिसमें डॉ. श्रीराम लागू और संध्या मुख्य भूमिका में थे। एक स्कूल मास्टर की एक तमाशा एक्ट्रेस के लिए आसक्ति और उससे उपजी विचित्र घटनाओं की श्रृंखला। अभिनय, संगीत और डायरेक्शन हर लिहाज से ये फिल्म एक मास्टरपीस है। इस फिल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला था। इसके अलावा 'सांगत्ये ऐका', 'केला इशारा जाता जाता', 'सवाल माझा ऐका' और हाल ही की हिट फिल्म 'नटरंग' जैसी फिल्में हैं, जो इस लोककला को बेहतर ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

महाराष्ट्र की 600 वर्ष से भी पुरानी गौरवशाली लोक कला 'तमाशा' आज अपने अस्तित्त्व के सबसे कठिन दौर से गुजर रही है। आधुनिकता, सरकारी नियमों और आर्थिक बदलावों के कारण इन तमाशा फड़ों (मंडलियों) और कलाकारों के सामने कई गंभीर चुनौतियां खड़ी हो गई हैं। तमाशा लोक नाट्यों के समक्ष मौजूद प्रमुख चुनौतियों में सबसे प्रमुख चुनौती है, मंडलियों के संचालन में भारी निवेश और कम मुनाफा। कॉरपोरेट जगत या बड़े ब्रांड्स लोक कलाओं को प्रायोजित करने में रुचि नहीं दिखाते हैं, जिससे ये मंडलियां पूरी तरह से ग्रामीण मेलों (जात्रों) की कम टिकट बिक्री पर निर्भर रहती हैं। दूसरी बड़ी चुनौती वर्तमान डिजिटल मनोरंजन की उपलब्धता। डिजिटल मनोरंजन ने

इंटरनेट के जरिये अपनी पहुंच ग्रामीण इलाकों में बना ली है। सबके हाथों में आज स्मार्टफोन हैं। जिसके माध्यम से ओटीटी, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्मस मनोरंजन की तमाम श्रेणियों को दर्शकों तक पहुंचा रहे हैं। यह डिजिटल मनोरंजन मुफ्त या बेहद सस्ते में उपलब्ध है। इसके कारण युवा पीढ़ी का लाइव लोक नाट्य देखने के प्रति आकर्षण बहुत कम हो गया है। दर्शक अब फिल्मों और फिल्मी गानों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जो कि तमाशा के लिये एक संकट के रूप में देखा जा रहा है। न्यायालयों द्वारा जारी आदेशों और सरकार द्वारा इनके परिपालन में जारी किये गये नियम भी तमाशा के लिये एक बड़ी चुनौती है। इस नियम के अनुसार रात 10 बजे के बाद लाउडस्पीकर बजाने पर पाबंदी है। तमाशा पारंपरिक रूप से रात 11 बजे शुरू होकर पूरी रात चलता था। समय की इस पाबंदी (2-3 घंटे में समेटने) के कारण तमाशा का मुख्य हिस्सा 'वग नाट्य', जो कि इस लोक नाट्य का मुख्य अंग है, का मंचन नहीं हो पाता है। इन चुनौतियों को देखते हुये इनके समाधान के लिये सरकारी स्तर पर प्रयास होने अत्यन्त आवश्यक है।

तमाशा लोकनाट्य मराठा संस्कृति की प्रमुख पहचानों में से एक है। बिन लावणी, बिन तमाशा के मराठी माणूस की सांस्कृतिक विरासत अधूरी है। समय के साथ बदलाव भी होता है और इस बदलाव के दौर में कई महत्वपूर्ण कलायें विस्मृत कर दी जाती हैं। बदलते दौर, तकनीकी विकास और आधुनिक जीवन शैली ने इस देश की कई पारंपरिक कलाओं को हमसे दूर कर दिया है। गुजरात की रोगन कला, राजस्थान की कावड कला, बुंदेलखंड की हरबोले कला, उत्तर भारत की सांझी कला, कर्नाटक की किन्नल कला ऐसी अनेक कलायें हैं, जिन्होंने या तो अपना अस्तित्व खो दिया है या फिर लुप्तप्राय हैं। इसीप्रकार यह भय लोकनाट्य तमाशा के लिये भी उत्पन्न हो गया है कि कहीं महाराष्ट्र की ये उत्कृष्ट लोक कला विलुप्त ही न हो जाए। इसलिये आवश्यक है कि महाराष्ट्र सरकार, वहां के संस्कृति प्रेमी तथा उद्योगपति इस कला को बचाने के लिये आगे आयें तथा तमाशा लोक नाट्य की जड़ों को महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में इतनी मजबूती के साथ स्थापित कर दें कि भविष्य में कभी इस कला को लुप्त होने की स्थिति में न पहुंच सके।

संपर्क : प्राध्यापक, इतिहास विभाग शा. कमलाराजा कन्या
स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 9301116371
ईमेल sswarnkar2@gmail.com

■■■

आलेख

"ओडिशा में कठपुतली कला : छाया और कहानियों की एक जीवन्त परंपरा "

पूजा गुप्ता

भगवान जगन्नाथ की भूमि ओडिशा, पारंपरिक भारतीय कलाओं के उद्गम स्थलों में से एक है और कठपुतली कला इसकी जीवंत सांस्कृतिक विरासत में एक विशेष स्थान रखती है। मनोरंजन के एकमात्र साधन से कहीं अधिक, ओडिशा में कठपुतली कला एक प्राचीन परंपरा है जो कहानी सुनाने, धार्मिक शिक्षा और सामाजिक टिप्पणी के माध्यम के रूप में कार्य करती है। यह हिंदू महाकाव्यों, स्थानीय लोक-कथाओं और नैतिक कथाओं के ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम रही हैं। यह राज्य कठपुतली कला के सभी चार प्रमुख रूपों "दस्ताना कठपुतली, छड़ कठपुतली, तार कठपुतली और छाया कठपुतली" की समृद्ध परंपरा के लिए भारत में अद्वितीय स्थान रखता है। इनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट शैली और इतिहास है।

(ऐतिहासिक परिदृश्य और विकास)

भारत में कठपुतली कला की उत्पत्ति नाट्य शास्त्र से जुड़ी है जो प्रदर्शन कलाओं का एक आधारभूत ग्रंथ है। ओडिशा की कठपुतली कला का विकास उसकी मंदिर परंपराओं, भक्ति साहित्य और लोक संगीत के साथ-साथ हुआ। भक्ति आंदोलन के दौरान जयदेव ओर पंचसखा जैसे कवियों ने दिव्य प्रेम और आध्यात्मिक उत्कंठा के विषयों को लोकप्रिय बनाया, जो स्वाभाविक रूप से कठपुतली रंगमंच में भी समाहित हो गए। लोक परंपराओं के साथ विकसित हुई इस कला के शो विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आयोजनों के अभिन्न अंग थे एवं आज भी हैं, जिन्हें अक्सर त्योहारों, ग्रामीण मेलों और अनुष्ठानों के दौरान प्रदर्शित किया जाता है। सदियों से ओडिशा के कठपुतली कलाकारों ने रामायण, महाभारत और पुराणों के साथ-साथ स्थानीय किंवदंतियों की कहानियों को भी अपने दर्शकों के लिए आकर्षक कथाएं रचने के लिए कुशलता से रूपांतरित किया है।

(ओडिशा में कठपुतली कला के प्रकार)

1. दस्ताना कठपुतली (कुंधेई-नाचा):- ओडिशा की दस्ताना कठपुतली परंपरा को कुंधेई-नाचा के नाम से भी जाना जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- "गुड़िया नृत्य।" यह कठपुतली कला का एक सरल और अंतरंग रूप है जिसमें केवल दो पात्र होते हैं "कृष्ण और राधा।" ये दस्ताना कठपुतलियाँ नाम के अनुरूप हाथ में पहनी जाती हैं और कठपुतलियों के संचालक की उंगलियाँ आकृति के सिर और भुजाओं को नियंत्रित करती हैं।

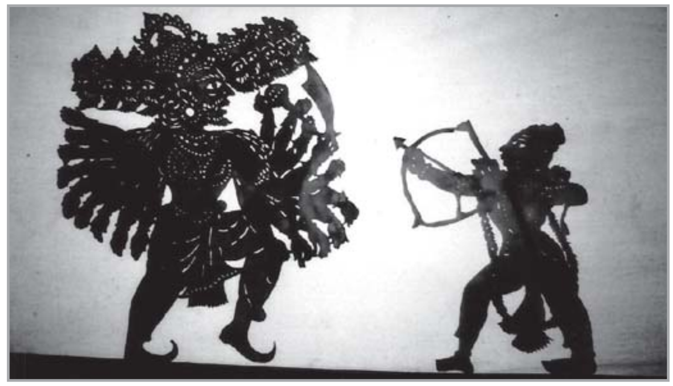

यह प्रदर्शन दर्शकों के सामने आमतौर पर बिना किसी ऊँचे मंच या पर्दे के ज़मीन पर हमेशा किया जाता है। एक विशिष्ट कुंधेई-नाचा मंडली में दो लोग होते हैं- मुख्य कठपुतली संचालक और एक ढोल वादक जो प्रदर्शन में भी मदद करता है। ढोल वादक ढोलक का उपयोग करता है परंतु चतुराई से किए गए संचालन में कठपुतली स्वयं ढोलक बजाती हुई प्रतीत होती है, जिससे एक आकर्षक दृश्य भ्रम पैदा होता है। कुंधेई-नाचा के विषय भक्तिपूर्ण होते हैं जो मुख्यतः राधा-कृष्ण की कथाओं से लिए गए हैं। हालांकि इन्हें हल्के-फुल्के और हास्यपूर्ण लहजे में प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रदर्शन जटिल कथा वाचन के बजाय गीत और कविता से अधिक प्रेरित हैं जो अक्सर ओडिया साहित्य और लोक संगीत से प्रेरित होता है। इसका आकर्षण नाटकीय तमाशे की जगह काव्यात्मक और संगीतमय अभिव्यक्तियों में निहित होता है।

2. छड़ी कठपुतली (काठी-कुंधेई-नाचा): ओडिशा में छड़ी कठपुतली को काठी-कुंधेई-नाचा के नाम से जाना जाता है, जिसमें "काठी" का अर्थ छड़ी या छड़ होता है। इस रूप में इस्तेमाल की जाने वाली कठपुतलियाँ अपेक्षाकृत छोटी होती है, जिनकी ऊँचाई लगभग 12 से 18 इंच होती है। कठपुतलियों के नियंत्रण के लिए उनके सिर छड़ों से जुड़े होते हैं जबकि हाथ डोरियों से बंधे होते हैं। कठपुतलियों को लकड़ी से सावधानी से तराशा जाता है, रंगा जाता है और उन्हें विशेष वेशभूषा पहनाई जाती है, जो जात्रा कलाकारों की वेशभूषा और श्रृंगार से मिलती जुलती होती हैं। छड़ी कठपुतली के कलाकार, दस्ताना कठपुतली के कलाकारों के विपरीत एक पर्दे के पीछे बैठकर नीचे से कठपुतलियों को नियंत्रित करते हैं। इसका प्रदर्शन ओपेरा जैसा होता है, जिसमें अधिकांश संवाद बोले जाने के बजाय पारंपरिक लोक धुनों और ओडिशी शास्त्रीय धुनों के मिश्रित संगीत में सुंदरता से गाए जाते हैं। काठी-कुंधेई-नाचा का संग्रह व्यापक है जिसमें रामायण, महाभारत और पुराणों की विविध कथाएं, साथ ही सामाजिक मुद्दों पर व्यंग्यात्मक नाटक शामिल होते हैं।

3. तार कठपुतली (सखी-कुंधेई): ओडिशा में तार कठपुतली को सखी कुंधेई कहा जाता है जहाँ "सखी" शब्द का अर्थ है मित्र या साथी। इसका इस्तेमाल संभवतः कृष्ण कथाओं में राधा की गोपियों या सखियों का संदर्भ देते हुए या कठपुतलियों के प्रति स्नेह के रूप में भी किया जाता है। ये कठपुतलियाँ दस्ताना या छड़ी वाली कठपुतलियों की तुलना में अधिक सुस्पष्ट होती है जिसमें कई जोड़े होते हैं, जो उन्हें बहुमुखी और विविध प्रकार के भावपूर्ण हाव-भाव करने में सक्षम बनाता है। अन्य परंपराओं के विपरित इनका छड़ गोल होता है और पैर नहीं होते हैं और ये एक त्रिकोणीय लकड़ी के सहारे से बंधी डोरियों द्वारा लटकी होती है। वेशभूषा में लंबी लटकती हुई स्कर्ट चलने या नाचने का आभास देती हैं। कठपुतलियों के डिजाइन मंदिर कला और ओडिशा के लोक नाट्य कलाकारों की वेशभूषा से प्रेरित होते हैं। प्रदर्शन गीतात्मक और संगीतमय होते हैं जिनमें गीतों का बोलवाला होता है और संवाद कम होते हैं। विषयगत रूप से ये कृष्ण कथाओं पर केंद्रित होते हैं, जिनमें कभी-कभी रामायण की झलक पाई जाती है। संगीत, शैलीगत गति और दृश्य डिजाइन का संयोजन इसके प्रदर्शन को आकर्षण प्रदान करता है।

4. छाया कठपुतली (रावण छाया): भगवानदास ओडिशा की सभी कठपुतली कला रूपों में "रावण छाया" दार्शनिक और कलात्मक रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसका नाम "रावण की छाया" है जो अपने आप में विचित्र है क्योंकि कथा रामायण पर केंद्रित है और नायक भगवान "राम" हैं। हालांकि इस नाम के पीछे आध्यात्मिक तर्क है। संस्कृत और ओडिया में देवता को प्रकाशमान माना गया है, जो छाया नहीं डाल सकता है। इसलिए इस प्रदर्शन का नाम/शीर्षक उस एकमात्र पात्र के नाम पर रखा गया है जिसकी छाया शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में दिखाई देती है।

भारत में अन्य छाया कठपुतली परंपराओं जिनमें रंगीन जोड़वाली कठपुतलियों का उपयोग किया जाता है, के विपरीत रावण छाया कठपुतलियां रंगहीन, जोड़रहित ओर मृगचर्म से बनी होती है। इन कठपुतलियों में जटिल नक्काशी की जाती है और इनमें छिद्र होते हैं जिनसे प्रकाश आर-पार जा सकता है, जिससे पर्दे पर आकर्षक, एकवर्णी आकृतियाँ बनती हैं। कठपुतलियों को एक ही छड़ से चलाया जाता है जिसके लिए संचालक को अधिक कौशलयुक्त और निपुण होना आवश्यक है। इस परंपरा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें रावण की कठपुतली, भगवान राम की कठपुतली से बड़ी बनाई जाती है जो प्रतीकात्मक रूप से प्रतिपक्षी के रूप में नाटकीय उपस्थिति पर जोर देता है।

पारंपरिक रावण छाया का प्रदर्शन एक सफेद पर्दे के पीछे होता है, जहाँ कठपुतली कलाकारों के पीछे एक प्रकाश स्रोत (ऐतिहासिक रूप से एक तेल का दीपक) रखा होता है। संचालक, जो दर्शकों से छिपे रहते हैं, प्रकाश स्रोत और पर्दे के बीच कठपुतलियों को नियंत्रित करते हैं। मंडली का नेता, जो दर्शकों को दिखाई देता है, खंजनी (एक प्रकार का वाद्ययंत्र) बजाते हुए गाता और कहानी सुनाता है। यह कथा लगभग पूरी तरह से विश्वनाथ खुंटिया द्वारा रचित मध्यकालीन ओडिया महाकाव्य "विचित्र रामायण" से ली गई है। रावण छाया नाम इस मान्यता से उत्पन्न हुआ है कि भगवान राम एक दिव्य व्यक्तित्व होने के कारण, छाया नहीं डालते। रावण छाया की विशेषता इसकी अमूर्तता और विचारोत्तेजकता है। इसमें दृश्य यथार्थवाद बहुत कम है, जबकि यह भावनात्मक और दार्शनिक प्रतिक्रियाओं को जगाने के लिए प्रतीकों, छायाओं और संगीत पर निर्भर करता है। छायाएं न केवल दृश्य निरुपण के रूप में बल्कि रामायण में चित्रित आध्यात्मिक यात्रा, आंतरिक संघर्ष और नैतिक दुविधाओं के रूपकों के रूप में काम करती हैं।

समकालीन चुनौतियाँ:

मोबाइल, टेलीविजन और सिनेमा जैसे आधुनिक मनोरंजन माध्यमों के उदय ने इन पारंपरिक कला रूपों के अस्तित्व के लिए एक बड़ी चुनौती पेश की है। पुनरुद्धार के प्रयासों के बावजूद यह कला गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है। अधिकांश कठपुतली कलाकार गरीबी में जीवन यापन करते हैं और उनके पास नियमित दर्शकों, औपचारिक शिक्षा प्रणालियों या स्थायी मंचों तक पहुँच नहीं है। डिजीटल मीडिया के उदय ने इन विधाओं को और भी हाशिए पर धकेल दिया है। सरकारी और संस्थागत समर्थन सीमित और दीर्घकालिक अस्तित्व के लिए अपर्याप्त है। कठपुतली कलाकारों और सांस्कृतिक संस्थाओं की नई पीढ़ी इन्हें संरक्षित और पुनर्जीवित करने के लिए काम कर रही है। वे कला के मूल सार के प्रति सच्चे रहते हुए समकालीन दर्शकों को आकर्षित करने के लिए विषयों, तकनीकों और प्रस्तुति को आधुनिक बना रहे हैं। साथ ही, इस सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए कठपुतली कला को विद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल करने, सांस्कृतिक पर्यटन के माध्यम से इसे बढ़ावा देने और विभिन्न सहयोग के अवसर पैदा करने की तत्काल आवश्यकता है। ऐसे कदम कठपुतली कला को उसके मूल मूल्यों से समझौता किए बिना अनुकूलित करने में मदद कर सकते हैं।

ओडिशा की कठपुतली कला, कुंधेई-नाचा की काव्यात्मक सरलता से लेकर रावण छाया की दार्शनिक गहराई तक सौंदर्य, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। ये विधाएं न केवल अतीत के अवशेष हैं बल्कि जीवंत परंपराएं हैं, जो मिथक, संगीत और आंदोलन के माध्यम से सार्वभौमिक मानवीय अनुभवों को व्यक्त करती हैं। इसका संरक्षण और संवर्धन न केवल अतीत के प्रति आदरांजलि है बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान को भविष्य में निवेश भी है।

सम्पर्क: भगवानदास की गली, आदर्श स्कूल के सामने, गणेश गंज
मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) पिन कोड - 231001 फोन नंबर - 7007224126
ईमेल - guptaabhinandan57@gmail.com

■■■

आलेख

लोक नृत्य, लोकगीत और अभिनय की त्रिवेणी: गम्मत

जयश्री उपाध्याय

निमाड़ क्षेत्र के लोकनाट्यों में सबसे पुरातन प्रमुख नाट्य "गम्मत" है, जो निमाड़ में प्राचीन काल से मनोरंजन का साधन रहा है। मानव जीवन में मनोरंजन का विशेष स्थान आदिकाल से रहा है, जब मानव जंगल में गुफाओं रहता था तब उसने अपने आसपास के परिवेश में शनै: शनैः परिवर्तन किया, उसने पशुओं के शिकार के साथ-साथ धीरे-धीरे खाली भूमि पर बीज बोना, अनाज बीज पहचाना प्रारंभ किया, और अन्न उगाने लगा । अपने खाली समय में वह गुफाओं कंधराओं में चित्र बनाकर अपना मन बहलाकर कलाओं को पहचान देने लगा । वह प्रसन्न होने पर नृत्य करने लगा। उसने बंदर भालू को नाचने का प्रयोग कर मनोरंजन का साधन जुटाया । शिकार करने के कारण उसके पास जानवरों का चमड़ा रहता था, उसने उससे डफ का आविष्कार किया जो कालांतर में ढोलक और तबले में परिवर्तित हुआ है। जानवर नचाने वाले नट कहलाने लगे। नट (नाचना या अभिनय करना) धातु से ही नाट्य-नाटक शब्द बना है। धीरे-धीरे वह अपनी टोलियों में गाँव बसा कर समूह में रहने लगा। उसने गाँव के मध्य में खम्भ गाडकर मशाल जला कर देर रात तक उसके चारों तरफ नाच गाकर अभिनय करने लगा। सभ्यता विकास के साथ-साथ गांवों में लोक रंग मंचों का निर्माण होने लगा। जिसमें सीमित साधनों के द्वारा हास्य-व्यंग्य के माध्यम से मनोरंजन किया जाने लगा। आज के जनमंचों और लोकरंग मंचों में पर्याप्त अंतर है लोक-रंगमंच कम शब्दों में लोक भाषा, लोकगीतों लोक वाद्यों के माध्यम से मनोरंजन करते हैं। जो पारंपरिक कला को प्रदर्शित करने के सशक्त माध्यम रहे हैं। मनोरंजन हेतु लगभग सभी प्रदेशों में क्षेत्रीयता के आधार पर विभिन्न लोक- रंगमंचों के माध्यम से लोकनाट्य का प्रादुर्भाव हुआ है। लोक धर्मी साहित्यकारश्री जगदीशचंद्र माथुर के शब्दों में कहें तो "लोक-रंगमंच जनसाधारण विशेषतः देहाती (ग्रामीण) जनता के दैनिक जीवन का एक अंग रहा है और सामाजिक उद्देश्यों का एक माध्यम। नागरिक रंगमंच वर्ग विशेष के मनोरंजन का साधन है, इनको फुर्सत के क्षणों का मन बहलाव, लोक रंगमंच जीवन की उमंग की स्वाभाविक और अनायास अभिव्यक्ति है और नागरिक रंगमंच कलात्मक और चेष्टायुक्त अभिव्यक्ति। इसलिए लोक रंगमंच सदा रहा है और रहेगा भी।

निमाड़ में आजादी से पूर्व मध्य भारत का एक भाग जो बड़वानी खरगोन खंडवा से लेकर बुरहानपुर तक का क्षेत्र "अनूप" जनपद के नाम से जाना जाता था जो कालांतर में 'निमाड़" कहलाया और यहां की लोकभाषा "निमाड़ी" है। निमाड़ क्षेत्र की अपनी विशिष्ट पहचान है, यहाँ लोक-कलाओं का समृद्ध भंडार है। निमाड़ क्षेत्र के लोक-रंगमंचों पर होने वाले लोकनाट्य में रासलीला, गम्मत, स्वांग, खयाल और तमाशा प्रमुख है जिनमें जनमानस में सबसे अधिक लोकप्रियता "गम्मत लोकनाट्य" की है, जो नवरात्रि, होली और गणगौर लोक पर्वों पर विशेष रूप से गांव के चौपाल पर नुक्कड़ नाटक की तरह बिना किसी तामझाम मंच सज्जा और वेशभूषा के प्रदर्शित किए जाते रहे हैं। गम्मतें पौराणिक कथाओं कहानियों के साथ साथ समाज में व्याप्त कुरीतियों, समाज के चेहरे पर पड़े झूठ, नकली दिखावे, दंभ और गलत धारणाओं के नकाब उतार कर फेंक देती हैं। इनमें शोषणकारी समाज व्यवस्था और भ्रष्ट तंत्र पर खुलकर प्रहार होता है। इन लोकनाट्यों में 5/6 ग्रामीण पुरुष एक टोली समूह बनाकर अपनी भावभंगिमाओं मौलिक सूझबूझ और विलक्षण बुद्धि के माध्यम से जनमानस का मनोरंजन करते हैं। पुरुष ही महिला पात्र का अभिनय चुनरी ओढ़ कर या साधारण साड़ी पहनकर करते हैं। गम्मत में सीमित लोक वाद्य यंत्रों, डफ, मंजीरा ढोलक (मृदंग) और पेटी (हारमोनियम) का प्रयोग करते हैं। लोकगीतों के माध्यम से सूक्तियां, कविताएं पंक्तियां और अब शेरो शायरी फिल्मी गीतों आदि द्वारा जवाब सवाल किए जाते हैं, बीच-बीच में निमाड़ी भाषा में बातचीत भी होती है, उस समय संगीत का उपयोग नहीं होता, कोई साज नहीं बजता, लेकिन कोई विशेष बात होने पर मृदंग / ढोलक पर जोर की थाप लगाई जाती है। बिना बोले मुख मुद्राओं और हाव-भाव के माध्यम से आम जनता में हास्य का भाव जागृत हो जाता है। लोक संस्कृति पुरुष पद्मश्री पंडित रामनारायण उपाध्याय कहते हैं कि गम्मत में पाँव के ठुमके के साथ चलने वाले गीतात्मक कथानक के साथ-साथ समाज शिक्षा का मौलिक भावप्रवण मनोमुग्धकारी संदेश संजोया रहता है। गम्मत खुली धरती के मंच पर जिसका प्रारंभ सरस्वती वंदना और गणेश वंदना से किया जाता रहा है रात-रात भर चलते रहने वाले नाटक हैं, जिनमें नायक नायिका कथानक का ताना बाना परिस्थितियों के अनुकूल तुरंत बुनते हैं। विशेष वेशभूषा ना होने पर रोज पहनने वाले कपड़ों पर लंबा सा पुराना कोट पहनकर कोई राजा बन

जाता है, तो कोई चुनरी ओढ़ कर रानी बनता है। इनमें एक पात्र जो की "कुटगुरिया "विदुषक या मसखरा होता है, जो बीच-बीच में अपने हाव-भाव और संवादों के माध्यम से सभी को हँसाता है।

लोग प्रस्तुतीकरण की नवीनता में मजा लेते है। निमाड़ी बोली के माध्यम से संवादी का आनंद ग्रामीण मन वाला ही ले सकता है। लोकगीत लोक-नृत्य की प्रधानता होती है बिना नृत्य गीत के आनंद नहीं आता। पिछले कई वर्षो से निमाड़ ग्रामीण क्षेत्रों में गम्मत की बहुत सी टोलियाँ सक्रिय रही है जिन में प्रमुख रूप से बड़वाह के श्री प्रभाकर जी दुबे एवं उनकी मंडली, जावर पार्टी मूंदी, भूलगांव छैगाँव माखन खंडवा के आसपास के क्षेत्र में कतारखेड़ी, मातपुर तंबोलिया, पिपलिया पार्टी, देशगांव की पार्टी, सकतापुर की पार्टी, सनावद के आसपास बड़ूद, बेड़ियाँ, महेश्वर में चंद्रकांत सेन, कृष्णलाल विश्वकर्मा, प्रवीण चौबे आदि हैं जो पूरे मध्य प्रदेश में प्रदर्शन करते रहे हैं। अब तो शासकीय लोक-कला और सांस्कृतिक संस्थाओं के माध्यम से प्रस्तुति देती है। बहुत सी टोलियाँ अनेक उत्सव-महोत्सवों में अपना प्रदर्शन करती हैं। गम्मतों के बारे में लोक कर्मी श्री प्रभाकर जी दुबे ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ठुमका में कहते हैं की "निमाडी लोक नाट्य मंच समय की मांग अनुरूप परिवर्तित हो रहे हैं, नए प्रयोग हो रहे हैं, वह जड़ नहीं बन जाए वह कुंठित ना रहे, निमाडी लोकनाट्य लोगों के साथ सदा रहेगा वह जनमानस से दूर कभी नहीं रहा क्योंकि उसमें समाज का बोलता चालता चित्र रहता है। निमाड़ी गम्मत की अनूठी लोकप्रिय मनोरंजक शैली जो जनमानस की मनोभावनाओं को उद्वेलित प्रेरित करती रहती हैऔर करती रहेगी।

सपर्क : 21A सूजन, शर्मा कॉलोनी, बड़वाह 451115
जिला खरगोन (मप्र) मोबा. 9826656989

‘कला समय’ पत्रिका की सदस्यता

प्रिय पाठकों,

द्वैमासिक ‘कला समय’ एक अव्यावसायिक कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक सांस्कृतिक पत्रिका है, जो विगत 30 वर्षों से अविरल रूप से कला/साहित्य जगत की सेवा कर रही है। आप इस तथ्य से परिचित हैं कि एक अव्यावसायिक कला-सांस्कृतिक पत्रिका निकालना बड़ा ही दुष्कर और श्रमसाध्य कार्य है। विगत कुछ वर्षों में मुद्रण, टंकण, कागज आदि की लागत में असामान्य बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में पत्रिका के नियमित प्रकाशन को आप तक पहुँचाने के लिए ग्राहक सदस्यता शुल्क में (फरवरी-मार्च 2025) अंक से वृद्धि करना अपरिहार्य हो गया है। सदस्यों से अनुरोध है कि अब वे अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन सदस्यों की सदस्यता अवधि के 10 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुनः अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु ‘कला समय’ के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

फरवरी-मार्च 2025 से कला समय पत्रिका की बढ़ी हुई दरें हमने पूर्व में प्रकाशित की है। पुनः अनुरोध है कि माननीय सदस्यगण इन बढ़ी हुई दरों के अनुसार शेष सदस्यता अंतर राशि का भुगतान कर रजिस्टर डाक सहित पत्रिका प्राप्ति सुनिश्चत करें।

संशोधित सदस्यता शुल्क

प्रति अंक	–	100/-	(साधारण डाक)
वार्षिक	–	600 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	–	700 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
द्वैवार्षिक	–	1200 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	–	1400 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
चार वर्ष	–	2300 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	–	2700 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
आजीवन	–	10,000 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
(10 वर्ष के लिए)	–	12,000 (संस्थागत)	(साधारण डाक)

(कृपया सदस्यता शुल्क-ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा ‘कला समय’ के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : ‘कला समय’ की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

(नमूना प्रति ₹100/-, एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/-) - संपादक

प्रकृति में पेड़-पौधे तो सभी देखते है, कला के अर्थों में चित्रकार ही देखता है... मीनाक्षी !!!

संदीप सुमहेन्द्र

प्रख्यात महिला चित्रकार मीनाक्षी कासलीवाल भारती जी का जन्म 28 अगस्त, 1954 में जयपुर के प्रसिद्ध कासलीवाल जैन परिवार में हुआ। इनके दादाजी मुंशी प्यारेलाल जी, जो जयपुर राज परिवार में महाराजा सवाई माधोसिंह जी के दरबार में रेवेन्यू मिनिस्टर के पद पर कार्यरत थे। पिताजी ओमप्रकाश कासलीवाल एवं श्रीमती कांति देवी कासलीवाल की पुत्री मीनाक्षी ने कला जगत में ऐसे स्तर पर अपने आप को स्थापित किया है, जहां तक कम ही लोग पहुंच पाते हैं। इनकी माताश्री कांति देवी जी स्वयं जैन धर्म की अनुरागी और स्वाध्याय करने वाली महिला थी। इसीलिए मीनाक्षी जी में भी उनके संस्कारों के साथ जैन धर्म की शिक्षा की पूर्ण झलक प्रतिबिंबित होती है। और यही झलक इनकी वर्तमान चित्र सीरीज "फाइव एलिमेंट्स ऑफ द यूनिवर्स" में देखने को मिलती है। इनकी कला एवं साधना को जानने के उपरांत मेरी इच्छा हुई कि मुझे मीनाक्षी जी का इंटरव्यू जरूर करना चाहिए।

तो आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है मीनाक्षी जी की कला यात्रा के बारे में हुई मेरी बातचीत....!!!!

● आपमें कला के प्रति अनुराग किस आयु में जगा? तथा स्वयं को एक चित्रकार बनाने का मन कैसे बनाया? अथवा चित्रकार बनने में आपके परिवार की क्या भूमिका रही ?

● बचपन से ही मैं जब बहुत छोटी थी तभी से मुझे चित्र बनाने का शौक रहा। किसी पत्र-पत्रिकाओं में जो चित्र प्रकाशित होते थे, उनको अपनी ड्राइंग बुक में कॉपी किया करती थी। मैं अपने पिताजी के साथ घूमने जाया करती थी। तब इतनी छोटी थी कि मुझे पिताजी अपने कन्धे पर बिठा लेते थे। उस समय उन्होंने पहला साक्षात्कार मेरा प्रकृति से करवाया और यहीं से मेरा प्रकृति से अनुराग आरम्भ हुआ। प्रकृति में पेड़-पौधे तो सभी देखते हैं परन्तु उनको कला के अर्थों में देखना शायद मेरा सफर यहीं से आरम्भ हुआ।

पेड़ों के पत्तों के बीच छिपी आकृतियाँ, आकाश में बादलों के बीच बनती बिगड़ती हुई आकृतियाँ, आकाश के अनेक रंग, पक्षियों की आवाजें, चिड़ियों का चहकना आदि मुझे रोमांचित करने लगा। दीवारों और फर्शों में, आज भी मैं इनमें आकृतियाँ ढूंढती रहती हूँ। स्कूल-कॉलेज के हर ड्राइंग कॉम्पिटीशन में प्रथम पुरस्कार मुझे ही मिलता था। शायद चित्रकारी करने की इसी ललक ने आगे चलकर चित्रकार बनने की इच्छा को मेरे मन में जगाया। चित्रकार बनने की इस इच्छा का मेरे माता-पिता, भाई-बहनों ने पूरा सम्मान किया और अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

● कला की विधिवत शिक्षा कहां से ली आपने ?

● तब नौवीं कक्षा में "फाइन आर्ट्स" विषय में मेरा एडमिशन महाराजा स्कूल में कराया गया और यहीं से चित्रकला की विधिवत शिक्षा

चित्रकार मीनाक्षी भारती कासलीवाल अपनी पेंटिंग सीरीज "डेजर्ट सीरीज" के साथ

आरम्भ हुई जो 1971 में प्रथम स्थान प्राप्त कर पूर्ण हुई। इसके बाद जयपुर के महारानी कॉलेज में चित्रकला विषय के साथ एडमिशन लिया और 1974 में प्रथम श्रेणी से बी.ए. उत्तीर्ण किया। उस समय जयपुर में चित्रकला विषय में एम.ए. नहीं हुआ करता था।

मेरी कला प्रतिभा को देखते हुए मुझे इस समय से नेशनल स्कॉलरशिप मिलनी प्रारम्भ हो गई थी जो मुझे चित्रकला विषय में एम.ए. करते हुए भी मिलती रही। मैं तो अपनी रुचि को देखते हुए उस समय शान्ति निकेतन के कला महाविद्यालय में जाना चाहती थी परन्तु इतनी दूर पढ़ने के लिए भेजना शायद उचित नहीं लगा और उस समय अलीगढ़ में हमारे एक रिश्तेदार रहते थे उनके पास रहकर आगे की पढ़ाई की। वहाँ पर बहुत पुराना

डिपार्टमेंट था जिसमें पढ़ाने वाले भी अच्छे गुरु हुआ करते थे। 1976 में धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ से मैंने अपनी एम.ए. की पढ़ाई प्रथम स्थान से पूर्ण की। एम.ए. करते हुए ही मैंने लैंडस्केप, वॉश, टैम्परा तथा ऑयल आदि पेन्टिंग एवं इनकी तकनीक सीखी। स्केचिंग तो मैं बचपन से ही किया करती थी अतः जहाँ भी जाती थी, आस-पास के माहौल की स्केचिंग करती रहती थी।

● अपने आरंभिक दौर की कला के बारे में बताए, उस समय आप किस तरह का चित्रण करती थी।

● 1976 में एम.ए. करने के बाद जब मैं वापिस जयपुर आई तब रवीन्द्र मंच की आर्ट गैलरी में एक चित्र-प्रदर्शनी लगाने की सोची। उस समय उसकी तैयारी के लिए जयपुर की आस-पास की लोकेशन्स पर जाकर लैण्ड-स्केप बनाये। जो आमेर के महलों, पुराने टूटे-फूटे खण्डहरों, पुरानी हवेलियों और प्राकृतिक वातावरण से प्रेरित थे और उनको जल-रंग (वाटर कलर) तकनीक से बनाया था। इसी के साथ मैंने इस समय हार्ड बोर्ड पर कोलाज तकनीक से कई चित्र बनाये, जो ब्लैक एंड व्हाइट थे, जिनको मैं सब्जेक्टिव कोलाज कह सकती हूँ, इस प्रदर्शनी का मुख्य आकर्षण बन गये थे। इसी प्रदर्शनी में से मेरा एक कोलाज चित्र मॉडर्न आर्ट गैलरी, जयपुर के लिए खरीदा गया जो मेरी चित्रकला की यात्रा का टर्निंग पॉइंट साबित हुआ। जिसने मुझे इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। मैंने कोलाज तकनीक में ही काम करने का मन बना लिया था। शुरुआती कुछ वर्षो तक में अमूर्त ब्लैक एंड व्हाइट कोलाज ही बनाती रही जिसमें मुझे अनेक बार राजस्थान ललित कला अकादमी और अन्य संस्थानों तथा नेशनल एग्जिबिशन में पुरस्कार प्राप्त हुए। इसी बीच 1977 में अजमेर के सावित्री कन्या महाविद्यालय में लेक्चरर के रूप में मेरा अपॉइंटमेंट हो गया था। कला शिक्षण के साथ-साथ मेरा कला प्रदर्शनियों में भाग लेना यथावत जारी रहा। 1980 में मेरा जयपुर के ही कानोड़िया महिला महाविद्यालय में लेक्चरर के रूप में अपॉइंटमेंट हो गया। लेकिन कला यात्रा में कोलाज सीरीज जारी रही जो लगभग 1985 तक इसी प्रकार चलती रही। 1982 में मेरा शो जहाँगीर आर्ट गैलरी में हुआ जो कि एक बहुत ही सफल शो रहा। 1983 में दिल्ली की प्रसिद्ध आर्ट गैलरी "आर्ट हेरिटेज" में दस महिला कलाकारों की प्रदर्शनी में मुझे भी शामिल किया, यह मेरे लिए बहुत ही गर्व का अनुभव था जब देश की नामचीन कलाकारों में मुझे शामिल किया गया था।

1985 में मुझे नैरोबी जाने का अवसर मिला। वहाँ के प्राकृतिक वातावरण एवं वाइल्ड लाइफ के साथ वहाँ के लोगों को देखकर मेरे चित्रों में परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ और यहाँ से नई सीरीज की शुरुआत हुई जिसको मैंने "इंप्रेशन" नाम दिया। मेरे मन पर अपने आस-पास के वातावरण का जो भी प्रभाव पड़ रहा था वही मेरी पेंटिंग्स में भी रिफ्लेक्ट हो रहा था। इस समय मेरे मन में बचपन से बसे हुए पीपल के पेड़ के साथ नैरोबी के जिराफ ने चित्रों में आकार लेना प्रारम्भ कर दिया। ये दोनों मोटिफ आपस में इतना घुल-मिल गये कि लगता था पेड़ चल रहा है और जिराफ खड़ा है परन्तु चित्र का मूड और माहौल अमूर्त ही रहा और चित्र ब्लैक एवं व्हाइट में ही बनते रहे। कभी-कभी किसी चित्र में ब्लैक के साथ अन्य कलर का भी अब आ जाता था।

लगभग वर्ष 1990 तक इसी प्रकार का चित्रण होता रहा और अनेक प्रदर्शनियों में भागीदारी, एकल व सामूहिक प्रदर्शनियों में भागीदारी चलती रही। 1990 में इसी सीरीज में दिल्ली की वढेरा आर्ट गैलरी ने मेरी एकल प्रदर्शनी लगाई जिसमें चित्रों के साथ-साथ अपनी रंगीन कलर ड्राइंग्स का भी प्रदर्शन किया जो कि एक सफल शो साबित हुआ। 1991 में मैंने अपनी नई सीरीज "एक्प्रेशन" की शुरुआत की। मैं हमेशा से प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करती रही और प्रकृति के अन्तर्गत मनुष्य, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आदि सभी को उसी का अंग मानती रही हूँ। अपनी नई "एक्सप्रेशन सीरीज में मैंने मानव आकृति को अपने वृक्षों के समूह के बीच इस प्रकार से स्थापित किया कि वे प्रकृति का ही एक अंग बनकर उसी में रच-बस गये। जहाँ वे प्रकृति के बीच नाचते, गाते, बातें करते, पेड़ों के नीचे आराम करते हुए चित्रित किए गये। वे अपनी उदासी और एकाकीपन को प्रकृति के साथ बाँट रहे थे। मैं स्वयं अपनी ही भावनाएँ इस समय अपने चित्रों में आरोपित करती जा रही थी। स्वयं अपने को चित्रों के माध्यम मे एक्सप्रेस कर रही थी।

इस सीरीज़ के कई सफल शो जयपुर, मुंबई आदि स्थानों में लगातार किये। ये दौर मेरे जीवन के उतार-चढ़ाव का दौर रहा लेकिन मैंने चित्रण करना नहीं छोड़ा। इस दौर में मैंने कई स्थानों की यात्राएँ कीं और अनेकों आर्टिस्ट कैंप जो हिमाचल प्रदेश, जम्मू, नग्गर, शिमला, कुल्लू आदि स्थानों में आयोजित हुए उनमें मुझे आमन्त्रित किया गया।

इस दौरान मैंने लगभग 2-3 वर्षो तक अपने को कला जगत से दूर कर लिया था। इसी समय मैंने जैसलमेर की यात्रा की। ये यात्रा मेरे जीवन का और मेरी कला-यात्रा का टर्निंग पॉइंट साबित हुई। मैं जैसलमेर के स्थापत्य, वहाँ की पीली रेत, पीले पत्थरों, वहाँ के रेत के टीलों, किले में रहने वाले लोगों के रहन-सहन और सबसे बढ़कर वहाँ के शांत जीवन से बहुत अधिक प्रभावित हुई। सुबह-सुबह किले पर पड़ती हुई सूर्य की किरणों ने तो जैसे मेरे जीवन में भी रंगों का उजाला भर दिया था। और तब शुरू हुई मेरी नई सीरीज "ए होमेज टू जैसलमेर" जिसमें मैंने इस शहर की अपनी यात्रा की सारी यादें भर दीं। रंगों का जैसे विस्फोट हो गया था मेरी इस नई सीरीज में। शुरू के चित्रों में एक ट्रांजीशन का दौर रहा जहाँ पर ब्लैक के साथ अन्य कलर का भी समावेश होने लगा था। इस सीरीज के लगभग 10-12 शो किये जिसमें हर बार जैसलमेर से नया थीम लिया गया। किसी में वहाँ की हवेलियों का चित्रण था, किसी में वहाँ के किले के भीतर की लाइफ पर ही फोकस किया गया था, किसी में वहाँ की गलियों का चित्रण था, तो किसी में वहाँ की महिलाओं के जीवन को आधार बनाया गया था, किसी में वहाँ गाँवों के मिट्टी के मकानों और उन पर की गई चित्रकारी का फोकस किया गया था, किसी में वहाँ के रेत के धोरों और सांझ के डूबते हुए सूरज को आधार बनाया गया था। इस सीरीज ने मुझे कला की

ऊंचाइयों तक पहुँचा दिया था। मुंबई में मेरे चित्रों का ऑक्शन भी हुआ जिसे 'क्रिस्टी' ने आयोजित किया था। वर्ष 1998 में जहाँगीर आर्ट गैलरी में मेरे चित्रों की प्रदर्शनी को देखकर ऑस्ट्रिया में आयोजित होने वाली एक प्रदर्शनी के लिए मुझे चुना गया जिसमें पूरे भारत से मात्र दस कलाकार चुने गये थे उनमें से मैं भी एक थी। इस प्रदर्शनी के कई शो ऑस्ट्रिया में होने के बाद दिल्ली-मुंबई की मॉडर्न आर्ट गैलरी में भी इसके शो आयोजित किये गये। ये समय मेरे कला-जीवन का एक बहुत सुनहरा समय था। और मैंने अपने इस समय का भरपूर उपयोग अपनी प्रदर्शनियों में किया। जयपुर के राजपूताना शेरेटन जैसे पांच सितारा होटल की गैलरी में मैंने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया जहाँ पर जैसलमेर से लाई गई पीली रेत और पीले पत्थरों से मैंने कई इंस्टॉलेशन बनाये। नये ढंग से चित्रों का प्रदर्शन किया। जैसलमेर की रोजमर्रा की जीवन यापन की शैली के अनेक फोटो खींचे जिनको मैंने इस प्रदर्शनी में नये ढंग से डिस्प्ले किया। इस प्रदर्शनी ने कई नये आयाम स्थापित किये। मुझे ज्ञात है कि जयपुर ही नहीं इस समय दिल्ली, मुंबई और चंडीगढ़ आदि प्रदेशों के कलाकारों में लगभग तहलका मच गया था। इन प्रदर्शनियों की सफलताओं ने मुझे बहुत आर्थिक मजबूती भी दी थी। इसी सीरीज का शो चण्डीगढ़ में 'ऑलियान्स फ्रैंकेज' गैलरी ने भी आयोजित किया जो एक सफलतम शो साबित हुआ। इस सीरीज के साथ ही शुरू हुई एक अन्य सीरीज 'डेजर्ट सीरीज' इसमें जैसलमेर के रेतीले धोरों का चित्रण किया गया। अलग-अलग समय जैसे सुबह, दोपहर, शाम और रात में ये रेतीले टीले कैसे नज़र आयेंगे, अथवा ऊँटों का काफिला जाता हुआ इत्यादि।

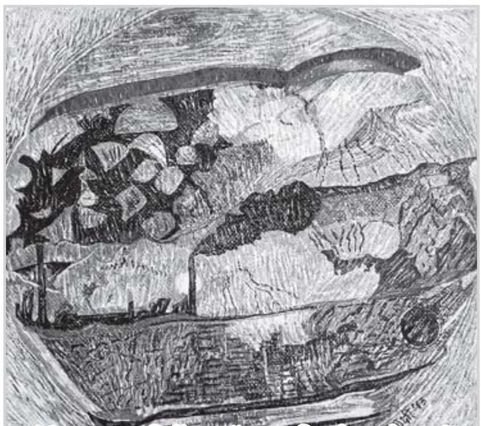

सीरीज फाइव एलिमेंट्स ऑफ़ द यूनिवर्स - अर्थ (पृथ्वी)

इस समय मेरे मन मस्तिष्क में एक नये विषय और नई सीरीज जन्म ले रही थी और उसी पर निरन्तर सोच-विचार चल रहा था। क्योंकि जब तक वो विषय सम्पूर्ण आकार ग्रहण नहीं कर लेता तब तक मैं अपना 'थिंकिंग प्रोसेस' चालू रखती हूँ उसके बाद ही कोई नई सीरीज शुरू हो सकती है। इस नई सीरीज का नाम है "बियोंड द लिमिट्स" जिसे मैंने "फाइव एलिमेंट्स ऑफ द यूनिवर्स" पर आधारित करके बनाना शुरू किया। ये पाँच तत्व हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। वर्तमान में मैं इसी सीरीज पर काम कर रही हूँ। और इन पाँचों तत्वों को अलग-अलग भी बनाया है और एक साथ एक ही चित्र में भी बनाया है। इसको बनाते समय हम प्रत्येक तत्व को अच्छी प्रकार से बना सकते हैं परन्तु 'वायु' को बनाने से पहले मुझे बहुत विचार करना पड़ा क्योंकि "विजुअली" वायु को हम कैसे प्रस्तुत करें ? यह चुनौती मेरे सामने आई। तब मैंने वायु का चित्रण करने के लिए "तितली/बटरफ्लाई" और 'पतंगों को माध्यम बनाया।

● आरंभिक दौर में आप किन वरिष्ठ कलाकारों की कला से प्रभावित रही ? उनके चित्रण और व्यक्तित्व के बारे में बताएं?

● अपनी कला यात्रा के आरम्भिक दौर में मैं अपने जीवन में आये अनेक वरिष्ठ कलाकारों के सम्पर्क में आई, वे या तो मेरे शिक्षक गुरु रहे या जिनके काम को मैं बहुत पसन्द करती थी। उनमें से सर्वप्रथम पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय जी जिनसे मैं नवी कक्षा की छात्रा के रूप में मिली और उस समय मुझे कक्षा की अन्य छात्राओं के साथ हमारी शिक्षिका चन्द्रावती जी पेन्टिंग बनाने के लिए विजयवर्गीय जी के स्टूडियो लेकर गई। परन्तु उसके बाद जब महारानी कॉलेज में बी.ए. की पढ़ाई करते समय विजयवर्गीय जी से पेन्टिंग सीखना शुरू किया। जो पेन्टिंग बनती थी उसको रामगोपाल जी खरीद लिया करते थे। बी.ए. में पढ़ते समय श्री वीरेन्द्र नारायण जी सक्सेना के सम्पर्क में आई। उनसे मैंने व अन्य छात्राओं ने कला कम्पोजीशन और फिगर ड्राइंग सीखी। साथ ही फ्रेस्को तकनीक, लैदर वर्क, मांडणा आर्ट, मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी इत्यादि अनेक तरह की कलाएं सीखी। श्री मोनी सान्याल भी हमें बी.ए. में पढ़ाते थे जो कि बहुत अच्छे लैण्डस्केप आर्टिस्ट थे। वरिष्ठ कलाकारों में श्री राम जायसवाल जी से भी बहुत प्रभावित रही हूँ जो कि एक बहुत ही अच्छे वाश एवं वॉटर-कलर में लैण्डस्केप करने वाले आर्टिस्ट थे। अपने आरम्भिक दौर में श्री वेदपाल 'बन्नू' जी से भी बहुत प्रभावित रही हूँ। उनसे मैंने मिनिएचर आर्ट की तकनीक सीखी। चित्र में छाया-प्रकाश का प्रभाव या परदाज़ भरनी हो तो क्या करें और कैसे करें ये सब मैंने बन्नू जी से सीखा जो मेरी कला यात्रा में बहुत काम आया। मैं विदेशी कलाकारों में 'वॉन गॉग' की कला से भी बहुत प्रभावित रही हूँ जो प्रकृति चित्रण और लैण्डस्केप बनाने में माहिर कलाकार थे। उनके चित्रों में जो टेक्सचर होता है वो पूरी सर्फेस पर होता है और इससे प्रभावित होकर मेरे चित्रों में भी टेक्सचर बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

● एक चित्रकार के रूप में स्वयं को आज कहां देखती है आप ?

● एक चित्रकार के रूप में मैं अपने को इस समय राजस्थान की "टॉप मोस्ट आर्टिस्ट" में गिनती हूँ और अपने को उसी स्थान पर देखना चाहती हूँ। हालाँकि इसके भिन्न-भिन्न मापदण्ड हो सकते हैं।

● आप किस चित्रकार को अपना आदर्श चित्रकार मानती है ?

● मेरे आदर्श चित्रकार हमेशा से 'वॉन गॉग' ही रहे है और उनके चित्रों को सामने से देखने के लिए मैंने "एम्स्टरडम" की यात्रा भी की है जहाँ वॉन गॉग म्यूजियम देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

● आपने किस चित्रकार को अपना गुरु बनाया/माना है ?

● गुरु बनाने की प्रथा संगीत या नृत्य विधाओं में ही प्रायः मिलती है।

चित्रकला के क्षेत्र में तो हम प्रायः जिनसे चित्र बनाना सीखते हैं वो ही हमारे गुरु होते हैं परन्तु गुरु की नकल चित्रण विधा में मान्य नहीं है जो कि संगीत और नृत्य-नाट्य कलाओं में पूर्णतया मान्य है। चित्रण विधा में चित्रकार को अपनी एक पृथक शैली विकसित करनी होती है जो आगे चलकर उसकी अपनी पहचान बनती है। फिर भी यदि कहूँ तो पद्मश्री सम्मान से विभूषित रामगोपाल विजयवर्गीय जी और श्री वेदपाल बन्नू जी ही मेरे गुरु रहे जिनसे मुझे कला क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली।

• अपनी युवावस्था के सृजनकारों तथा वर्तमान सृजनकारों की परिस्थितियों को आप किस प्रकार देखती है ?

• अपनी युवावस्था के सृजनकारों और वर्तमान समय के सृजनकारों की परिस्थितियों में जमीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है। पहले के सृजनकार सही मायने में सृजनकर्ता हुआ करते थे, वो बहुत कम सुविधाओं और कम पैसे में भी एक सच्ची कला का निर्माण कर देते थे परन्तु आज तो फेक आर्ट की वैल्यू हो गई है। दुकानों में बिकने वाली आर्ट और क्राफ्ट को ही कला समझकर उसे ही पब्लिक असली आर्ट मानती है। परन्तु इस अन्तर को समझना होगा कि असली आर्ट क्या है और फेक आर्ट क्या है। अब कोई मेहनत नहीं करना चाहता है। डिजिटल आर्ट का जमाना है जिसमें खूब कॉपी वर्क हो रहा है।

• अपने वर्तमान चित्रण के बारे में जानकारी देते हुए बताएं कि इस ओर आपका जुड़ाव कैसे हुआ ?

• वर्तमान में मैं "फाइव एलिमेंट्स ऑफ द यूनिवर्स" नामक सीरीज पर काम कर रही हूँ जिसका जिक्र मैं पहले कर चुकी हूँ। यह एक गहरा और फिलोसॉफिकल विषय है। और आध्यात्म से जुड़ा विषय भी है। मनुष्य का सम्पूर्ण शरीर, उसका मन और मस्तिष्क इससे जुड़ा है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ये पाँच तत्व व्याप्त हैं। इन पाँचों तत्वों की प्रकृति को समझना आसान नहीं था और मैं इसको समझना चाहती थी। इसीलिए यह सीरीज मेरे लिए एक चैलेंज की तरह है और मैंने इसको एक्सेप्ट भी किया।

• आपकी चित्रण तकनीक और चित्रण विषयों के बारे में बताएं, आप अपने विषयों का चुनाव किस प्रकार करती है ?

• मैं एक्रेलिक रंगों में चित्रण करती हूँ जिसमें कलर स्कीम लाइट टू डार्क की तरफ जाती है। मैं अपनी कलर स्कीम में ट्रांसपेरेंसी भी रखती हूँ। रंगों की अलग-अलग परतें मेरी पेंटिंग्स में साफ-साफ नज़र आती हैं। एक बार कलर पूरी तरह करने के बाद पूरी सर्फेस पर टेक्सचर लगाती हूँ और फिर से रंगों को धीरे-धीरे उभारती हूँ। लम्बा प्रोसेस है लेकिन इसी प्रकार चित्रण करना मुझे पसन्द है। अपने विषयों का चुनाव में प्रकृति से ही करती हूँ अथवा अपने आस-पास के वातावरण से, जो सामने देखती हूँ महसूस करती हूँ, वहाँ से अपने विषय का चुनाव करती हूँ। बहुत बार किसी स्थान या कोई व्यक्ति विशेष अथवा कोई घटना का फोटो खींचकर फिर उसको अपनी विशेष शैली में भी चित्रित करती हूँ। मेरे चित्र मुख्यतया मेरे आन्तरिक मन पर पड़े हुए प्रभाव को ही प्रतिबिम्बित करते हैं। मैंने कभी भी हूबहू चित्रण नहीं किया। मैं अमूर्त कला शैली को ही अहमियत देती रही हूँ। फिर चाहे मुझे मानव आकृति, पशु पक्षी, कोई बिल्डिंग, आकाश या पेड़-पौधों फूलों का ही चित्रण क्यों न करना पड़ता हो।

• आपने अपने चित्रों एवं कलाओं के बारे में कई टॉक शो एवं स्लाइड शो भी किए है, उनके बारे में बताएं ?

• टॉक शो, स्लाइड शो आदि मेरी कला-यात्रा में महत्वपूर्ण रहे हैं। मैं अपने अध्यापन काल के दौरान कई यूनिवर्सिटी में जाती रही थी तब वहाँ डिपार्टमेंट में मेरे टॉक शो और स्लाइड शो आयोजित किये जाते थे। अधिकांशतः कला विद्यार्थी अमूर्त कला को नहीं समझ पाते हैं तो मेरे अनेक टॉक शो इसी विषय पर आधारित होते थे। मेरे स्लाइड शो ड्राइंग एण्ड पेन्टिंग डिपार्टमेन्ट राजस्थान यूनिवर्सिटी, जवाहर कला केन्द्र, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी कला-विभाग, मॉडर्न आर्ट गैलरी, दिल्ली, गैराज एवं विएना, ऑस्ट्रिया में एक महिला चित्रकार शिविर के दौरान, वेल्स-इंग्लैंड में एक प्रदर्शनी के दौरान, महिला चित्रकार शिविर, उदयपुर आदि स्थानों में आयोजित हो चुके हैं।

• आपके अध्ययन काल और वर्तमान की कला शिक्षा के बारे में आपके क्या विचार है ?

• अपने कला-अध्ययन काल को जब मैं याद करती हूँ तो मुझे याद है मैं सुबह चार बजे उठकर पढ़ाई करती थी, और नोट्स बनाकर पढ़ना मेरी आदत रही थी। बाकी का खूब सारा समय मैं अपने ड्राइंग और पेन्टिंग के लिए देती थी जिसमें स्केचिंग का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता था। हमें हर रोज एक स्केच बनाकर अपने शिक्षक को दिखाना होता था। ये आदत इतनी पक्की हो गई थी कि आगे चलकर जब मैं किसी आर्ट वर्कशॉप या कैम्प में जाती थी तो वहाँ पर भी स्केच करने बाहर चली जाती थी। पेंटिंग बनाने से पहले अपने आस-पास से किसी विषय का चुनाव करना इससे आसान हो जाता था। आजकल मुझे याद आ रहा है कि जब हम श्री रामगोपाल विजयवर्गीय जी के पास कला अध्ययन कर रहे थे तो वो हमको बस में बिठाकर सांगानेर ले जाते थे और बस में बैठे हुए ही स्केचिंग करते रहते थे। उनके साथ-साथ हम लोग भी स्केच बनाते रहते थे। फिर गाँव-ढाणियों में जाकर वहाँ पर गाय-भैंसों, गाँव के लोगों, वहाँ के घरों, खेतों में काम करते मजदूरों के स्केच बनाते थे। इस सबसे हमने बहुत कुछ सीखा। आजकल की कला शिक्षा तो मात्र किताबों से पढ़कर परीक्षा देने तक ही सीमित हो गई है। न तो पहले जैसे शिक्षक रहे हैं ना ही पहले जैसे विद्यार्थी। विद्यार्थी आजकल इंटरनेट से कुछ निकाल कर उसकी कॉपी करते रहते हैं। उनकी कल्पना शक्ति या ऑब्जर्वेशन शक्ति का विकास नहीं हो पा रहा है। इससे विद्यार्थी कभी भी अच्छे कलाकार नहीं बन पायेंगे।

• पारंपरिक एवं आधुनिक कलाओं के संप्रेषण भाव को आप किस तरह देखती हैं। वैचारिक तौर पर संप्रेषण का भाव किस कला विधा में अधिक है इस बारे में आपके विचार ?

● 'संप्रेषण' तो कला का मूल आधार है। यदि कला के माध्यम से संप्रेषण ही ना हो तो ऐसी कला तो निराधार है। इसलिए चाहे प्राचीन कला हो या आधुनिक कला हो, संप्रेषण उसका पहला नियम है। गुहावासी मानव से लेकर आज की आधुनिक कला तक कलाकार अपनी बात को दर्शक तक बहुत ही मजबूती से पहुँचाता रहा है। तभी तो कला जीवित है। प्राचीन समय में बौद्ध, जैन या हिन्दू धर्मो ने कला के माध्यम से ही अपने धर्म और सन्देशों को देश-विदेश के लोगों तक पहुँचाया। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र' में कहा है कि 'नाट्य' ही सभी कलाओं का आधार है जहाँ सारी कलाएँ समाहित हैं। लेकिन मेरे विचार में कोई भी कला-माध्यम चाहे वो संगीत हो, कविता हो, चित्र हो, मूर्ति हो, नृत्य हो, नाट्य हो यदि वो अपने कथन को पूरी सहदयता से दर्शक के मन पर अपनी छाप छोड़ता है और संप्रेषित करता हो तो वह श्रेष्ठ कला है।

● अमूर्त कला विधा में अभिव्यक्ति को आप किस तरह देखती है? अन्य माध्यमों की तरह यह उतनी प्रभावशाली है ?

● अमूर्त कला पर बात आई है तो मैं कहना चाहूँगी कि चित्रकार जो कुछ भी ऑब्जर्व करता है या अपने चारों ओर के माहौल से जो कुछ भी महसूस करता है उसी का चित्रण भी वो अपने चित्रों में करता है या मूर्ति में ढालता है। उस सबका वह हूबहू चित्रण न करके, उसको संशोधित करके अपनी शैली में प्रस्तुत करना चाहता है तो उसका स्वरूप सर्वथा भिन्न हो सकता है परन्तु उसकी आत्मा वही रहती है। जैसे कि गुलाब की पंखुड़ियों को हूबहू उसी की तरह न बनाकर उसके रंगों को बनाना और पंखुड़ियों को अपनी शैली में बनाना, लेकिन उसकी आत्मा को न छोड़ना अमूर्त आर्ट की श्रेणी में आयेगा। किसी स्त्री के चित्र में दर्शक उसके चेहरे, वस्त्रों या आभूषणों में न उलझकर उसके मूल भाव, आसपास के वातावरण की ओर भी दृष्टि डाल सकें यही अमूर्त भाव होता है। महान कलाकार लियोनार्डो दा विंची द्वारा बनाई गई 'मोनालिसा' की पेन्टिंग इतनी महान कलाकृति ऐसे ही नहीं हो गई। उसमें छिपा अमूर्त भाव ही कलाकृति को महान बनाता है।

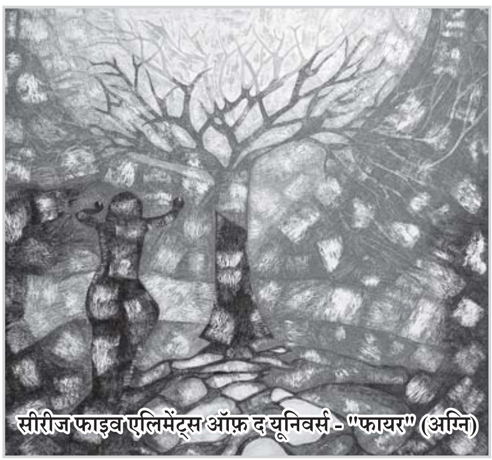
सीरीज फाइव एलिमेंट्स ऑफ़ द यूनिवर्स - "फायर" (अग्नि)

● आप वर्षों से चित्र अभिव्यक्ति में साधनारत है, आप वर्तमान कला स्वरूपों को किस रूप में देखती है?

● मैंने और मेरे समय के कलाकारों ने वास्तविक रूप में चित्रण या कला की साधना की है। एक जुनून चढ़ा रहता था अपनी पेंटिंग पर काम करते समय। उठते बैठते उसी पर विचार-मन्थन चलता रहता था जब तक वह पेन्टिंग अपने अन्तिम परिणाम में कैसी दिखेगी, इस पर विचार करने के बाद ही उस पर काम शुरू होता था। फिर काम करते हुए समय का, खाने-पीने का किसी का भी विचार नहीं आता था चाहे काम करते हुए बहुत रात हो जाये या फिर सुबह के चार बज जायें बस चित्र पर काम जारी रहता था। आर्टिस्ट के रूप में तो अधिकतर मेरा काम पूरी रात भर चला करता था। परन्तु आज भी कलाकार ऐसा करते हों या न करते हों ये मैं नहीं कह सकती लेकिन वो जुनून अब कलाकारों में दिखाई नहीं देता। आज तो हाथ से काम करने के स्थान पर डिजिटल युग में प्रवेश कर गये हैं। डिजिटल पेंटिंग बन रही है। "आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस" के जमाने में अब कितना महत्व ओरिजनल पेंटिंग का रह जायेगा यह तो आगे आने वाला समय ही बतायेगा।

● आपके द्वारा लिखित पुस्तकें भी प्रकाशित हुई है, वें किन किन विषयों पर लिखी गई है। तथा ये पुस्तके कला विद्यार्थियों के लिए क्या महत्व रखती है ?

● मैने कला विषय पर अनेक आर्टिकल लिखे हैं और वो विभिन्न कला पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। कला विषय पर पुस्तकें जो लिखीं हैं वो राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर के द्वारा प्रकाशित हुई हैं। वें हैं **"ललित कला के आधारभूत सिद्धांत,"** व **"भारतीय मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला**, इनका अभी ग्यारहवां संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। ये पुस्तकें कला के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जो कि अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में जुड़ी हुई हैं, इसलिए कला विद्यार्थियों के लिए अधिक सार्थक है। एक अन्य ग्रंथ मेरी पी. एचडी पर प्रकाशित हुआ है। जो है "कल्पसूत्र कथाचित्रों का **विश्लेषणात्मक अध्ययन**" इसको प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, द्वारा दो वर्ष पूर्व प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थ में जैन धर्म से संबंधित चित्रों का अध्ययन व विश्लेषण किया गया है जो 14वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य की जैन पांडुलिपियों के अंतर्गत मिलते हैं। कला विद्यार्थियों व अन्य कला पिपासुओं के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण व पठनीय ग्रन्थ है।

● वर्तमान में युवा पीढ़ी के चित्रकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगी?

● युवा पीढ़ी के चित्रकारों को मेरा यही सन्देश है कि वो यदि कला को अपनाना चाहते हैं या उसमें अपना कैरियर बनाना चाहते हैं तो सबसे पहले तो उन्हें पूरी ईमानदारी के साथ कला-अध्ययन करना चाहिए। उसकी तकनीक की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अपनी शैली बनाकर ही अपने विचार कला में अभिव्यक्त करने चाहिए। इंटरनेट या कला बाजार की चकाचौंध से थोड़ी दूरी बनाकर ही अपने को पहले स्थापित कलाकार की श्रेणी में खड़ा करना होगा तभी सच्चे अर्थों में कलाकार बन पाएंगे अन्यथा नहीं।

संपर्क: 2- ट -8 जवाहर नगर, जयपुर (राज.) भारत
मो. 9414037374

पुस्तक- समीक्षा

शोध से ही समझा जाएगा तुलसी का सच

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक : गोस्वामी तुलसीदास महत्तर शोध लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी
संपादक : : आचार्य प्रभुदयाल मिश्र, डॉ. राजरानी शर्मा
समीक्षक : डॉ. प्रेम भारती
प्रकाशन : तुलसी मानस प्रतिष्ठान भोपाल
पृष्ठ : 308
मूल्य : ₹400/-
प्रथम संस्करण : 2026

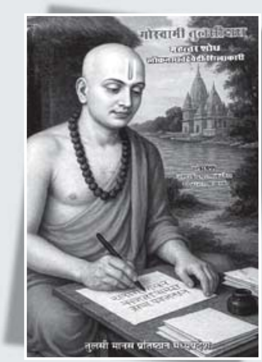

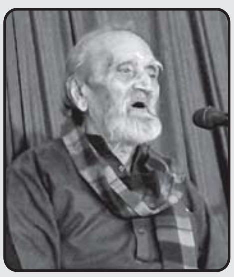

डॉ. प्रेम भारती

बुंदेलखंड की धरती प्राचीन कॉल से ही वीर प्रसवा के साथ साथ साहित्य जगत में भी प्रभावी रही है। आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण इसी क्षेत्र की रचना है तथा गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसी भू भाग के हैं।

वाल्मीकि आश्रम बुंदेलखंड के चित्रकूट जनपद के लालापुर ग्राम के निकट नदी के किनारे स्थित है। श्रीराम वाल्मीकि के दर्शन करने इसी स्थान पर गए और उन्हीं की प्रेरणा से वे चित्रकूट के कामद गिरि पर्वत पर 12 वर्षों तक रहे। नाभादास ने भक्तमाल में तुलसीदास को वाल्मीक का अवतार माना है।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान ने तुलसी पर एक महत्तर शोध लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी द्वारा लिखित ग्रंथ हाल में ही प्रकाशित किया है। यह एक अनुपम शोध ग्रंथ है। यह ऋषिऋण का पर्याय ही है। इस ग्रन्थ के तीन खंड हैं। प्रथम खंड में तुलसी का आत्मचरित हैं। दूसरे खंड में तुलसी के समकालीन ऐतिहासिक महापुरुषों के साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन चरित्र पर विशेष शोध परक सामग्री दी गई है। तृतीय खंड तुलसी की रचना प्रभाग का है जिसमें 12 ग्रंथों का विश्लेषण है।

पुस्तक की सामग्री से तुलसी की कठिन साधना का परिचय होता है। तुलसी की वाणी में जहाँ एक ओर भक्ति मार्ग का उपदेश है वहीं दूसरे पक्ष के आधार पर उसमें भारतीय संस्कृति और समाज सुधार का संदेश भी है। जैसा कि शोधकार्य का खाका होता है, तानाबाना होता है. सिलीकारी जी ने बहुत सारे ग्रंथों के साक्ष्य तथा विद्वानों के कथनों का यथास्थान उल्लेख किया है और इस कार्य में उन्होंने कुछ उदाहरण पाश्चात्य तथा पौर्वात्य मनीषियों के देकर स्वयं का मन्तव्य भी दिया है । अब तक के मान्य मत के आधार पर भी तुलसी का जन्म 1554 संवत् के स्थान पर

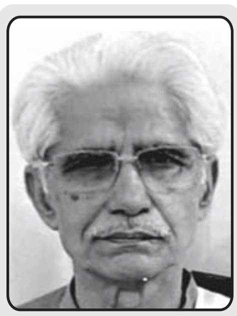

संपादक
आचार्य प्रभुदयाल मिश्र

सिलाकारी जी गोस्वामी जी का जन्म 1589 संवत् मानते हैं और राजापुर बांदा जिला के स्थान पर वे उनका जन्म स्थान सौरों, सूकर क्षेत्र मानते हैं। इसके बाद सिलाकारी जी ने रचना प्रभाग में एक सुंदर कवित्त दिया है जिसमें तुलसी के 13 काव्य ग्रंथों का उल्लेख है-

मानस गीतावली कवितावली बनाई कृष्ण गीतावली गाइ सतसई निरमाई है पार्वती मंगल कही मंगल कही जानकी रामाज्ञा नहछू अनुराग युक्त गाई है बरवे वैरीग्य संदीपनी बनाई है विनय पत्रिका बनाई जामैं से प्रेम परछाई है नाम कल कोश मणि तुलसी कृत तेरा काव्य नहीं कलि ऐसी काउ कवि कविताई है। (कोदोराम)

इसमें दोहवाली के स्थान पर सतसई तथा नाम कलाकोश मणि नामक एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख है। वे इस तरह वे तेरह ग्रंथों को तुलसी के प्रामाणिक दर्शाया मानते हैं और प्रत्येक ग्रंथ की समीक्षा भी उन्होंने की है।

परिशिष्ट में मानस प्रतिष्ठान द्वारा सिलाकारी जी द्वारा लिखित सात खंडों में विभाजित सामग्री को भविष्य में प्रकाशित करने की योजना का उल्लेख है जो तत्कालीन ओरछा नरेश वीरसिंहदेव का मूल प्रकल्प था।

अंत में मैं कहना चाहूंगा कि मैं यह अपना सौभाग्य मानता हूँ कि आचार्य प्रभुदयाल मिश्र द्वारा संपादित इस ग्रंथ का अध्ययन कर मुझे कई ऐसी जानकारियां मिलीं जिनसे मैं अब तक अनविज्ञ ही था।

शब्द कभी बूढ़े नहीं होते। मानस का अध्ययन इसी भाव से घर घर में किया जा रहा है। उसको पढ़कर शब्द चेतना ब्रह्म चेतना से जुड़ती है। मानस पर भविष्य में भी शोध तो होती रहेंगी किंतु इस पुस्तक की विशेषता यह है इसकी भाषा सीधी साधी है और इसमें रोचक शब्दावली का प्रयोग देखने को मिलता है। इस दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। मैं बधाई देता हूँ इस उत्कृष्ट कार्य के लिए। मैं इस हेतु तुलसी मानस प्रतिष्ठान का भी आभार मानता हूं।

संपर्क : एफ 91/49 तुलसी नगर, भोपाल (म.प्र.) मोबा. 9424413190

गोगाँवा गाँव का गरीब-आत्मकथा का कौतुक

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक	:	जितना मुझे याद रहा (आत्मकथा)
लेखक	:	सदाशिव कौतुक
समीक्षक	:	डॉ. रमेश दवे
प्रकाशन	:	अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली
पृष्ठ	:	258
मूल्य	:	₹600/-
द्वितीय संस्करण	:	2021

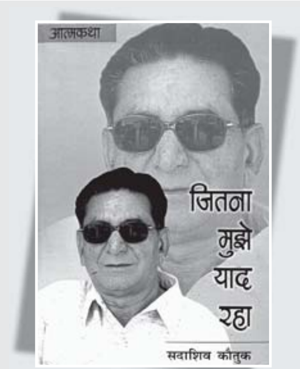

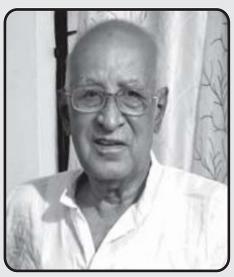
डॉ. रमेश दवे

जो लोग अपने को बड़ा मानकर, बड़प्पन को आत्म अहंकार में जीते हुए कुछ लोगों को छोटा समझकर उनकी उपेक्षा या अपमान करते हैं, उनके लिए कवि, कथाकार सदाशिव कौतुक की आत्मकथा 'जितना मुझे याद रहा एक मूर्तिभंजक कथा है। वह बड़प्पन की प्रचलित आत्म-प्रशंसित छवि को खंडित करती है। जिन्हें हम पिछड़ा वर्ग कहते हैं। वह हमसे सामूहिक न सही, लेकिन व्यक्तिगत सोच और आचरण में कितना आगे है यह सदाशिव का आत्मचरित पढ़कर जाना, समझा और कौतुक के साथ देखा-परखा जा सकता है। गोगाँवा (निमाड़) ग्राम का ऐसा बालक जिसने जन्म से उम्र के 50-60 वर्ष तक दुखों, अभावों, अपमानों, उपेक्षाओं और उत्पीड़नों का सपरिवार पहाड़ कंधो पर उठाए रखा, उसका श्रमफल उसे उसकी मनुष्यता में इतना बड़ा कर देता है कि गरीबी उससे डरकर भागने लगती है और अमीरी के अट्टाहास नतमस्तक हो जाते है। यह आत्मकथा सदाशिव कौतुक की दुख-गाथा है. अभावजन्य गरीबी-गाथा है लेकिन स्वाभिमान और स्वावलंबन की पुरुषार्थ-गाथा है। प्रेरक है यह कथा उनके लिए जो दुख के समक्ष आत्म-समर्पण कर आत्महत्या पर उतारू हो जाते है और अनुकरणीय उनके लिए जो सदाशिव के श्रम को देख अपने श्रम को पराजित नहीं होने देते। नेल्सन मंडेला ने अपनी आत्मकथा 'ए लांग वॉक टु फ्रीडम लिखी तो न केवल अपनी छब्बीस बरस की जेल यातना लिखी, बल्कि अपने सामूहिक और सामाजिक जीवन की वह क्रूर यंत्रणा भी लिखी जो काले अफ्रीकी समाज ने स्मट और बोर्था जैसे श्वेत तानाशाहों की उपनिवेशी क्रूरता भोगी थी। हमारा गरीब, पिछड़ा, दलित, महादलित और आदिवासी समाज उसी प्रकार की उपनिवेशी जल्लादी सामूहिक रूप से आज भी भोग रहा है। जातियों में जातियों की ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, दुराचार है तो सवर्णो, महाजनों का वह पारंपरिक बर्बर अमानुषिक व्यवहार और शोषण का बेईमान तरीका, प्रतिज्ञाओं और वचनों को निहित निजी स्वार्थ और लाभ के लिए तोड़ कर गरीब की गरीबी का रक्त चूसता हैं। ये सब तथ्य सदाशिव ने सत्य की तरह लिखकर अपने संघर्ष से उत्कर्ष तक की स्मृतियों का एकल इतिहास रचा है। जो एक प्रकार का ऐसा समाजशास्त्र है, जो आधुनिक और उत्तर आधुनिक समय में भी जारी है।

लेखक
सदाशिव कौतुक

सदाशिव की आत्मकथा की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने और अपने परिवार के उस जीवन सत्य को उद्घाटित किया है जो उन्हें गरीबी के संघर्ष के दौरान देखना और भोगना पड़ा। दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने सारे संघर्षो के बीच दस ग्यारह बरस की उम्र से जो साहित्य-सृजन की यात्रा शुरू की वह आत्मकथा तक आते आते लगभग 40 ग्रंथों में सार्थक हो गई। तीसरी विशेषता है उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया वह मानक साहित्यिक और सर्जनात्मक हिन्दी के साथ लोक कहावतों और स्थानीय निमाड़ी भाषा से सम्पृक्त होकर अधिक आत्मीय और मधुर हो गई है। यह भी कितने आश्चर्य की बात है कि एक लड़का जो गरीब से गरीब परिवार में पैदा होकर भी अपने समय की चालाकियों से समझौता नहीं करता। माँ अनपढ़ और मुंहफट अवश्य है लेकिन परिवार के प्रति अपने बेटी-बेटों के प्रति न केवल चिंतित है बल्कि उनकी सुरक्षा में अपने शरीर की हड्डियों तक गला देती है। पिता छज्जूलाल बहुत स्वाभिमानी, नेक और नैतिक मूल्यों का जीवंत उदाहरण है। बावजूद इसके सदाशिव दादा-दादी पर निछावर है। दादी का दिन रात का श्रम

उन्हें भी श्रमशील बनाता है. विपरीत स्थितियों से जूझने का साहस देता है, बीमारियों, मौतों और परिवार एवं समाज के स्वार्थी तत्वों के बीच अपने संयम की सुरक्षा का हौसला देता है। दादी तो सदाशिव का जीवन-आदर्श है।

परिवार में जब जब भी सुख की कोई किरण चमकने को होती है कि एकदम अंधेरा का अंधड़ आ खड़ा होता है। बचपन के अभावग्रस्त जीवन में चेचक का प्रकोप, परिवार के बच्चों की चेचक में मृत्यु, स्वयं सदाशिव का चेचक में एक आँख गंवा देना और असह्य पीडा भोगना यह तो भौतिक शारीरिक कथा है। जीवन जीने के लिए जीविका भी जरूरी है जिसके लिए स्वयं सदाशिव और परिवार के सदस्यों ने अदम्य जिजीविषा से हर दुर्गम, दुर्दान्त स्थिति का मुकाबला किया और हताश-निराश जीवन में आस्था भंग नहीं होने दी। खेती, मजदूरी, कारीगरी, छोटी-मोटी दुकानदारी, दरजीगिरी, अफसरों के भ्रष्ट आचरण के बीच की मजबूरी, यह सब होते हुए भी लेखक और परिवार के रिश्तदारों, जाति-समाज, पड़ोसियों, अपराधियों, महाजनों के बीच जो ईर्ष्या भोगी और हर सफलता पर असफलता के पत्थर झेले. इससे यह भी सदाशिव साबित करते है कि यदि हौसला है तो हार नहीं होती। महाजनी असभ्यता, नेताई चालाकी, मित्रता के भीतर भी घात, पराये परिवार से सम्बंधों को लेकर संदेह और आरोप, ग्राम्य जीवन का ऐसा पहलू उजागर करता है जिसके बीच सदाशिव जिये है, मर-मर कर भी जिये है, पराजत क्षणों में भी अपने श्रम से अपने जीवन की जय के प्रति आश्वस्त है। ज्योतिषी, तांत्रिक, अंधविश्वास, गण्डे ताबीज, मंत्र-तंत्र, शुभचिंतक और अशुभचिंतक, मित्र और छदम एवं प्रत्यक्ष शत्रु, परिवार का कलह, परिवार और विशेषकर भाई जगदीश और परमानंद के प्रति दायित्व का आत्मीय भाव, इन सबके साथ माँ. दादी, पत्नी बहन सबके स्त्रीत्व के प्रति अगाध श्रद्धा एवं सम्मान, इन सबका ताना-बाना सदाशिव ने इस प्रकार बुन दिया है जैसे जब वे कारीगर है तो मकान-दुकान बनाने के साथ शब्द की भी काव्य-कथा कारीगरी करते हैं, जब एक बुनकर है, तो संवेदन के बारीक से बारीक ताने-बाने बुनते हैं, जब सरकारी नौकरी या अस्थायी अध्यापक है, तो आत्मसंतोष के गीत गाते है, जब जीवन के कष्ट-कंटकों से घिरते है, तो कहीं रामलीला में तबला बजाते है, मंदिरों में भजन गाते हैं, त्यौहारों के समय देवी-देवताओं के चित्र बनाते है। एक सर्वहारा का सर्वविजयी जीवन जीते है सदाशिव मुसीबत और मुफलिसी में मंगलगीत रचकर।

वे निमाड़ी में हिंदी में कविता, हाइकू, कहानी, उपन्यास लिखते हैं और साहित्यिक अहं के स्थानीय दिग्गजों की पोल भी खोलते है। नामवर सिंह से लेकर देश के सर्वाधिक चर्चित साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाकारों और राजनीतिक नेताओं के साथ सम्पर्क में संस्कार ग्रहण करते है। अपनी पुस्तकों के लोकार्पण में देश, प्रदेश और नगर के साहित्यकारों के बीच यह सिद्ध करते है कि शब्द की सत्ता क्या होती है।

उन्होंने अपनी भाषा में अनेक सूत्र वाक्य और कहावतों का मनोरम प्रयोग करके अपनी शैली में रोचकता पैदा की है। जैसे इतिहास ही वर्तमान को सचेत करके भविष्य सशक्त करता है। मैंने समय को देवता मानकर कर्म को पूजा और कर्म को पूजकर जीवन स्तर उठाने की कोशिश की।

समय को विज्ञान ने ऐसा मोड़ दिया कि ईश्वर प्रदत्त दोस्त को छोड़कर लोग विज्ञान के उपकरणों को दोस्त बनाने में मशगूल है। पिता ने स्वयं के बूते पर जिंदगी जीना सीखा नहीं, वे नहीं जानते थे कि दूसरों के कंधों पर जिंदगी नहीं जनाजे निकलते है। अभावग्रस्त जीवन भी एक नर्क के समान होता है।

ग्रामीण संस्कृति धैर्य प्रदान करके मनुष्य को रीति-रिवाज, परम्परा और लोकलाज का द्योतक बनाती है। समय पर पेट भर जाना आनंददायी क्षण होता हैं। कहावतें स्थानीय भाषा के साथ सार्वभौमिक भी हैं और लगभग हर एक दो अध्याय के बाद भाषा में उतर आती है।

सदाशिव की जिद थी कि वह एक दिन ठेकेदार बनेगा। गाँव छोड़कर इंदौर आना, झुग्गी बस्ती में झुग्गी बनाकर रहना, शुभचिंतकों के सहयोग से कारीगरी करते करते ठेकेदारी करना, अपना मकान स्वयं बनाकर परिवार के नौ-दस सदस्यों के साथ बस जाना, सुख के दिनों के बीच भी तथाकथित मित्रों, शत्रुओं के छल-कपट का शिकार होना, सदाचरण के बावजूद भी कोर्ट कचहरी का सामना करना, ये सब वे स्वाभाविक तथ्य है जो एक गरीब को ऊपर उठते देखकर समाज की ईर्ष्या के शिकार होते हैं।

सदाशिव ने अपने दुखों के तो कई पहाड़ खड़े कर दिए, जीवन के मर्म को आँसुओं की भाषा में लिख भी दिया, मानवीय सम्बंधों के अच्छे कम, मगर बुरे कारणों और उदाहरणों का हवाला भी दे दिया, साथ ही यह भी बता दिया कि वे जीवन से न भागने के संकल्प के बावजूद हताश आत्महत्या के सोच में रेल की पटरियों तक भी पहुँच गए लेकिन यह सब जिस प्रकार उन्होंने जिंदगी के आरोह-अवरोह के बीच भोगा, उसे अपनी सर्जनात्मकता से, अपने शब्द की शक्ति से दुत्कारते भी रहे।

यह आत्मकथा एक सच्चे आदमी के लेखक होने की जिद की भी कथा है और एक सच्चे आदमी के आत्मजयी होने की भी। देश भर के साहित्यकारों, पत्रकारों, जार्ज फर्नान्डीस से लेकर तमाम नेताओं का, मित्रों, पत्रकारों, शुभ-अशुभचिंतकों सबकी सूची देकर सदाशिव ने संभवतया यह प्रकट करने की कोशिश की है कि समय के पास जो न्याय है. उस न्याय ने ही उन्हें उपेक्षित, अपमानित से सम्मानित और सक्षम बनाया। यह आत्मकथा एक प्रकार से औपन्यासिक कथा का आस्वाद देती है और सिद्ध करती है कि लेखक छोटा बड़ा, चर्चित अचर्चित नहीं होता, उसकी शब्द-साधना और सर्जनात्मक क्षमता और संवेदना की तासीर ही उसे सर्जक बनाती है। यह आत्मकथा हिंदी के अनेक पाठकों लेखकों के लिए चौकानेवाली सिद्ध हो सकती है। यह कौतुक का कौतुक है जिन्हें कवि श्रीकृष्ण सरलजी ने सालवी या सिसौदिया से कौतुक बना दिया था। आत्मकथा में जितना आत्म है, उतना अनात्म भी. भावुकता भी लेकिन सुखों की दुनिया अनुपस्थित हैं। यह विशेषता भी है. कमी भी।

संपर्क : सहयाद्रि परिसर, भदभदा भोपाल (म.प्र.)

इस आत्मकथा का अनुवाद प्रकाशित हुआ है, जो अमेजान पर उपलब्ध है "As Much As ICan Remember"

■■■

पुस्तक- समीक्षा

चित्रसूत्र : डॉ. श्रीकृष्णकृत गंभीर टीका

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक	:	विष्णुधर्मोत्तरीय चित्रसूत्र - कृष्ण द्वैपायन व्यास
सम्पादक एवं अनुवादक	:	डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
समीक्षक	:	डॉ. पंकज भांबुरकर
प्रकाशन	:	चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी,
पृष्ठ	:	192
मूल्य	:	₹275/-

डॉ. पंकज भांबुरकर

प्राचीन भारतीय चित्रकला के भौतिक प्रमाण चट्टानों के अवशेषों और गुफाओं में मिलते हैं। चट्टानी चित्र भारतीय चित्रकला की शुरुआत हो सकते हैं लेकिन उस काल के हमारे संस्कृत साहित्य में चित्रकला और मूर्तिकला के कई संदर्भ मिलते हैं। आज यह कहना कठिन है कि प्राचीन भारतीय चित्रकला का स्तर क्या था अथवा प्राचीन काल में चित्रकला के नियमों और सिद्धांतों को समझाने के लिए किस प्रकार की पुस्तकें उपलब्ध थीं तथापि यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत में चित्रकला का आदर्श बहुत ऊंचा था और चित्रकला पर पुस्तकें भी थीं। हालांकि, वे आज उपलब्ध नहीं हैं।

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

पुराणों, महाकाव्यों, संस्कृत नाटकों आदि साहित्य में चित्रकला के बार-बार उल्लेख और इसके बारे में जगह-जगह दिए गए विवरण, ऐसे ग्रंथों और व्यावहारिक विषयों के अस्तित्व की गवाही देते हैं। जिस प्रकार अन्य कई विषयों पर लिखे गए साहित्य राजनीतिक उथल-पुथल और विधर्मी हमलों में नष्ट हो गए, उसी प्रकार चित्रकला पर लिखे गए ग्रंथ भी नष्ट हो गए होंगे। हालांकि मानसार, अपराजित पृच्छा, शिल्परत्न, नग्नजित कृत चित्रलक्षणम्, वात्स्यायन का कामसूत्र, सोमेश्वर कृत मानसोल्लास और विष्णुधर्मोत्तर पुराण चित्रकला के नियमों, सिद्धांतों, प्रकारों और महिमा के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वात्स्यायन और सोमेश्वर की तुलना में चित्रकला पर अधिक गंभीर सूत्र हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के तीन खंड हैं, जिनमें पहले खंड में 261 अध्याय, दूसरे खंड में 183 अध्याय और तीसरे खंड में 118 अध्याय हैं। यह पुराण 5वीं-6वीं शताब्दी ईस्वी की रचना है। यह एक सांस्कृतिक विश्वकोश है। इसमें व्यावहारिक, सामाजिक, कला, विज्ञान और धर्म जैसे अनेक विषयों की जानकारी शामिल है। रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद, मनुस्मृति और गर्ग मुनि आदि के ज्योतिष ग्रंथों से सैकड़ों अंश लिए गए हैं। यह कोई स्वतंत्र रचना नहीं बल्कि ज्ञान का एक संकलित संहिता - संग्रह है। नृत्य, नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला और प्रतिमाओं जैसी कलाओं का वर्णन और इन कलाओं का अभ्यास करने वालों के लिए विस्तृत मार्गदर्शन इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषताएं हैं।

इस पुराण के तीसरे खंड के अध्याय 35 से 43 को 'चित्रसूत्र' कहा जाता है। चित्र, मूर्ति, नृत्य आदि कलानुशासनों का इतना विस्तृत वर्णन किसी अन्य पुराण में नहीं मिलता। इसी कारण विष्णुधर्मोत्तर पुराण अन्य महापुराणों और उपपुराणों में सर्वोत्कृष्ट है। यह तीसरा खंड मूर्तिकला के अध्ययन के लिए विशेष रूप से अद्वितीय है। इसे प्राचीन भारत की ललित कलाओं पर लिखे गए सबसे व्यापक और महानतम ग्रंथों में से एक माना जा सकता है।

यद्यपि यह एक विशेष चित्रसूत्र है, फिर भी इसके कुछ विषय – जैसे मान, प्रमाण, रूप और लक्षण, रस, भाव, स्थान और क्षय-वृद्धि – मूर्तिकला पर भी लागू होते हैं। ये विशेषताएँ किसी अन्य प्राचीन ग्रंथ में नहीं मिलतीं। भारत में कला के संबंध में जो प्रयोग और अध्ययन हो रहे थे, उनका सर्वप्रथम वर्णन विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मिलता है। मत्स्य पुराण में वास्तुकला और मूर्तिकला का विज्ञान है; गरुड़ पुराण में वास्तुकला, रत्न विज्ञान और अंगों तथा वायु का विज्ञान है; ब्रह्मांड पुराण में संगीत का विज्ञान है; अग्नि पुराण में कविता और बिम्ब विज्ञान है;

बृहद नारदीय पुराण में ज्योतिष, व्याकरण का विज्ञान है और विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कविता, नृत्य, बिम्ब और कल्पना का विज्ञान है।

इसका नाम 'सूत्र' इसलिए रखा गया है क्योंकि इसमें लिखी सामग्री को भ्रमपूर्ण मानसिकता से प्रेरित होकर तैयार और संपादित किया गया है लेकिन चूंकि यह पुस्तक संस्कृत में है, इसलिए इसे आम पाठकों के साथ-साथ कला के छात्रों द्वारा भी आसानी से समझा नहीं जा सकता। हाल ही में, इस 'चित्रसूत्र' का हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। संस्कृत और भारतीय विद्या अध्ययन के अग्रिम विद्वान डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने इसका अनुवाद और संपादन 'विष्णुधर्मोत्तरीय चित्रसूत्रम्' शीर्षक से किया है। यह एक बहुत ही सरल, स्पष्ट और आसानी से समझ में आने वाला अनुवाद है। हालांकि इसका पहले अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है, लेकिन वह केवल शाब्दिक अनुवाद था! यह पुराण 1912 में पंडित मधुसूदन और माधव प्रसाद शर्मा के संपादन में प्रकाशित हुआ। बाद में, स्टेला क्रामरिच (1924 ई.), कुमारस्वामी (संक्षेप में समीक्षा, 1932 ई.), प्रियाबाला शाह (1958 ई.), सी. शिवराम मूर्ति (1978 ई.) और पारुल दवे मुखर्जी (2001 ई.) ने इसका अनुवाद किया। यह देखा गया है कि इन अनुवादों की गुणवत्ता में धीरे-धीरे सुधार होता गया है और यह माना जाता है कि दूसरा अनुवाद पहले से बेहतर है। शाब्दिक अर्थ वाचस्पति गैरोला ने भी किया।

इन सभी ग्रंथों में, जुगनू की सटीक और विस्तृत टीका के साथ 2019 में प्रकाशित यह भावानुवाद सर्वथा सर्वश्रेष्ठ है। इसमें चित्रसूत्र पर विद्वतापूर्ण और उदाहरण सहित टीका भी शामिल है। पारुल दवे मुखर्जी ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में स्टेला क्रामरिच और शिवराममूर्ति के अनुवादों में त्रुटियों और कमियों का उल्लेख किया है। लेकिन उनके अनुवाद में भी कई त्रुटियाँ हैं, जिन्हें डॉ. जुगनू ने इस अनुवाद में सर्वथा दूर किया है क्योंकि उन्होंने पूरे पुराण के अनुवाद के बाद ही इस सूत्र के पुनः संपादन सहित संदर्भों को महत्व दिया।

यद्यपि पूर्वसूरियो की चित्रसूत्र पर टीका अंग्रेजी में थी, वह केवल अनुवाद तक ही सीमित थी। इसके विपरीत, चित्रसूत्र शब्दावली से परिपूर्ण है। प्रत्येक शब्द और श्लोक की सही व्याख्या के लिए समय-समय पर अन्य ग्रंथों का सहारा लेना आवश्यक होता है। चित्रसूत्र को विशेष अध्ययन के बिना समझना कठिन है, यह जानकर डॉ. जुगनू ने इस ग्रंथ पर टीका लिखने का निश्चय किया। उन्होंने विष्णु धर्मोत्तर सहित अन्य ग्रंथों के आधार पर, चित्रसूत्र के प्रत्येक अध्याय के प्रत्येक श्लोक का सटीक अर्थ समझाने का प्रयास किया है, साथ ही पर्याप्त, बहुधा श्लोकों से अधिक पाद टिप्पणियां भी दी हैं। इस अनुवाद के पीछे उनका उद्देश्य सरलीकरण से कहीं अधिक संस्कृत ग्रंथों में चित्रकला के अनुशासन और उसके पीछे छिपे दार्शनिक विचार को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना भी रहा।

डॉ. जुगनू चित्रसूत्र की व्याख्या करते समय लीक पीटने वाले संस्कृत विद्वान की भूमिका नहीं निभाते, इससे उपराम हैं। उन्होंने संस्कृत में निहित विचारों का गहन अध्ययन किया है और फिर आधुनिक अनुभव एवं कलात्मक नवाचार के संदर्भ में उनका विश्लेषण किया है। इसके लिए उन्होंने अन्य शताधिक संस्कृत ग्रंथों का भी सहारा लिया है जो मुख्य विषय को पूरक बनाते हैं। कला अध्यापन के क्षेत्र में काम न करने के बावजूद, डॉ. जुगनू ने उन क्षेत्रों को सटीक रूप से उजागर और स्पष्ट किया है जिन्हें कला निर्माण के बारे में उत्सुक पाठक को समझना मुश्किल हो सकता है।

आज के पाठकों का संस्कृत साहित्य से वास्तविक संबंध क्या है? संस्कृत पढ़ने वाले और न पढ़ने वाले, दोनों ही सांस्कृतिक परिवेश में अपनी भूमिका से अलग नहीं हैं। मतों का दायरा सारा ज्ञान संस्कृत ग्रंथों में समाहित है... से लेकर संस्कृत साहित्य अब अप्रासंगिक हो गया है... तक फैला हुआ है! महज पुरानी परंपराओं को पुनर्जीवित करने से परंपरा का अपमान होता है, और अन्य संस्कृतियों से विचारों को तैयार उत्पादों की तरह आयात करने से हमारी साहित्यिक भूमि का अपमान होता है। विचार, चाहे वे हमारी प्राचीन परंपराओं से हों या विदेशों से, हमारे समक्ष प्रस्तुत किए जाने चाहिए। वे हमारी राष्ट्रीय और साहित्यिक पहचान का हिस्सा होने चाहिए।

डॉ. जुगनू का अनुवाद वैदिक साहित्य से लेकर पुराणों और विभिन्न संस्कृत ग्रंथों तक के व्यापक संदर्भों पर आधारित है। उनका कहना है कि 'चित्रलक्षणम्' और 'चित्रसूत्रम्' को केवल संस्कृत ग्रंथों के रूप में नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि इन्हें चित्रकला के छात्रों को तकनीकी और कलात्मक विषयों के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। इसके लिए विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम योजनाकारों और व्याख्याताओं को पहल करनी चाहिए। यह पुस्तक आज की ज्ञान अपेक्षाओं पर खरी उतरती हैं।

(लेखक डॉ. पंकज भाम्बुरकर एक चित्रकार हैं और कालिदास साहित्य पर शोध कर रहे हैं।)
सम्पर्क : आदित्य संस्कृति A2/39 मानाजी नगर, नन्हे पुणे -411041

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व के 12 वर्ष
प्रधानमंत्री श्री मोदी ने लिखा नए भारत के निर्माण का स्वर्णिम अध्याय

डॉ. मोहन यादव

भारत के इतिहास में श्री नरेन्द्र मोदी का लगातार 3 बार प्रधानमंत्री बनना देश के लिये महत्वपूर्ण उपलब्धि है। लगातार तीन बार सत्ता में आना श्री मोदी की कार्यप्रणाली, सभी को साथ लेकर चलना और देश को सुरक्षा देने के साथ आर्थिक रूप से मजबूत बनाना ही उनकी विशेषता रही है। यशस्वी प्रधानमंत्री जी की इन्हीं विशेष खूबियों ने नये भारत के निर्माण का स्वर्णिम अध्याय लिखा है। यशस्वी श्री नरेन्द्र मोदी जी ने वर्ष 2014 में जब प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी, तब देश की जनता ने केवल एक सरकार नहीं चुनी थी, बल्कि शासन की एक नई कार्यशैली और राजनीतिक संस्कृति की अपेक्षा भी व्यक्त की थी। 12 वर्ष बाद इस यात्रा को केवल योजनाओं, आंकड़ों और उपलब्धियों के आधार पर नहीं, बल्कि उस व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर समझना अधिक उचित होगा, जिसने शासन की सोच को प्रभावित किया। यदि इन बारह वर्षों को तीन शब्दों में समेटना हो, तो वे शब्द होंगे- सेवा, सुशासन और संकल्प।

प्रधानमंत्री जी की सोच में सेवा का अर्थ केवल कल्याणकारी योजनाएं चलाना नहीं रहा, बल्कि सेवा का अर्थ शासन स्वयं को जनता का संरक्षक और सेवक के रूप में हैं। इस दृष्टि से पिछले 12 वर्षों में शासन की प्राथमिकताओं में अंतिम व्यक्ति तक पहुंचने की उन्होंने चिंता की है। गरीब, किसान, महिला, युवा और वंचित वर्ग को केवल वोट बैंक के रूप में नहीं, बल्कि विकास प्रक्रिया को केंद्र में रखने की कोशिश की जो सफलता के शिखर तक जा पहुंची। यही सोच पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के एकात्म मानववाद में भी दिखाई देती है। मोदीजी की सरकार ने बार-बार यह संदेश दिया है कि विकास का वास्तविक अर्थ तब है, जब उसका लाभ समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति तक पहुंचे। प्रधानमंत्री जी की प्रमुखता में सुशासन एक प्रमुख केन्द्र बना। सुशासन का अर्थ सरकार को अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और प्रभावी बनाना है। डिजिटल तकनीक का उपयोग इसी दर्शन का हिस्सा था। तकनीक को केवल आधुनिकता का प्रतीक नहीं, बल्कि सुशासन का माध्यम माना गया। शासन और नागरिक के बीच की दूरी कम करने, प्रक्रियाओं को सरल बनाने तथा निर्णयों को अधिक पारदर्शी बनाने की दिशा में लगातार प्रयास किये गये जो लगातार जारी हैं। इसका मूले ध्येय यह है कि आम नागरिक को सरल और सहज तरीके से उसके अधिकार मिलें और योजनाओं का लाभ सहजता से मिल सके।

मुझे यह बताते हुये खुशी है कि श्री मोदी जी देश के पहले ऐसे प्रधानमंत्री हैं, जो लोकतंत्र में संवाद को आवश्यक मानते हैं। उनका समय-समय पर अलग-अलग वर्गों से सीधा संवाद करना और उन्हें मार्गदर्शन देना अदभुत है। वे युवाओं के लिये अभिभावक की भूमिका भी निभाते हैं। छात्र-छात्राओं को परीक्षा के समय आत्म मजबूत करने के लिये परीक्षा पर चर्चा जैसे विषयों पर उनका संवाद लगातार जारी रहता है। इसी क्रम में उनकी मन की बात कार्यक्रम को पूरा देश बड़े आत्मीय तरीके से आत्मसात करता है। यही हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री की विशेषता है।

हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी की सरकार की कार्यशैली में यह स्पष्ट दिखाई दिया देता है कि बड़े निर्णयों से बचने के बजाय उन्हें समाधान तक कैसे पहुंचाया जाए ? दरअसल, इसे ही निर्णायक नेतृत्व कहते हैं। यह निर्विवाद है कि निर्णय लेने की क्षमता इस शासनकाल की प्रमुख पहचान रही है। 21वीं सदी के तीसरे दशक में मोदी सरकार ने विकसित भारत को राष्ट्रीय संकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। यह संकल्प केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं है। इसके भीतर आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय गौरव की भावना भी जुड़ी हुई है। पिछले बारह वर्षों में बार-बार यह संदेश दिया गया कि भारत को केवल विकासशील राष्ट्र के रूप में संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे विश्व की अग्रणी शक्तियों में स्थान प्राप्त करना चाहिए। यह दृष्टिकोण भारतीय समाज में एक नए आत्मविश्वास का निर्माण करता है।

यशस्वी प्रधानमंत्री श्री मोदी जी से प्रेरणा लेकर हमने भी विकसित मध्यप्रदेश का सपना देखा। यह बताते हुए मन भाव-विभोर है कि मोदीजी का हर कदम पर हर निर्णय पर मार्गदर्शन, स्नेह और आशीर्वाद मिला। चाहे वर्षो से लंबित केन-बेतवा और पार्वती-कालीसिंध-चंबल लिंक परियोजना हो या पीएम मित्र पार्क, उन्होंने आगे बढ़कर परेशानियों को दूर किया। उनके जैसा नेतृत्व दुर्लभ है। हाल ही में देश के सात राज्यों में पीएम मित्र पार्क बनाने का निर्णय हुआ, तो उस सूची में मध्यप्रदेश को भी रखा गया। यह अति प्रसन्नता का विषय है कि अब तक सिर्फ मध्यप्रदेश में ही पीएम मित्र पार्क का भूमिपूजन हुआ है और यह गौरव का विषय रहा कि धार में पार्क के भूमिपूजन में प्रधानमंत्री जी शामिल हुए। यह सब मध्यप्रदेश से उनके विशेष लगाव का परिणाम ही है। प्रदेश में साइबर तहसील का सफल क्रियान्वयन हो या भोपाल और इंदौर में मेट्रो रेल, सब प्रधानमंत्रीजी के स्नेह-आशीर्वाद-मार्गदर्शन का ही परिणाम है। आज प्रदेश में नौ एयरपोर्ट हैं, तो इसके पीछे भी

उनका ही मार्गदर्शन है। आज हमारा मध्यप्रदेश नक्सल मुक्त है, तो इसके पीछे उनका ही दिशा-निर्देश है। उन्होंने समय-समय पर समझाया, तो चेताया भी। उन्होंने कहा कि गोली का जवाब गोली से दो पर जो लोग बंदूक-हिंसा छोड़कर मुख्यधारा में लौट रहे हैं, उनके लिए बेहतर से बेहतर पुनर्वास की व्यवस्था भी हो। उनकी सलाह-चेतावनी का ही सुफल है कि आज मध्यप्रदेश लाल सलाम को आखिरी सलाम कह चुका है। प्रधानमंत्री जी के मार्गदर्शन में ही मध्यप्रदेश में उद्योगों का जाल बिछ रहा है, लाखों करोड़ का निवेश हो रहा है। फरवरी 2025 में भोपाल में आयोजित ग्लोबल इंवेस्टर्स समिट में शामिल होना, उनका विशेष स्नेह ही तो दर्शाता है। उन्होंने हमें संवेदना की सीख दी है। उनकी सीख ही थी कि हमने अपने शुरुआती निर्णयों में ही इंदौर के हुकुमचंद मिल के कामगारों को उनका बकाया अधिकार दिलवाने में सफलता हासिल की। कामगारों को चेक सौंपने के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम को प्रधानमंत्री जी ने वर्चुअली संबोधित भी किया था।

मध्यप्रदेश के सभी 55 जिलों में अग्रणी सरकारी कॉलेजों को प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस के रूप में विकसित करना हो या हाइवे का विकास हो, हर मोर्चे पर प्रधानमंत्री जी ने आगे बढ़कर रूचि दिखाई, मार्गदर्शन-मदद और स्नेह देते रहे। मुझेकहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि वे कालजयी, त्रिकालदर्शी नेता हैं। हमारे मार्गदर्शक और संरक्षक मोदी जी के कार्यकाल की एक महत्वपूर्ण विशेषता सांस्कृतिक चेतना का पुनरूत्थान भी है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने आधुनिकता को अपनाया, लेकिन अपनी सांस्कृतिक पहचान को लेकर संकोच दिखाई दिया। पिछले 12 वर्षों में भारतीयता, विरासत और सभ्यता पर गर्व करने का भाव अधिक मुखर होकर सामने आया है। यह विचार केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि भारत की हजारों वर्षों पुरानी सांस्कृतिक यात्रा को आधुनिक राष्ट्र निर्माण से जोड़ने का प्रयास भी है। अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण हो, काशी का पुनर्विकास हो, या विश्व मंचों पर भारतीय परंपराओं और योग का प्रचार- इन सभी के पीछे सांस्कृतिक आत्मविश्वास का वही भाव दिखाई देता है। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर मध्यप्रदेश भी अपनी विरासत को संजो रहा है। किसी भी राष्ट्र की शक्ति केवल उसकी अर्थव्यवस्था या सेना में नहीं होती। उसकी शक्ति उसके आत्मविश्वास में भी होती है। इस दृष्टि से सांस्कृतिक पुनर्जागरण मोदी जी के कार्यकाल की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के 12 वर्षो को यदि केवल योजनाओं और आंकड़ों से समझने का प्रयास किया जाए, तो तस्वीर अधूरी रह जाएगी। इन 12 वर्षों का वास्तविक महत्व उस सोच में है, जिसने शासन को सेवा से, प्रशासन को सुशासन से और राजनीति को संकल्प से जोड़ने का सफल प्रयास किया है। यह कालखंड भारत के आत्मविश्वास, आकांक्षाओं और राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जागरण का कालखंड रहा है। यह नए भारत की आधारशिला है।

लेखक : मध्य प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री हैं।

■■■

डॉ. मोहन यादव
मुख्यमंत्री
मध्यप्रदेश

आदरणीय प्रधानमंत्री जी,

सादर प्रणाम

भारतवर्ष के प्रधानमंत्री के रूप में आपके यशस्वी नेतृत्व के 12 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर मध्यप्रदेश की समस्त जनता तथा अपनी ओर से आपको हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ। आपके दूरदर्शी नेतृत्व में देश ने विगत वर्षों में विकास, सुशासन, आत्मनिर्भरता, डिजिटल नवाचार, आधारभूत संरचना निर्माण तथा वैश्विक प्रतिष्ठा के क्षेत्र में अभूतपूर्व उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।

आपके इस स्वर्णिम कार्यकाल की एक प्रमुख विशेषता, विश्व अर्थव्यवस्था के आर्थिक पटल पर भारत की अर्थव्यवस्था का प्रमुख विकास इंजन के रूप में उभरना रहा है। रूस यूक्रेन संकट में आपरेशन गंगा, कोविडकाल में वैक्सीन मैत्री, जी-20 की अध्यक्षता इन सभी में भारत एक वर्ल्ड लीडर के रूप में सामने आया है। आंतकवाद के विरूद्ध आपकी जीरो टालरेंस सभी ने देखी। उरी हमले के बाद सर्जिकल स्ट्राइक, पुलवामा हमले के बाद बालाकोट स्ट्राइक और पिछले साल आपरेशन सिंदूर, हर बार आपके मजबूत नेतृत्व में भारत ने दुश्मन को करारा जबाव दिया है।

आपके मन में देश के गरीब, किसान, मध्यम वर्ग के लोगों के लिये गहन संवेदना है। यही कारण है कि पिछले 12 वर्षो में 25 करोड़ लोग गरीबी रेखा से बाहर आए है। आज पूरे देश में 81 करोड़ से अधिक लोगों को 5 किलों मुफ्त अनाज उपलब्ध कराया जा रहा है। आपने 4 करोड़ से अधिक लोगों को पक्के मकान देकर उनके सिर पर पक्की छत का सपना साकार किया है। जल जीवन मिशन से नल से जल की व्यवस्था हुई है। देश के अन्नदाता के प्रति आपकी सोच का ही परिणाम है कि पीएम किसान सम्मान निधि में 4 लाख करोड़ रूपये से अधिक की राशि किसानों के बैंक खातों में जा चुकी है।

नारी सशक्तिकरण के लिये आपके प्रयास हम सब के लिये अनुकरणीय है। नारी सशक्तिकरण के लिये लोकसभा एवं विधानसभाओं में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण के लिये आपकी प्रतिबद्धता और समर्पण वंदनीय है। पिछले 12 वर्षों में आपने नारी सशक्तिकरण के लिये पीएम उज्जवला योजना, स्व-सहायता समूहों का गठन, लखपति दीदी, पीएम सुकन्या समृद्धि योजना, पीएम मातृ वंदना जैसी अनेक योजनाओं की सौगात दी। आज देश में 48 प्रतिशत स्टार्टअप्स में महिला निदेशक है।

प्रदेश को हमेशा पल पल पर आपका मार्गदर्शन स्नेह और आर्शीवाद मिला है। आपने मध्यप्रदेश को केन-बेतवा लिंक परियोजना, पार्वती-कालीसिंध-चंबल लिंक परियोजना जैसी सिंचाई परियोजनाओं की सौगात दी है, आपके नेतृत्व में मध्यप्रदेश औद्योगिकीकरण के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ रहा है। फरवरी 2025 में आपने स्वयं पधार कर भोपाल में ग्लोबल इन्वेस्टर समिट का उदघाटन कर हमें अनुग्रहीत किया था। पिछलें 2 वर्षो में प्रदेश को 33 लाख करोड के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए है और तेजी से ये धरातल पर उतर रहे है। आपके ही कर कमलों से धार में देश के पहले टेक्सटाईल पीएम मित्रा पार्क का भूमिपूजन आपके जन्मदिवस पर सेवा पखवाड़े में सम्पन्न हुआ।

आपका आर्शीवाद मध्यप्रदेश को सभी क्षेत्रों में मिला है। आपने सड़क अधोसंरचना में मध्यप्रदेश को बडी सौगाते दी है। आपने 136 कि.मी. लंबे लगभग 3 हजार करोड़ लागत से उज्जैन-गरोठ ग्रीन फील्ड हाईवे का निर्माण कराया जिससे इंदौर एवं उज्जैन के लोगों को दिल्ली से कनेक्टिविटी मिली। इसी तरह राष्ट्रीय राजमार्ग-46 के इटारसी–बैतूल 22 किमी टाइगर कॉरिडोर, भोपाल-कानपुर इकोनॉमिक कॉरिडोर के 4-लेन में अपग्रेड करने की स्वीकृति, 6-लेन आगरा-ग्वालियर राष्ट्रीय हाई-स्पीड कॉरिडोर की परियोजना की स्वीकृति प्रदान की। इसके अलावा आपके द्वारा प्रदेश को दी गई कई सड़क परियोजनायें प्रगतिरत है।

आपके मार्गदर्शन में प्रदेश में वर्ष 2026 कृषक कल्याण वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। इस वर्ष गेहूं में समर्थन मूल्य पर 13.42 लाख किसानों द्वारा 104.36 लाख मे.टन गेहूं विक्रय किया गया है। यह विगत 10 वर्षो में सर्वाधिक है। भावान्तर योजना के अंतर्गत सोयाबीन उत्पादक लगभग 6 लाख 86 हज़ार किसानों के खाते में लगभग 1 हजार 454 करोड़ की राशि का अंतरण किया गया है।

आपके नेतृत्व में गरीबों के कल्याण से संबंधित योजनाओं में मध्यप्रदेश लगातार कार्य कर रहा है। प्रधानमंत्री आवास (शहरी) में 9 लाख से अधिक हितग्राहियों को अपना पक्का घर मिला है वहीं प्रधानमंत्री आवास (ग्रामीण) में 54.08 लाख नागरिकों को आवास मिलें है। आवास पूर्णत: में संख्यात्मक रूप में प्रदेश देश में प्रथम स्थान पर है। इसी तरह से प्रधानमंत्री स्वनिधि योजना में प्रदेश में 15.94 लाख प्रकरणों में 2697 करोड़ का ऋण वितरण किया गया है। इस योजना में मध्यप्रदेश देश प्रथम है।

आपके मार्गदर्शन में प्रदेश में स्वास्थ्य सेवाओं में तेजी से प्रगति हुई है। प्रदेश में शासकीय चिकित्सा महाविद्यालयों की संख्या 14 से बढ़कर 19 तथा निजी चिकित्सा महाविद्यालयों की संख्या 12 से बढ़ कर 14 हो गई है। इसी तरह से भारत की परम्परागत चिकित्सा पद्धति आर्युविद का भी, आपके मार्गदर्शन में प्रदेश सरकार विस्तार कर रही है। वर्तमान में प्रदेश में 7 शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय हैं तथा 8 नए कॉलेज स्थापित किये जा रहें हैं। आपकी राष्ट्र को स्वास्थ्य क्षेत्र में दी गई सबसे बड़ी सौगात ''आयुष्मान भारत'' में जनसंख्या अनुपात में आयुष्मान कार्ड बनाने में प्रदेश, देश में प्रथम स्थान पर है।

आपने इन 12 वर्षो में भारत वर्ष के गौरवशाली अतीत और सांस्कृतिक विरासत को भी पुन: जागृत किया। अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि पर भव्य राम मंदिर का निर्माण राष्ट्र की चेतना का जागरण है। आपके द्वारा काशी विश्वनाथ धाम , महाकाल लोक , केदारनाथ धाम एवं सोमनाथ धाम का विकास वर्तमान पीढी एवं आने वाली पीढ़ी को अपनी धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने का अद्भुत प्रयास है। 2014 में आपके प्रस्ताव ने संयुक्त राष्ट्र ने अंतराष्ट्रीय योग दिवस को मान्यता दी आज 190 से अधिक देशों में करोड़ो लोग योग को अपना चुके है यह भारत को आध्यात्मिक शक्ति को मिली विश्व की सबसे बड़ी मान्यता है।

आपके कुशल एवं दृढ़ नेतृत्व में पूरे भारत वर्ष में मार्च 2026 तक नक्सल समस्या को खत्म करने का लक्ष्य रखा गया था, उसे मध्यप्रदेश मे भी प्राप्त कर लिया। यह आपकी दृढ इच्छा शक्ति का ही परिणाम है कि दशकों से चली आ रही एक राष्ट्रीय समस्या का उन्मूलन संभव हो सका। अब आपके मार्गदर्शन में नक्सल प्रभावित गाँवों के त्वरित विकास के लिये माइक्रो डेवलपमेंट प्लान तैयार किया जा रहा है।

'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास' के मंत्र ने देश एवं प्रदेश के विकास को नई गति प्रदान की है। इस गौरवपूर्ण अवसर पर मैं आपके उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु एवं निरंतर सफल नेतृत्व की कामना करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके मार्गदर्शन में भारत अमृतकाल के लक्ष्यों को प्राप्त करते हुए विश्व में और अधिक गौरवशाली स्थान प्राप्त करेगा।

सादर!

भवदीय

(डॉ. मोहन यादव)

प्रति,
श्री नरेन्द्र मोदी जी,
माननीय प्रधानमंत्री,
भारत सरकार, नई दिल्ली

■■■

लोकसंस्कृति का एक युग हुआ विलीन : राजस्थान रत्न के. सी. मालू को अश्रुपूरित विदाई, श्रद्धांजलि सभा में उमड़ा जनसैलाब

राजनीति, न्यायपालिका, प्रशासन, उद्योग, साहित्य, संगीत, कला और मीडिया जगत एक मंच पर आया

• राज्यपाल, लोकसभा अध्यक्ष, मुख्यमंत्री सहित देशभर से 1700 से अधिक शोक संदेश

• हजारों लोगों ने दी लोकसंस्कृति के महान पुरोधा को अंतिम श्रद्धांजलि

15 जुलाई, जयपुर। राजस्थान की लोकआत्मा को स्वर देकर उसे विश्व के सांस्कृतिक मानचित्र पर अमिट पहचान दिलाने वाले राजस्थान रत्न, प्रख्यात उद्योगपति, लोकसंस्कृति के अप्रतिम संरक्षक, समाजसेवी और वीणा समूह के संस्थापक स्वर्गीय केशरी चंद (के. सी.) मालू को मंगलवार को जयपुर स्थित अणुविभा केंद्र (गौरव टावर) में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में हजारों लोगों ने अश्रुपूरित विदाई दी। श्रद्धा, सम्मान और संवेदना से भरी इस सभा ने एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक जनसमागम का रूप ले लिया, जहाँ राजनीति, न्यायपालिका, प्रशासन, उद्योग, साहित्य, संगीत, कला, मीडिया और प्रवासी राजस्थानी समाज एक साथ उस युगपुरुष को नमन करने के लिए उपस्थित हुआ, जिसने अपना संपूर्ण जीवन राजस्थान की लोकसंस्कृति के संरक्षण और संवर्धन को समर्पित कर दिया।

सभागार श्रद्धांजलि देने वालों से खचाखच भरा था, जबकि बाहर भी बड़ी संख्या में लोग अंतिम प्रणाम के लिए कतारबद्ध रहे। यह दृश्य इस बात का सजीव प्रमाण था कि के. सी. मालू केवल एक सफल उद्योगपति नहीं थे, बल्कि वे राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के ऐसे प्रहरी थे, जिनके प्रयासों ने लोकसंगीत और लोककलाओं को घर-घर से उठाकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंच तक पहुँचाया।

के. सी. मालू ने व्यावसायिक परिवार में जन्म लेने के बावजूद अपने जीवन का मार्ग लोकसंस्कृति की सेवा को बनाया। 1977 में 'सुरसंगम' तथा 1987 में 'वीणा' की स्थापना कर उन्होंने राजस्थानी लोकसंगीत के संरक्षण का ऐसा अभियान प्रारंभ किया, जिसने हजारों कलाकारों के जीवन को नई दिशा दी। उन्होंने पाँच हजार से अधिक लोकगीतों का संग्रह, दस्तावेजीकरण और ध्वनि संरक्षण, 221 राजस्थानी विवाह गीतों का विश्व का सबसे बड़ा संकलन, दुर्लभ लोकधुनों का आधुनिक तकनीक से डिजिटलीकरण तथा हजारों नवोदित कलाकारों को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाने का ऐतिहासिक कार्य किया। बिना किसी सरकारी सहायता के निजी संसाधनों से लोकसंगीत के संरक्षण का उनका प्रयास भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की अद्वितीय मिसाल माना जाता है।

श्रद्धांजलि

"के. सी. मालू का जाना केवल एक व्यक्ति का निधन नहीं, बल्कि राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना के एक स्वर्णिम युग का अवसान है। उन्होंने लोकसंगीत को संरक्षित ही नहीं किया, उसे विश्व के सांस्कृतिक मानचित्र पर सम्मानजनक स्थान दिलाया। उनकी विरासत आने वाली पीढ़ियों के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत बनी रहेगी।"

उनकी सांस्कृतिक साधना केवल संगीत तक सीमित नहीं रही। लता मंगेशकर नाइट के ऐतिहासिक आयोजन से अकाल राहत के लिए एक करोड़ रुपये जुटाना, सुरसंगम के माध्यम से देशभर में 125 केंद्रों पर 40 से अधिक अखिल भारतीय संगीत प्रतियोगिताओं का आयोजन, शोधपरक **मासिक पत्रिका 'स्वर सरिता'** का दो दशक से अधिक समय तक निरंतर प्रकाशन, पाँच हजार युवतियों को घूमर का प्रशिक्षण तथा प्रवासी राजस्थानी समाज को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का अभियान उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की पहचान बन गया।

राजस्थान सरकार ने उनके असाधारण सांस्कृतिक योगदान को सम्मान देते हुए वर्ष 2022 में राज्य का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'राजस्थान रत्न' प्रदान किया। इसके अतिरिक्त उन्हें डागर घराना अवार्ड, समग्र कला साधना अवार्ड, लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड, यूनेस्को चेतना अवार्ड, राजस्थान गौरव, राजस्थान रत्नाकर, महाकवि कन्हैयालाल सेठिया मायड़ भाषा सम्मान,

रामनिवास आशारानी लखोटिया पुरस्कार तथा अमेरिका के न्यूयॉर्क में प्रवासी राजस्थानी संस्था 'राना' द्वारा 'आउटस्टैंडिंग कंट्रीब्यूशन अवार्ड' सहित अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत किया गया।

श्रद्धांजलि सभा में पूर्व मंत्री शांति धारीवाल, राजस्थान धरोहर प्रोत्साहन प्राधिकरण के अध्यक्ष ओंकार सिंह लखावत, राज्यसभा सांसद डॉ. सतीश पूनिया, महापौर सौम्या गुर्जर, वैभव गहलोत, पंडित सुरेश मिश्रा, मनीष पंकज सोनी सहित अनेक जनप्रतिनिधियों ने श्रद्धासुमन अर्पित किए।

देशभर के कला एवं संगीत जगत की अनेक प्रतिष्ठित हस्तियाँ भी श्रद्धांजलि देने पहुँचीं। मुंबई से पद्मश्री रिवाज मसानी, सुप्रसिद्ध गायिका प्रतिभा सिंह बघेल, दीपाली सोंठ, रविन्द्र उपाध्याय, प्रसिद्ध फिल्म गीतकार सुधाकर शर्मा, सतीश देहरा, रामायण धारावाहिक के गायक ब्रज कुमार महंता सहित अनेक कलाकार उपस्थित रहे। दिल्ली से अरुण वीर, जबकि जयपुर से लोकगायिका सीमा मिश्रा, गौरव जैन, दीपशिखा जैन, दीपक माथुर, संजय माथुर सहित बड़ी संख्या में कलाकारों और कला प्रेमियों ने उन्हें अंतिम प्रणाम किया।

विदेशों से भी श्रद्धांजलि देने वालों का तांता लगा रहा। सिंगापुर से कथक कलाकार चरण गिरधर चांद, शिकागो से राम सैनी, दुबई, लंदन, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, नेपाल और न्यूयॉर्क सहित अनेक देशों से आए प्रवासी राजस्थानी और संस्कृति प्रेमियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

राजस्थान उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों, भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारियों कुलदीप रांका, एन.सी. गोयल, समित शर्मा (आईएएस), महेंद्र सोनी (आईएएस), ऊर्मिला राजोरिया, सुरेश मीणा, पवन कुमार गोयल, सतीश शर्मा, राजेन्द्र भानावत, एस.एस. बिस्सा, जगदीश चंद्रा सहित अनेक आईएएस, आरएएस एवं वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों ने भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। राजस्थान थिएटर एवं आर्टिस्ट एसोसिएशन तथा विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों की उल्लेखनीय उपस्थिति रही।

भारतीय भाषा एवं संस्कृति संगम के अध्यक्ष कुमेश जैन, महासचिव राजेश अग्रवाल, विधानसभा अध्यक्ष के मीडिया सलाहकार गोपेंद्र नाथ भट्ट, वरिष्ठ पत्रकार पुरुषोत्तम दिवाकर सहित अनेक संपादकों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों, उद्योगपतियों और समाजसेवियों ने भी मालू के चित्र पर पुष्प अर्पित कर उन्हें श्रद्धांजलि दी।

सभा के दौरान राज्यपाल हरिभाऊ बागड़े, लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला, मुख्यमंत्री भजनलाल शर्मा, केंद्रीय मंत्री गजेन्द्र सिंह शेखावत, अर्जुनराम मेघवाल, उपमुख्यमंत्री दीया कुमारी और डॉ. प्रेमचंद बैरवा, मंत्री राज्यवर्धन सिंह राठौड़, झाबर सिंह खर्रा, बाबूलाल खराड़ी, बिहार के स्वास्थ्य मंत्री मंगल पांडे, सांसद सी.पी. जोशी सहित देशभर के मंत्रियों, सांसदों, विधायकों, वरिष्ठ संपादकों, प्रशासनिक अधिकारियों, उद्योगपतियों, समाजसेवियों और सांस्कृतिक संस्थाओं की ओर से भेजे गए 1700 से अधिक शोक संदेश एवं संवेदना-पत्र पढ़कर सुनाए गए। सभी संदेशों में उन्हें राजस्थान की सांस्कृतिक अस्मिता का सबसे बड़ा संवाहक, कलाकारों का संरक्षक और भारतीय लोकधरोहर का अमर साधक बताया गया। वक्ताओं ने कहा कि के. सी. मालू ने यह सिद्ध किया कि लोकसंस्कृति किसी प्रदेश की पहचान भर नहीं, बल्कि उसकी आत्मा होती है। उन्होंने हजारों कलाकारों को मंच दिया, आर्थिक संबल दिया, लोक परंपराओं को लुप्त होने से बचाया और नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का आजीवन अभियान चलाया। उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि व्यक्तिगत संकल्प और सांस्कृतिक समर्पण से एक व्यक्ति भी पूरे समाज की सांस्कृतिक दिशा बदल सकता है।

श्रद्धांजलि सभा के अंत में दो मिनट का मौन रखकर दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की गई। उपस्थित जनसमूह ने संकल्प लिया कि के. सी. मालू के अधूरे सांस्कृतिक स्वप्नों को आगे बढ़ाते हुए राजस्थान की लोकधरोहर के संरक्षण का अभियान निरंतर जारी रखा जाएगा।

इस अवसर पर उनके छोटे भाई एवं वरिष्ठ अधिवक्ता निर्मल कुमार मालू, पुत्र हेमजीत मालू, प्रसन्नजीत मालू, रश्मि मालू, अंशुल मालू, अजीत मालू, अभिषेक मालू तथा गुंजन मालू सहित समूचे मालू परिवार ने श्रद्धांजलि देने पहुँचे सभी लोगों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त किया।

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि!

■■■

राष्ट्रीय अस्मिता के स्वर : डॉ. देवेन्द्र दीपक के व्यक्तित्व पर विमर्श संपन्न

निराला सृजन पीठ, साहित्य अकादमी, संस्कृति परिषद, मध्य प्रदेश द्वारा, गौरांजनी सभागार, रवींद्र भवन, भोपाल में व्याख्यान, रचना विमर्श एवं पुस्तक लोकार्पण का कार्यक्रम बड़ी धूमधाम से संपन्न किया गया। जिसमें "राष्ट्रीय अस्मिता के स्वर : डॉ देवेंद्र दीपक" विषय पर देश के विभिन्न भागों से पधारे विद्वान अतिथियों ने विचार विमर्श किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूर्व संचालक जनसंपर्क श्री लाजपत आहूजा ने की। मुख्य अतिथि अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय भोपाल के कुलगुरु प्रो. देवानंद हिंडोलिया, सारस्वत अतिथि डॉ. विकास दवे निदेशक मध्यप्रदेश साहित्य परिषद रहे। प्रमुख वक्तागणों में पटना से पधारे प्रो. अरुण भगत, मुंबई से पधारे प्रो. मृगेंद्र राय, काशी से पधारे डॉ. अशोक कुमार ज्योति, और बाबा साहब भीमराव अंबेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय लखनऊ के पूर्व कुलाधिपति डॉ. प्रकाश बरतूनिया रहे। कार्यक्रम में सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. देवेंद्र दीपक पर केंद्रित अभिनंदन ग्रन्थ **"शब्द शब्द उन्मेष"** एवं **"सुषेण पर्व दृष्टि** और **मूल्यांकन"** का भी विमोचन किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ डॉ साधना बलवटे के स्वागत भाषण से हुआ। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री आहूजा जी ने कहा कि डॉ. दीपक के कुछ अवसरों का मैं साक्षी रहा हूं। डॉ. दीपक ने युवाओं के बीच अपनी "देह दान" का संकल्प व्यक्त किया, ताकि समाज तक सकारात्मक संदेश जाए। मुख्य अतिथि प्रो. देवानंद हिंडोलिया ने कहा कि। डॉ देवेंद्र दीपक जैसे व्यक्तित्व का मार्गदर्शन समाज को आगे ले जाने वाला है। सारस्वत अतिथि डॉ. विकास दवे ने कहा कि जब आदि ऋषियों के बारे में पढ़ते हैं तब सोचने में आता है कि वे कैसे होते होंगे पर जब डॉ. दीपक को देखते हैं तब लगता है कि वे डॉ. दीपक की तरह ही होते हैं। डॉ. दीपक एकात्म मानव दर्शन के मनीषी हैं। वे अंत्यज के लिए लड़ने वाले न्यायाधीश हैं। प्रमुख वक्ता प्रो. अरुण भगत ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि डॉ. देवेंद्र दीपक की कविताओं में पूरी बीसवीं सदी बोलती है। डॉ. दीपक का साहित्य अनेक उपयोगी सूक्तियों से भरा पड़ा है। आपातकाल के दौरान कष्ट भोगते हुए जिन लेखकों ने अपनी लेखनी की धार को बनाए रखा उनमें से डॉ. देवेंद्र दीपक हैं। प्रो. मृगेंद्र राय ने अपने संबोधन में कहा कि मैं जब काव्य नाटकों पर काम कर रहा था तब मेरे हाथ डॉ. देवेंद्र दीपक जी के काव्य नाटक की पुस्तक "भूगोल राजा का खगोल राजा का" हाथ लगी। मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष है कि पूरे देश में सर्वाधिक काव्य नाटक डॉ. देवेंद्र दीपक ने लिखे। "कांवर श्रवण कुमार की" मुंबई में टेक्स्ट बुक में कोर्स में पढ़ाया जा रहा है। डॉ. अशोक कुमार ज्योति ने कहा कि जीवन के झंझावातों में जब हम ऐसे व्यक्ति की उंगली थामने की तलाश में होते हैं जो झंझावातों से पार लगा दे ऐसे ही महान पुरुष डॉ. देवेंद्र दीपक हैं। डॉ. दीपक सदैव ज्ञान के दीपक बनकर प्रकाश बिखेरते रहते हैं। डॉ. प्रकाश बर्तूनिया ने कहा कि सामाजिक समरसता आचरण का विषय। डॉ. दीपक के काव्य में, चिंतन में, सोच में और आचरण में वर्षों से सामाजिक समरसता प्रधान रही है। छिंदवाड़ा से पधारी डॉ. टिक मणि पटवारी ने कहा कि भारतीय सनातन कथाओं में नैतिक मूल्यों को प्रचारित किया जाता है, इन्हीं मूल्यों पर आधारित "कांवड़ श्रवण कुमार की" के माध्यम से डॉ दीपक ने इन जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना की है। इस अवसर पर डॉ. देवेंद्र दीपक का शाल श्रीफल स्मृति चिन्ह द्वारा मंचासीन अतिथियों एवं सम्मान समिति के सदस्यों सर्वश्री प्रकाश बर्तुनिया, डॉ विकास दवे, डॉ साधना बलवटे अशोक निर्मल, गोकुल सोनी, , डॉ कुमकुम गुप्ता, डॉ बिनय राजाराम , राकेश सिंह, द्वारा सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल से सम्मानित भी किया गया। सम्मान पत्र का वाचन वरिष्ठ साहित्यकार गोकुल सोनी ने किया। अपने सम्मान के प्रत्युत्तर में डॉ देवेंद्र दीपक ने डॉ. अरुण भगत का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि लेखकों को मेरी सलाह है कि वे लिखने के पहले सोचें कि वे क्या खुद रहे हैं या खाई। लेखक सूरज भले न बन सके सूरजमुखी तो बन सकते हैं। जो भारत के मूल उसकी चेतना से न जुड़ सके वह लेखक नहीं हो सकता। नगर की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं यथा 1.मध्य प्रदेश लेखक संघ, 2.अखिल भारतीय साहित्य परिषद, 3.कला मंदिर, 4.मध्य प्रदेश हिन्दी लेखिका संघ, 4.दुष्यंत संग्रहालय,5.अभिनव कला परिषद, 6.तुलसी साहित्य अकादमी, 7.वरिष्ठ नागरिक संघ, 8.सकलपर्णा, 9.पटेल प्रवाह समिति, 10.भारतीय स्टेट बैंक साहित्य एवं कला परिषद, 11.भेल साहित्य परिषद, 12.श्रमश्री , 13.स्वयं सिद्धा, 14.नागरिक कल्याण समिति, 15.प्रखर सामाजिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था, 16. साहित्य एवं कला परिषद सहित कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाजसेवा समिति भोपाल द्वारा डॉ. दीपक का सम्मान किया गया। साथ ही व्यक्तिगत रूप से भी अनेक साहित्यकार बंधुओं ने दीपक जी का सम्मान किया। कार्यक्रम का सरस एवं सफल संचालन श्री धर्मेंद्र सोलंकी ने किया।

साधना बलवटे

निदेशक निराला सृजनपीठ, भोपाल

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा श्री विजयदत्त श्रीधर को डी.लिट. की मानद उपाधि

पत्रकारिता के गौरवशाली इतिहास को संजोने और उसे भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने की एकनिष्ठ साधना में संलग्न देश के वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर को रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,जबलपुर द्वारा डी. लिट. की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय द्वारा की गई इस पहल की सर्वत्र प्रशंसा की जा रही है। अकादमिक जगत की अनेक हस्तियों ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त की है। प्रायः सभी का कहना है कि श्रीधर जी की सुदीर्घ साधना को देखते हुए विश्वविद्यालयों को यह कदम पहले ही उठा लेना चाहिए था। डी लिट की मानद उपाधि से श्रीधर जी के कृतित्व को तो अकादमिक स्वीकृति मिली ही है, एक साधक पत्रकार को सम्मानित कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ है। श्री विजयदत्त श्रीधर को डी.लिट. की मानद उपाधि के लिए चुना जाना वस्तुतः उनकी चार दशक से अधिक की सतत साधना का सम्मान है। उल्लेखनीय है कि श्री विजयदत्त श्रीधर को माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान की स्थापना तथा पत्रकारिता इतिहास के प्रामाणिक शोध एवं प्रलेखन के लिए वर्ष 2012 में राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने पद्मश्री अलंकरण से विभूषित किया था। शिक्षा एवं शोध में असाधारण योगदान के लिए संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन ने महर्षि वेदव्यास राष्ट्रीय सम्मान (2012-13) से सम्मानित किया। छत्तीसगढ़ सरकार ने माधवराव सप्रे राष्ट्रीय रचनात्मकता सम्मान (2015) प्रदान किया। आपकी पुस्तक 'पहला सम्पादकीय' को सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार ने 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र पुरस्कार' (2011) प्रदान किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य वाचस्पति' से आपको अधिवेशन (2025) में विभूषित किया गया। श्री विजयदत्त श्रीधर की अकादमिक उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल की शोध परियोजना 'स्वतंत्र भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता' के निदेशक के रूप में पाँच वर्ष की अवधि में 75 शोध कार्यों का संयोजन, संपादन और प्रकाशन किया। आपके ग्रंथ 'समग्र भारतीय पत्रकारिता' (तीन भाग) को पहले आधार ग्रंथ के रूप में अकादमिक जगत और भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता में असाधारण मान्यता और सराहना मिली है। श्री विजयदत्त श्रीधर के कृतित्व पर दो पीएच.डी. हो चुकी हैं। डॉ. सुनीता सिंह के शोध प्रबंध 'मध्यप्रदेश की स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता : विजयदत्त श्रीधर के विशेष संदर्भ में' पर बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल ने पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की है। डॉ. चन्द्रमणि के शोध प्रबंध 'विजयदत्त श्रीधर की पत्रकारिता में इतिहास बोध' पर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा ने पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की है। श्री विजयदत्त श्रीधर के निर्देशन में डॉ. अंजली कुमार हुआ के शोध प्रबंध 'स्वतंत्र भारत में हिन्दी सम्पादकों की बदलती भूमिकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन' पर माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल ने पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की है।

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत

(NAAC ACCREDITED 'A' GRADE (CGPA 3.22) UNIVERSITY)

दीक्षांत समारोह में पद्मश्री श्री विजय दत्त श्रीधर जी को मानद उपाधि से विभूषित किए जाने के सुअवसर पर समर्पित

प्रशस्ति पत्र

दिनांक: 21.06.2026

स्थान: जबलपुर

सौजन्य : अरविंद श्रीधर, ज्ञान तीर्थ सप्रे संग्रहालय

राकेश शर्मा वरिष्ठ साहित्यकार एवं संपादक -' वीणा' मासिक पत्रिका साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता सम्मान -2026 से सम्मानित

लघुकथा शोध केंद्र समिति भोपाल द्वारा श्री राकेश शर्मा वरिष्ठ साहित्यकार एवं संपादक -' वीणा' मासिक पत्रिका इंदौर को हिंदी भवन भोपाल में साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता सम्मान -2026 से डॉ. देवेन्द्र दीपक द्वारा सम्मानित किया गया। कला समय पत्रिका की ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं आप सर्वदा स्वस्थ्य रहें सृजनरत रहें और यशस्वी हों।

सप्रे संग्रहालय में 'शंभुदयाल गुरु इतिहास प्रभाग' का लोकार्पण 'कर्मवीर सम्मान' से विभूषित हुईं पाँच विभूतियां

ज्ञानतीर्थ सप्रे संग्रहालय की ज्ञान संपदा में एक नया आयाम तब जुड़ा जब सुप्रसिद्ध इतिहासविद् और मप्र राज्य गजेटियर एवं अभिलेखागार के पूर्व संचालक शंभुदयाल गुरु का बेशकीमती खजाना संग्रहालय की धरोहर में शामिल हुआ। स्व. गुरु की यह विशाल सामग्री उनके परिजनों ने संग्रहालय को सौंपी है। यह विरासत यहां का हिस्सा बनने के बाद संग्रहालय में 'शंभुदयाल गुरु इतिहास प्रभाग' की स्थापना की गई है। इस नवीन प्रभाग का लोकार्पण संग्रहालय के 43 वें स्थापना दिवस 19 जून को हुआ। इस अवसर पर प्रदेश की पांच विभूतियों को 'कर्मवीर सम्मान' से सम्मानित भी किया गया। इनमें अध्येता एवं विशिष्ट संग्रहकर्ता डा. सुभाष अत्रे, विश्वरंग के प्रणेता संतोष चौबे, संस्कृति सेवी श्रीराम तिवारी, वरिष्ठ पत्रकार नूरुल हसन नूर और हिन्दी सेवी डॉ. जवाहर कर्नावट शामिल हैं। मुख्य अतिथि पूर्व राज्यसभा सांसद एवं मानस भवन के अध्यक्ष सांसद श्री रघुनंदन शर्मा ने कहा कि हमे अपने जीवन में एक न एक ऐसा कार्य अवश्य करके जाना चाहिए जो भावी पीढ़ी के काम आये। पुरखों की विरासत ही आने वाली पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करती है जो अंततोगत्वा समाज के ही काम आती है। इसका प्रमाण शंभुदयाल गुरु हैं। स्व. गुरु ने इतिहास के क्षेत्र में जो किया वह अपने आप में अनूठा है। उनके इस कार्य का लाभ नई पीढ़ी को कितना मिलेगा इसका अंदाज वे स्वयं अपने जीवनकाल में नहीं लगा पाये होंगे, लेकिन पीढिय़ां इसका उपयोग कर अपना भविष्य संवारेंगी। श्री शर्मा ने गुरु जी की ज्ञान संपदा सप्रे संग्रहालय को सौंपने के लिए गुरु परिवार के प्रति आभार भी प्रकट किया। उन्होंने धरोहरों को सहेजने के प्रयासों के लिए सप्रे संग्रहालय की सराहना भी की। आरंभ में स्वागत वक्तव्य देते हुए संग्रहालय के संस्थापक निदेशक विजयदत्त श्रीधर ने कहा कि सप्रे संग्रहालय में अब तक अनेकों विभूतियों के परिजनों ने सामग्री सौंपी है। यह संग्रहालय की विश्वसनीयता का ही प्रमाण है। इसी कड़ी में गुरु जी की पत्नी श्रीमती कमलेश गुरु ने जो यह खजाना सौंपा है इससे संग्रहालय की संपदा में और इजाफा हुआ। इसके लिए उन्होंने गुरु जी की चारों बेटियों के प्रति भी आभार माना। उन्होंने बताया कि समाज से मिले इस भरोसे का ही परिणाम है कि आज यहां पांच करोड़ पन्ने,पौने दो लाख किताबें, दस हजार पत्र, पच्चीस-तीस हजार पत्रिकायें यहां उपलब्ध हैं, इनकी संख्या में आगे वृद्धि होनी ही है। इस अवसर पर अशोक मनवानी कृत मोनोग्राफ'बेजोड़ कलमकार राजकुमार' तथा 'दूर और नजदीक से सरोज गुप्ता' का विमोचन भी किया गया। कार्यक्रम में सप्रे संग्रहालय के परिकल्पनाकार विजयदत्त श्रीधर को डीलिट की मानद उपाधि मिलने पर संग्रहालय के अध्यक्ष डॉ. शिवकुमार अवस्थी और मार्गदर्शक प्रो. रत्नेश ने उनका अभिनंदन किया। कार्यक्रम में गुरु जी की बेटियां रचना शुकुल, डॉ. प्रेरणा उपाध्याय, डॉ. मनीषा मिश्रा और स्वप्ना गुरु सहित अन्य परिजन एवं शहर के प्रबुद्धजन उपस्थित रहे। संचालन निदेशक अरविंद श्रीधर ने किया तथा आभार प्रदर्शन शोध विशेषज्ञ डा. अल्पना गिरी ने किया।

इस अवसर पर कर्मवीर सम्मान से सम्मानित विशिष्ट जनों ने भी अपने विचार व्यक्त किए। -सम्मानित विभूतियों द्वारा सम्मान के प्रति उत्तर के क्रम में सुभाष अत्रे ने कहा कि किसी भी वस्तु का संग्रह बहुत ही धैर्य और लगन से होता है,लेकिन एक बार जो संकलन आपने कर लिया वह वर्षों तक समाज के काम आता है। उन्होंने दादा माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र कर्मवीर और दादा से अपने जुड़ाव का स्मरण भी किया। कवि-कथाकार संतोष चौबे ने कहा कि मूलत: मैं, विज्ञान से जुड़ा रहा लेकिन जब यह देखा कि विज्ञान की अपेक्षा साहित्य समाज को जोड़ने और सरस बनाने में कारगर है तो इस तरफ उन्मुख हुआ और कविता,कहानी और उपन्यास लगभग हर विधा में लेखन किया। संस्कृतिसेवी श्रीराम तिवारी ने कहा कि मैं हमेशा से ही संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करता रहा हूं और आगे भी करता रहूंगा। उन्होंने बताया कि वीर भारत न्यास के माध्यम से वर्तमान में भारतीय ज्ञान परंपरा के क्षेत्र में कार्य कर रहा हूं। आंचलिक पत्रकार नूरूल हसन नूर ने कहा कि आजादी के बाद जब देश के दो टुकड़े हुए तब पाकिस्तान ने अपनी भाषा ऊर्दू घोषित कर उसे अनिवार्य कर दिया था नतीजतन पाक के टुकड़े होते रहे, लेकिन भारत ने हिंदी को अपनाया जरूर पर उसे अनिवार्य नहीं किया इसीका परिणाम है कि भारत आज भी अखंड है और रहेगा। यह हिंदी की सामर्थ्य का प्रमाण है। हिन्दी सेवी डॉ. जवाहर कर्नावट ने कहा कि मुझे देश ही नहीं विदेशों में भी सम्मान मिलते रहे हैं, लेकिन आज मिला यह सम्मान घरमें मिला सम्मान है। इसलिए यह मेरे लिए गौरव की बात है। ■■■

विश्व योग दिवस पर प्रदक्षिणा भट्ट का शास्त्रीय गायन

भरतनाट्यम में देवी आराधना, कंठ से झरी सुरीली राग-रागिनियां

21 जून 2026 को जनजातीय संग्रहालय में मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग का आयोजन जिसमें भोपाल की गायिका प्रदक्षिणा भट्ट ने अपने सुरों से शाम को सजाया। उन्होंने अपनी सुरमयी प्रस्तुति की शुरुआत राग यमन कल्याण से किया। इस राग की गरिमा और माधुर्य को स्वर देते हुए एकताल में निबद्ध बड़ा खयाल 'मेरा मन बाँध लीनो रे' एवं तीनताल में छोटा ख्याल 'रंग दे रंग रेजवा' प्रस्तुत किया। उनकी गायकी में राग की शास्त्रीय गंभीरता और भावों की सहज अभिव्यक्ति श्रोताओं को एक विशिष्ट संगीतानुभूति प्रदान कर रही थी। इसके उपरांत वे ग्वालियर घराने की समृद्ध और विशिष्ट परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हुए तराना एवं तिरबट की प्रस्तुति दी। तिरबट की विशेषता यह है कि इसमें अर्थपूर्ण शब्दों के स्थान पर तबले और पखावज के बोलों की प्रधानता रहती है, जो लय और स्वर के अन्द्भुत समन्वय का सृजन करती है। इस क्रम में उन्होंने हमीर, केदार, बहार, दरबारी, अड़ाना और भोपाली जैसी विविध रागों की रंगत प्रस्तुत की, जिन्हें एकताल, तीन ताल एवं रूपक ताल में संयोजित किया गया। अपनी प्रस्तुति का भावपूर्ण समापन अपने दादा एवं गुरु पंडित **सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'** द्वारा रचित भजन मोहन की राधा से किया, जो भक्ति, माधुर्य और गुरु-परंपरा के प्रति उनकी श्रद्धा का सुंदर प्रतीक था। इस संगीत संध्या में उनके साथ हारमोनियम पर श्री चैतन्य भट्ट एवं तबले पर रतलाम के युवा तबला वादक तल्लीन त्रिवेदी ने संगत दी। स्वर, लय और भाव के समन्वय से 'सुसज्जित यह प्रस्तुति भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा, सौंदर्य और आध्यात्मिक संवेदना का अनुपम उत्सव सिद्ध हुई। कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्जवलन के साथ हुआ। इसके बाद कलाकारों का स्वागत संस्कृति संचालक एन. पी. नामदेव ने किया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में श्रोता एवं दर्शक उपस्थित रहे। विश्व योग एवं संगीत दिवस के अवसर पर संस्कृति विभाग द्वारा प्रदेश के 14 स्थानों पर एक साथ संगीत, नृत्य, चित्रकला एवं शिल्पकला से जुड़े विविध आयोजन किए गए। संस्कृति विभाग के अंतर्गत संचालित शासकीय संगीत एवं ललित कला महाविद्यालयों सहित विभिन्न सांस्कृतिक संस्थानों में आयोजित इन कार्यक्रमों का उद्देश्य नई पीढ़ी को भारतीय संस्कृति, कला और परंपराओं से जोडना एवं उनमें सांस्कृतिक चेतना का संवर्धन करना रहा। इसी क्रम में भोपाल स्थित जनजातीय संग्रहालय में नृत्य एवं संगीत सभा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में पुणे से आईं सुप्रसिद्ध भरतनाट्यम नृत्यांगना स्मिता महाजन ने अपनी शिष्याओं के साथ नृत्य प्रस्तुति दी। उन्होंने अपनी शिष्याओं हार्दिका फडके, सिद्धि पाटिल एवं सिद्धि तार्डे के साथ भरतनाट्यम की प्रभावपूर्ण प्रस्तुति दी। प्रस्तुत सभी नृत्य रचनाएं संस्कृत एवं हिंदी में रचित थीं, जिनका लेखन, संगीतबद्धता और नृत्य संयोजन स्वयं स्मिता महाजन द्वारा किया गया है। प्रस्तुति का शुभारंभ 'विनायका स्तुति' से हुआ, जिसमें विघ्नहर्ता भगवान गणेश की वंदना करते हुए उनसे बुद्धि, शक्ति एवं मंगलकारी आशीर्वाद की कामना की गई। इसके पश्चात प्रस्तुत 'मल्लारी' में मंदिरों में देवयात्रा के दौरान वाद्ययंत्रों पर बजाई जाने वाली पारंपरिक रचना को भरतनाट्यम की शैली में साकार किया गया। चार विभिन्न गतियों में प्रस्तुत इस रचना ने दर्शकों को लय और ताल की अद्भुत अनुभूति कराई। अगली प्रस्तुति 'देवी कौतुकम्' रही, जिसमें ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, समृद्धि की प्रतीक देवी लक्ष्मी तथा शक्ति स्वरूपा मां अम्बा की स्तुतियां तीन भिन्न रागों एवं तालों में प्रस्तुत की गई। इसके बाद प्रस्तुत हिंदी

पदम में एक युवती की मनःस्थिति को भावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया, जो अपनी प्रिय सखी के रूठ जाने से व्यथित है और उसे मनाने का उपाय खोज रही है। दूसरे पदम में वासकसज्जिता नायिका के भावों का अत्यंत सजीव चित्रण किया गया, जिसमे वह अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए उनके साथ बिताए जाने वाले सुखद क्षणों की कल्पना करती है। कार्यक्रम का समापन पारंपरिक रूप से 'तिल्लाना' से हुआ, जो लयात्मकता, ऊर्जा और राष्ट्रभक्ति का अद्भुत संगम था। राग देश में निबद्ध इस रचना के माध्यम से मातृभूमि को भावपूर्ण नमन अर्पित किया गया।

■■■

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपरबैक में...

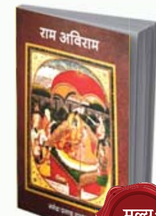

राम अविराम मूल्यः ₹400

- 'कला समय' प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते हैं। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ 'कला समय' प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि में समन्वय करना।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा में समन्वय करना।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन में समन्वय करना।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

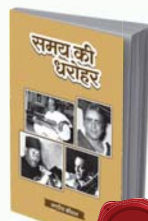

समय की धरोहर मूल्यः ₹200

थमे नहीं चरण मूल्यः ₹400

छोटे मुँह छोटी सी बात मूल्यः ₹450

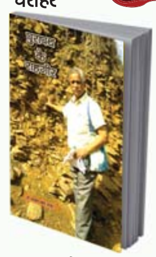

पुरापथ के राहगीर

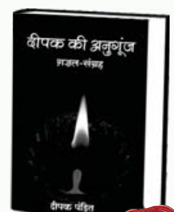

दीपक की अनुगूंज मूल्यः ₹250

सुन्दरलाल प्रजापति की शायरी मूल्यः ₹100

बेनक़ाब ग़ज़लें मूल्यः ₹350

अब बोलो जरा मूल्यः ₹350

इसमें सब कुछ है! मूल्यः ₹300

मात्र अनावरण नहीं मूल्यः ₹350

ये सब क्या है? मूल्यः ₹250

चुप रह भी सकता था मूल्यः ₹300

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

केंद्रीय हिंदी संस्थान

समविश्वविद्यालय (विशिष्ट श्रेणी)

(उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा – 282002, वेबसाइट : https://hindisansthan.in/

संस्थान परिचय :

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा - शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के उच्चतर शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है । इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है । संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र: दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं ।

संस्थान के प्रमुख उद्देश्य :

(i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन (ii) विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन (iii) अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण (iv) संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना (v) समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि ।

संस्थान के कार्य :

- शिक्षणपरक कार्यक्रम : (i) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण (ii) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (iii) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम (iv) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्व वित्तपोषित) (v) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्व वित्तपोषित)
- अनुसंधानपरक कार्यक्रम : (i) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध (ii) हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन (iii) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान (iv) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान (v) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन (vi) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण ।
- शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास : (i) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण (ii) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी के व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण (iii) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण (iv) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण (v) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण (vi) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण ।

संस्थान के प्रकाशन : हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोशविज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन । अब तक 200 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन । आठ त्रैमासिक पत्रिकाओं – 'गवेषणा', 'संवाद पथ', 'समन्वय दक्षिण', 'समन्वय पश्चिम', 'प्रवासी जगत', 'समन्वय पूर्वोत्तर', 'शैक्षिक उन्मेष', 'भावक', 'संस्थान समाचार' एवं दो विद्यार्थी पत्रिकाओं 'हिंदी विश्व भारती' तथा 'समन्वय' का प्रकाशन ।

पुस्तकालय : भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक । एक लाख से भी अधिक पुस्तकों का विशाल संग्रह उपलब्ध है । 75 से भी अधिक जर्नल, शोधपरक पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध ।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संस्थान से संबद्धता ।

योजनाएँ : (i) भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो एवं कैंडी में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरूआत (ii) अफ़ग़ानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी.ए. का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ (iii) विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवाकिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, मॉरीशस, बेल्जियम, रूस, जापान, उज्बेकिस्तान एवं कज़ाकस्तान आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी (iv) हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोक साहित्य परियोजना, हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य ।

प्रो. सुरेन्द्र दुबे
उपाध्यक्ष
केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल

प्रो. हरि शंकर
निदेशक
directorkhs1960@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक: भँवरलाल श्रीवास